भारतवर्ष का इतिहास

(तृतीय खण्ड : बौद्ध काल)

आचार्य रामदेव जी

लेखक

आचार्य रामदेव जी

(प्रारम्भ से पृ. १४२ तक)

तथा

सत्यकेतु विद्यालंकार

(पृ. १४३ से अन्त तक)

प्रकाशक

गुरुकुल विश्वविद्यालय

हरिद्वार

वि. सम्वत् १९९०

प्रस्तावना

श्री आचार्य रामदेव जी गुरुकुल विश्वविद्यालय की ओर से भारतवर्ष का जो विस्तृत इतिहास प्रकाशित कर रहे हैं, यह उसका तृतीय खंड है। इस का द्वितीय खण्ड अब से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। श्री आचार्य जी की इच्छा थी, कि तृतीय खण्ड शीघ्र ही निकल जावे। पर गुरुकुल तथा आर्यसमाज सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में व्यग्र रहने के कारण इसके लिये उन्हें बहुत कम अवसर मिलता था। फिर भी यथाकथञ्चित् समय निकाल कर उन्होंने इस खण्ड के कुछ अध्याय तैयार किये थे। पर इसी बीच में भारतवर्ष में स्वराज्यसंग्राम प्रारम्भ हो गया और श्री आचार्य जी भी उसमें सम्मिलित होगये। कुछ ही समय पश्चात् वे कारागार में चले गये और आजकल वहीं भारत की स्वाधीनता के लिये तपस्या कर रहे हैं।

श्री आचार्य जी के आदेश से इस खण्ड को समाप्त करने का महत्वपूर्ण भार मेरे निर्बल कन्धों पर डाला गया है। न मेरा आचार्य रामदेव जी जैसा सुविस्तृत अध्ययन है और न ही मुझे उतना अनुभव है। कितना अच्छा होता, यदि वे स्वयं इस इतिहास के तृतीय खण्ड को भी समाप्त कर सकते। उनके लिखे हुये पहले दो खण्ड ऐतिहासिक जगत् में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उन्होंने एक बिलकुल नई दृष्टि से अपने इतिहास को लिखा है। मुझ में यह सामर्थ्य नहीं है कि मैं उनकी गम्भीर और अनुपम शैली का अनुसरण कर सकूं। पर गुरुजनों की आज्ञा मानना आवश्यक था, इस लिये सामर्थ्य न होने पर भी मैंने उनका आदेश स्वीकृत कर लिया।

इस खण्ड के पहले १४२ पृष्ठ श्री आचार्य रामदेव जी ने स्वयं तैयार कराये थे। शेष पृष्ठ मैंने लिखे हैं। मैं नहीं चाहता कि अपनी निर्बलताओं तथा अशुद्धियों के लिये श्री आचार्य जी को उत्तरदायी बनाऊं, विशेषतया उस दशा में जब कि उन्होंने मेरे लिखे पृष्ठों को एक बार देखा तक भी नहीं है। इसलिये मैंने यह आवश्यक समझा है, कि इस खण्ड के उन अध्यायों के लिये ऐतिहासिक जगत् के सम्मुख अपने को ही उत्तरदायी रखूँ।

इस खण्ड में प्राचीन भारत के बौद्धकाल का इतिहास लिखा गया है। अनेक ग्रन्थों में बौद्धकाल में मौर्य तथा उसके पीछे के भी अनेक वंशों का समावेश कर दिया जाता है। पर इस खण्ड में इन्हें सम्मिलित न कर मौर्यों से पहले के काल का ही इतिहास लिखा गया है। महात्मा बुद्ध के प्रा-

समय में भारतवर्ष में जो धार्मिक सुधारणा हो रही थी, उसका वृत्तान्त देने के अतिरिक्त, प्राग्मौर्यकाल का राजनीतिक इतिहास भी इसमें विस्तृतरूप से दिया गया है। सम्भवतः हिन्दी भाषा में इतने विस्तृत रूप से बौद्धकाल का वृत्तान्त पहले नहीं लिखा गया। हिन्दी में ही नहीं, सम्भवतः, अन्य किसी भाषा में भी, पौराणिक, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों का उपयोग कर इतने विस्तार से इस काल का राजनीतिक इतिहास क्रमबद्धरूप से नहीं लिखा गया है। बहुत से लोग भारत के राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ ही मौर्यवंश से मानते हैं, पर इस खण्ड को पढ़ने से उन्हें ज्ञात हो जायगा कि उससे पहले का भी राजनीतिक इतिहास क्रमबद्ध तथा प्रामाणिक रूप से उपलब्ध होता है। बौद्धकाल के विविध राज्यों—राजतन्त्र तथा गणतन्त्र दोनों प्रकार के राज्यों—का ज्ञात इतिहास विस्तृत तथा क्रमबद्धरूप से लिखने का प्रयत्न इस खण्ड में किया गया है।

हम चाहते थे कि बौद्धकालीन भारत के सम्बन्ध में भी विस्तृत विवेचना इस खण्ड में कर सकते। पर उससे इस का कलेवर बहुत अधिक बढ़ जाता। इसलिये हमने यही आवश्यक समझा, कि इस पर संक्षेप से ही प्रकाश डाला जावे। अनेक विषय इस सम्बन्ध में छूट भी गये हैं। बौद्धकाल की सामाजिक दशा तथा सभ्यता पर हम बहुत थोड़ी बातें इस खण्ड में दे सके हैं।

इस खण्ड के प्रारम्भ में भारतीय इतिहास के तिथिक्रम पर विस्तृत रूप से विवेचना की गई है। तिथिक्रम का विषय बहुत विवादग्रस्त है। भारतीय अनुश्रुति तथा परम्परा के अनुसार जो प्राचीन तिथियां चली आती हैं, उन्हें आधुनिक ऐतिहासिक स्वीकृत नहीं करते। श्री आचार्य रामदेव जी ने आधुनिक ऐतिहासिकों की परिपाटी का अनुसरण न कर अपने इस इतिहास के पहले दो खण्डों, में एक नये तिथिक्रम का अनुसरण किया था, जो कि भारतीय परम्परा के बहुत अनुकूल था। पर पहले दो खण्डों में वे अपने स्वीकृत तिथिक्रम की स्थापना नहीं कर सके थे, इसलिये इस खण्ड के प्रारम्भ में उस पर विस्तृत विचार किया गया है। आशा है, भारतीय इतिहास के अध्ययनशील विद्वान् इस पर गम्भीरता के साथ विचार करेंगे।

यह ग्रन्थ प्रायः मेरी अनुपस्थिति में छपा है। इसके प्रूफ देखने का मुझे अवसर प्राप्त नहीं हो सका। इस कारण स्वाभाविक रूप से इसमें बहुत सी अशुद्धियां रह गई हैं। आशा है, विज्ञ पाठक उन्हें स्वयमेव ठीक कर लेंगे।

सत्यकेतु विद्यालंकार

विषय सूचि

प्रथम भाग

तिथिक्रम का निर्णय

प्रथम अध्याय

तिथियों के सम्बन्ध में प्रचलित मत

पूर्व वचन

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के अध्ययन में सब से बड़ी समस्या तिथिक्रम के सम्बन्ध में उपस्थित होती है। इस देश के समान लम्बा और विविध घटनापूर्ण इतिहास अन्य किसी देश का नहीं है। प्राचीन यूनान और इटली का इतिहास इस देश के इतिहास के सन्मुख बहुत नवीन है। बेबीलोन, सीरिया और मिसर का प्राचीन इतिहास निस्सन्देह पर्याप्त पुराना है परन्तु उन का अर्वाचीन इतिहास शून्य के समान है। यूरोप के फ्रान्स और इङ्गलैण्ड प्रभृति देशों का इतिहास भी दो हजार वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। वर्तमान अमेरिका का इतिहास प्रारम्भ हुए तो अभी पांच शताब्दियां ही समाप्त हुई हैं। भारतवर्ष का इतिहास इतना लम्बा और विविध घटना पूर्ण होने के कारण ही उस के तिथिक्रम के सम्बन्ध में अनेक विभिन्न मत खड़े हो गये हैं। इस इतिहास में बहुत सी घटनाएं ऐसी भी उपलब्ध होती हैं जो भारतवर्ष की सनातन पद्धति के अनुसार बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं, इस देश के इतिहास में उन्होंने युग परिवर्तन का काम किया है, परन्तु विदेशों के अधिकांश अर्वाचीन भारतीय इतिहासज्ञ उन घटनाओं की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते, वे उन्हें साहित्य की कल्पित कथा कहानियां ही समझते हैं। उदाहरण के लिये रामायण की घटना प्रस्तुत की जा सकती है। फिर इन घटनाओं को ऐतिहासिक या अनैतिहासिक मान लेने मात्र से ही समस्या हल नहीं हो जाती। इन्हें ऐतिहासिक मान लेने पर इन के कालनिर्णय की समस्या उत्पन्न होती है और इन्हें अनैतिहासिक मान लेने से भारतवर्ष का इतिहास एक बन्द घुण्डी के समान और भी अधिक जटिल हो जाता है। सनातन पद्धति के अनुसार महाभारत की घटना को ही आज लगभग ५ हजार वर्ष हो चुके हैं,

रामायण की घटना उस से भी हज़ारों वर्ष पुरानी मानी जाती है। परन्तु इन घटनाओं को सत्य स्वीकार करने वाले बहुत से ऐतिहासिक भी महाभारत की घटना को ईसवी सन् के प्रारम्भ से सात सदी पूर्व हुआ ही स्वीकार करते हैं। उन लोगों में भी अनेक मतभेद हैं। इस सम्बन्ध में अपना मत हम इस इतिहास के प्रथम खण्ड में यथास्थान प्रगट कर चुके हैं। इसी प्रकार महाभारत के बाद से लेकर महाराज हर्ष वर्धन के समय तक के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों में अनेक मतभेद हैं।

अधिकांश ऐतिहासिक महात्मा बुद्ध के जन्म से लेकर वर्तमान भारत के इतिहास के प्रचलित तिथिक्रम को पूर्णतया निश्चित और निर्भ्रान्त मानते हैं। वे लोग महात्मा बुद्ध का जन्म ईसवी सन् से ५८१ वर्ष पूर्व स्वीकार करते हैं। परन्तु हमारा उन ऐतिहासिकों से मतभेद है। अपने इसी इतिहास के द्वतीय खण्ड में हम ने महाभारत काल के पश्चात् का राजनीतिक इतिहास वर्णन करते हुए शिशुनाग वंश को १६७० ई० पू० तक स्वीकार किया है। प्रायः अधिकांश ऐतिहासिक शिशुनाग वंश को ५५१ ई० पू० मानते हैं। इस भाग में हम अपने उपर्युक्त मत को पुष्ट करने का यत्न करेंगे।

महात्मा बुद्धके जन्म दिन की तिथि तथा मौर्यकाल के राजाओं के इतिहास की तिथियों को पूर्ण रूप से निश्चत मान लेने का मुख्य कारण भारतीय तिथिक्रम के सम्बन्ध में रायल एशियाटिक सोसायटी के संस्थापक सर विलयम जोन्स का एक आविश्कार है। उन्होंने ग्रीक साहित्य में "सैण्ड्राकोटस,, नाम से उपलब्ध होने वाले भारतीय राजा को मौर्य सम्राट "चन्द्रगुप्त" स्वीकार कर के इस नवीन तिथि क्रम की नींव डाली है। सर विलियम जोन्स ने अपना यह इतिहास प्रसिद्ध आविश्कार २२ फरवरी सन १७९३ के दिन एशियाटिक सोसाइटी के सन्मुख उपस्थित किया था। इस आविश्कार को भारतवर्ष के अधिकांश पुरातत्त्ववेत्ता भारतीय तिथिक्रम की नींव मानते हैं। सर विलियम जोन्स ने अपना यह आविश्कार इन शब्दों में व्यक्त किया था—

"हिन्दुओं और अरबों का विधानशास्त्र मैंने अपनी गवेशणा के लिये विशेष रूप से चुना हुआ है, अतः आप यह आशा नहीं कर सकते कि ऐतिहासिक

ज्ञान के सम्बन्ध में मैं बहुत सी नवीन बातें आप के सामने रख सकूं। मैं इस सम्बन्ध में बहुत कम नवीन विचार आप को दे सकता हूं। परन्तु आज मैं एक ऐतिहासिक 'आविश्कार' आप के सन्मुख रखने लगा हूं जो कि मुझे अचानक ही सूझ गया है। इस विषय पर मैं इस से पृथक् भी एक स्वतन्त्र निबन्ध के रूप में विचार करूंगा, वह निबन्ध मैंने सोसायटी के चतुर्थ कार्यविवरण के लिये रख छोड़ा है। पालिबोथा—जिस की यात्रा और जिस का वर्णन मैगस्थनीज़ ने किया है—किस स्थान पर स्थित थी, इस प्रश्न का हल करना बहुत ही कठिन समझा जाता रहा है। यह पालिबोथा प्रयाग नहीं हो सकती, क्योंकि प्राचीन काल में प्रयाग राजधानी नहीं रहा। यह 'कान्यकुब्ज' भी नहीं समझी जा सकती क्योंकि पालीबोथा का 'कान्यकुब्ज' शब्द के साथ कोई साम्य नहीं है। इसे 'गौड़' या 'लक्ष्मण वटी' भी नहीं समझा जा सकता, क्योंकि ये नगर भी बहुत प्राचीन नहीं हैं। यद्यपि 'पालिबोथा' शब्द 'पाटलिपुत्र' से बहुत कुछ मिलता है, और ग्रीक लोगों द्वारा वर्णित पालिबोथा की परिस्थितियां भी पाटलीपुत्र की परिस्थितियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं, तथापि इन दोनों को अभी तक निश्चित रूप से एक ही स्वीकार नहीं किया जा सका था। इसका कारण यह है कि पाटलिपुत्र गंगा और सोन इन दो नदियों के संगम पर स्थापित था और ग्रीक साहित्य में वर्णित 'पालिबोथा' नगरी गंगा और इरानाबोअस (Erranaboas) नदियों के संगम पर स्थित थी। श्रीयुत डी० एन० विले के मतानुसार यह इरानाबोअस 'यमुना' नदी का ही नाम है। इसी कठिनता के कारण ही पाटलीपुत्र और पालिबोथा को एक सिद्ध कर सकना कठिन प्रतीत होता था। परन्तु अब यह कठिनाई दूर हो गई है। कारण यह है कि लगभग दो हजार वर्ष पुरानी एक संस्कृत पुस्तक में 'सोन' नदी का पर्यायवाची नाम 'हिरण्य बाहु' लिखा हुआ है और इरानाबोअस निस्सन्देह इस हिरण्य बाहु का ही अपभ्रंश है। यद्यपि मैगस्थनीज़ ने असावधानता या अज्ञान के कारण इन दोनों को पृथक् रूप से लिखा है। वह है मौर्य 'सैण्ड्राकोटस की तरह ही चन्द्रगुप्त, जो कि पहले एक साहसिक सैनिक था, उत्तरीय हिन्दोस्तान का राजा बन गया और उसने पाटलीपुत्र को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। यहां उस के दरबार में विदेशी राजदूत

भी आते थे। निस्सन्देह यह चन्द्रगुप्त यही सैण्ड्राकोट्टस है जिस ने ग्रीक सम्राट सैल्यूकस निकेटर के साथ एक सन्धि की थी।"[1]

इस प्रकार सर विलियम जोन्स ने भारतवर्ष के मौर्यकालीन केन्द्र 'पाटलिपुत्र' और ग्रीक साहित्य में उपलब्ध होने वाली 'पालिब्रोथा' नगरी की एकता सिद्ध करने का यत्न किया है। उनकी इस कल्पना को सत्य सिद्ध करने के लिये रायल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य कैप्टन विल्फोर्ड ने सन् १७६६ में लिखे अपने एक लेख में ग्रीक 'सैण्ड्राकोट्टस' को 'चन्द्रगुप्त' सिद्ध करने के लिये ये युक्तियां दी हैं—

"मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त का जो वर्णन उपलब्ध होता है, सिकन्दर के समय के ग्रीक ऐतिहासिकों ने भी लगभग उस का वही वर्णन किया है। ग्रीक साहित्य में उस के कई नाम उपलब्ध होते हैं एथीनियस ने उसे "सैण्ड्राकोप्टस" लिखा है, कतिपय अन्य लेखकों ने 'सैण्ड्राकोट्टस' लिखा है। कहीं कहीं 'एण्ड्राकोट्टस' नाम भी प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में उसे केवल 'चन्द्र' भी लिखा गया है, इसी के अनुसार डायोडोरस सिक्यूलस ने उसे "क्जैण्ड्रमस" (Xandrams) नाम दिया है जिस का अभिप्राय 'चन्द्र' या 'चन्द्रम्' लिया जा सकता है।...... विष्णुपुराण में लिखा है कि चन्द्रगुप्त और नन्द दोनों नीच वर्णों के व्यक्ति थे। यही बात ग्रीक ऐतिहासिक डायोडोरस सिक्यूलस ने भी लिखी है। उसने लिखा है कि क्जैण्ड्रोमस एक नीच जाति का व्यक्ति था उस का पिता नाई था। अन्य ग्रीक ऐतिहासिकों का कथन है कि "चन्द्र" की माता 'प्रसु' राज्य के राजा की रखेली थी, उस ने अपने पुत्र को गद्दी दिलवाने के लिये राजा को मरवा दिया। तब विदेशी राष्ट्रों ने 'प्रसु' पर आक्रमण कर दिया। पुराणों में भी नन्द के सम्बन्ध में लगभग यही घटना उपलब्ध होती है। स्ट्रैबो ने लिखा है कि सैल्यूकस जब सिन्धु नदी पार कर के भारतवर्ष में प्रविष्ट हुआ, तब चन्द्रगुप्त ने उसका सामना किया। सैल्यूकस पराजित होकर चन्द्रगुप्त

---

1. Asiatic Researches, Vol. ix. Tenth Anniversary Discourse by the President. Page xii–xiv.

को सन्धि का ज़ामिन स्वरूप अपनी पुत्री दे देने के लिये वाधित हुवा। और चन्द्रगुप्त ने उसे प्रतिवर्ष ५० हाथी देने की प्रतिज्ञा की। भारतवर्ष और ग्रीस में यह सन्धी बहुत दिनों तक कायम रही। एग्रिटओकस के कथनानुसार सोफागा-सेमस (Sophagasemees) के समय भी ग्रीक लोग भारतवर्ष से हर साल ५० हाथी लेते रहे। मेरा अनुमान है कि यह सोफागासेमस सम्राट चन्द्रगुप्त का पोता अशोक वर्धन है। जिस का एक नाम 'शिविका सेन' भी उपलब्ध होता है। 'सोफागासेमस' नाम 'शिविकासेन' का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। ग्रीक ऐतिहासिकों ने चन्द्रगुप्त के पुत्र का नाम 'अलिट्रोचेरस' (Allitrohateis) 'अमिट्रोकेटस' (Amitrocates) दिया है। सैल्यूकस इस के दरबार में भी अपना एक दूत भेजता रहा। सैल्यूकस की मृत्यु के बाद उस के लड़के या पोते 'एग्रिड्रओकस' ने भी यह क्रम जारी रखा। पुराणों में चन्द्रगुप्त के पुत्र का नाम 'वारिसार' प्राप्त होता है। 'अमिट्रोकेटस' सम्भवतः वारिसार का अपभ्रंश तो नहीं प्रतीत होता यह 'मित्रगुप्त' का अपभ्रंन्श प्रतीत होता है जो कि सम्भवतः वारिसार (विन्दुसार) का द्वितीय उपनाम हो। चन्द्रगुप्त को सैण्ड्राकोट्टस न मानने वालों की ओर से यह शंका की जा सकती है कि चन्द्रगुप्त एक हिन्दू सम्राट था अतः वह यवन राजा सैल्युकस की कन्या से विवाह नहीं कर सकता था। इस संबन्ध में मैंने काशी के कई पण्डितों से व्यवस्था मांगी। उनका कथन है कि चन्द्रगुप्त के समय हिन्दु लोग यवन जाति का सन्मान करते थे। तब यवनों को वे अपना अंग मानते थे। पीछे से यवनों में क्रूरता, नृशंसता आदि दुर्गणों के आजाने के कारण आर्यों ने उनका बहिष्कार कर दिया। उस समय दोनों जातियों में परस्पर विवाह होना बुरा नहीं समझा जाता था। फिर, विशेष कर इस घटना में तो आश्चर्य की कोई बात ही नहीं क्योंकि चन्द्रगुप्त भी किसी बहुत उच्च वर्ण का राजकुमार नहीं था।"[1]

सर विलियम जोन्स की उपर्युक्त स्थापना को प्रो० मैक्समूलर ने भी पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया है। उन्होंने इसी आविंश्कार को भारतीय तिथिक्रम

---

1. Asiatic Researches. Paut v. Page 240,47.

का आधार माना है। उनका कथन है—"केवल एक ही साधन है जिस से भारतीय इतिहास को ग्रीस के इतिहास के साथ जोड़ा जा सकता है और भारत के तिथिक्रम को ठीक सीमाबद्ध किया जा सकता है। यद्यपि ब्राह्मणों और बौद्धों के साहित्य में सिकन्दर के आक्रमण का कोई वर्णन नहीं है और सिकन्दर के साथियों द्वारा वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं को भारत के ऐतिहासिक इतिवृत्त से मिला सकना असम्भव है तथापि भाग्यवश प्राचीन लेखकों ने एक ऐसा नाम सुरक्षित छोड़ दिया है जो कि सिकन्दर की विजयों के तत्काल बाद की घटनाओं की ठीक व्याख्या कर देता है और जो कि प्राच्य तथा पाश्चात्य इतिहासों को मिलाने के लिये एक श्रृङ्खला का कार्य करता है। यह नाम है 'सैण्ड्राकोट्टस' या 'सैण्ड्राकिप्टस', अथवा संस्कृत का मूल नाम 'चन्द्रगुप्त'।[२]

इस के बाद प्रो० मैक्समूलर फिर लिखते हैं—"जस्टिन, एरियन, डायोडोरस सिक्यूलस, ट्रैबो, क्विन्टस, कर्टियस और प्लूटार्क आदि प्राचीन ग्रीक लेखकों से हमें ज्ञात होता है कि सिकन्दर के समय गंगा के पारवर्त्ती प्रदेशों पर एक शक्तिशाली राजा राज्य करता था। उस का नाम था क्जैण्ड्रामस। सिकन्दर के आक्रमण के बाद ही सैण्ड्रोमस या सैण्ड्राकोट्टस ने एक नवीन राज्य की स्थापना की।"[३]

इस के बाद प्रो० मैक्समूलर ने भी ग्रीक साहित्य के आधार पर पुराणों में वर्णित चन्द्रगुप्त मौर्य तथा सैण्ड्राकोट्टस में एकता प्रतिपादित की है। प्रो० विल्सन आदि सुप्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ताओं ने भी इसी मत की पुष्टि की है। इस प्रकार सर विलियम जोन्स की यह कल्पना ही वर्तमान अधिकांश ऐतिहासिकों की सम्मति में प्राचीन भारत के इतिहास के तिथिक्रम का आधार है। पुराण आदि प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित सब राजवंशावलियों के काल का निर्णय इसी आविश्कार द्वारा कर दिया गया है। ग्रीक साहित्य के अनुसार ३२९

---

2. Max Muller—"A History of Ancient Sanskrit Literature.: page–141.

3. " " " page. 743.

ईसवी पूर्व में सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया और ३२२ ई० पू० में सैण्ड्राकोट्टस (चन्द्रगुप्त मौर्य) मगध के राज सिंहासन पर बैठा । बस, इन दो तिथियों को ध्रुव की तरह से निश्चित मान कर ऐतिहासिकों ने भारतवर्ष की प्राचीन घटनाओं के सौर मण्डल की अवस्थिति कर डाली । इसी को आधार मान कर सम्पूर्ण राजवंशों का काल निर्णय कर दिया गया । इसी कारण अनेक ऐतिहासिकों ने सर विलीयम जोन्स के आविष्कार को 'भारतीय तिथिक्रम का लंगर' कहा है ।

द्वितीय अध्याय

अनुश्रुतिक तिथियां

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में तिथियों और काल का निर्देश करने के लिये मुख्यतया निम्नलिखित १० सम्वतों का प्रयोग किया गया है। ईसवी काल के अनुसार इन के प्रारम्भ का समय भी हम यहां साथ ही उद्धृत करते हैं—

१. सृष्ट्याब्द .... १९५५८८३१०१ ई० पू०
२. चतुर्युग सम्वत् .... ३८९११०२ ई० पू०
३. युधिष्ठिराब्द .... ३१३९ ई० पू०
४. कलियुग सम्वत् .... ३१०२ ई० पू०
५. लौकिकाब्द .... ३०७८ ई० पू०
६. शककाल .... ५५० ई० पू०
७. श्री हर्षकाल .... ४५७ ई० पू०
८. शालिवाहनाब्द .... ७८ ई० पू०
९. विक्रम सम्वत् .... ५७ ई० पू०
१०. कोल्लम सम्वत् .... ८२५ ई० पश्चात्

इन सम्पूर्ण सम्वतों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. सृष्ट्याब्द— वर्तमान सृष्टि का प्रारम्भ १९५५८८३१०१ वर्ष ईसवी पूर्व हुआ है। हिन्दू संस्कारों में काल गणना करते हुए अभी तक यही सम्वत् प्रयोग में लाया जाता है।

२. चतुर्युग सम्वत्—भारतीय साहित्य के अनुसार काल को चार युगों में बांटा गया है। ये चारों युग कृत, त्रेता, द्वापर और कलि हैं। इनका काल

१२००० ब्राह्मवर्ष, अर्थात् ४३२०००० वर्ष है। इनमें से कृतयुग १७२८००० वर्ष, त्रेतायुग १२९६००० वर्ष, द्वापर ८६४००० वर्ष तथा कलियुग ४३२००० वर्षों का है। सन् १९३० तक इस के ५०३१ वर्ष बीत चुके हैं; इस प्रकार इस सम्वत् का काल ३८९११०२ ई० पूर्व हुआ।

३. कलियुग सम्वत्— कलियुग की सम्पूर्ण अवधि ४३२००० वर्ष है। यह ३१०२ ई० पूर्व० में प्रारम्भ हुआ है। दक्षिणी ज्योतिषियों के अनुसार इस का प्रारम्भ चान्द्र वर्ष की चैत्र प्रतिपदा को होता है परन्तु इस के काल के सम्बन्ध में सभी ज्योतिषी एक मत हैं।

इन तीनों सम्वतों का हिसाब ब्राह्मवर्षों में मिलता है। मनुस्मृति तथा शान्तिपर्व के अनुसार एक ब्राह्मवर्ष ३६० साधारण वर्षों का होता है। मनुस्मृति में तथा महाभारत शान्ति पर्व में काल का विभाग तथा चारों युगों की अवधि आदि के सम्बन्ध में पूरा वर्णन प्राप्त होता है।[1]

---

१. निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः।
त्रिंशत कालो मुहूर्तः स्यात् अहोरात्रं तु तावतः॥ ६४॥
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां, चेष्टायै कर्मणामहः॥ ६५॥
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः।
कर्म चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥ ६६॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तत्रोद गयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्॥ ६७॥
ब्राह्मस्य तु क्षयाहस्य यत्प्रमाणं समासतः।
एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत॥ ६८॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः॥ ६९॥
इतरेषु ससंध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापादेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥ ७०॥
यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम्।
एतद् द्वादश साहस्रं देवानां युगमुच्यते॥ ७१॥

४. लौकिकाब्द—इसका दूसरा नाम महर्षिकाल भी है। इसका प्रारम्भ कलियुग के २४वें वर्ष से हुआ है। यह मुख्यतया काश्मीर में प्रचलित रहा है। कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में इस सम्वत् का ही व्यवहार किया है। कुछ लोगों का मत है कि इस सम्वत् का प्रारम्भ २६ कलि सम्वत् में हुआ।

दैविकानां युगानान्तु सहस्रं परिसंख्यया।
ब्राह्ममेकं महर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥
तद् वै युग सहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिं च तावतीमेव ते ऽहोरात्र विदो जनाः ॥ ७३ ॥

(मनुस्मृति अध्याय १)

इसी प्रकार महाभारत शान्ति पर्व में—

काष्ठा निमेषा दश पञ्चचैव त्रिंशत्तु काष्ठा गणयेत् कलां ताम्।
त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्तो भागः कलाया दशमश्च यः स्यात् ॥ १२ ॥
त्रिंशन्मुहूर्तं तु भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिभिः प्रणीता।
मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत्सम्वत्सरो द्वादशमास उक्तः ॥ १३ ॥
सम्वत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति संख्याविदो दक्षिणमुत्तरञ्च ॥ १४ ॥
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ १५ ॥
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
शुक्लोहः कर्मचेष्टायां कृष्णः स्वप्नाय शर्वरी ॥ १६ ॥
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयो पुनः।
अहस्तत्रोद गयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ १७ ॥
ये ते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते दैवमानुषे।
तयोः संख्याय वर्षाग्रं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहं त्वये ॥ १८ ॥
दिव्यै वर्ष सहस्रैस्तु कृतत्रेतादि संज्ञकम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे ॥ १९ ॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २० ॥
इतरेषु ससन्ध्येषु सन्ध्यांशेषु ततस्त्रिषु।
एक पादेन हीयन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ २१ ॥

५. युधिष्ठिराब्द— यह कलियुग के प्रारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व शुरु हुआ। महाभारत के महायुद्ध की समाप्ति के अनन्तर सम्राट् युधिष्टिर जब राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ, तभी से इस सम्वत् का प्रारम्भ होता है। ईसवी सन् से ३१३६ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर सिंहासनारूढ़ हुए। जैन तथा बौद्ध लोग इस सम्वत् का प्रारम्भ कलियुग के ४६८ वें वर्ष अर्थात् २६३४ ई० पूर्व में मानते हैं।

६. शककाल— उज्जैन के श्री हर्ष विक्रमादित्य ने जब शक लोगों को परास्त किया तब से इस सम्वत् का प्रारम्भ हुआ। यह युधिष्ठिर के मृत्युकाल के २५२६ वर्ष बाद शुरु हुआ।[1] युधिष्ठिर का देहान्त ३१०२ ई० पूर्व में, श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के एकदम बाद, हुआ था। इस प्रकार इस की तिथि ५७६ ई० पूर्व निश्चित होती है। कल्हण के अनुसार श्रीहर्ष विक्रमादित्य, हिरण्य, मातृगुप्त तथा प्रवरसेन द्वितीय का समकालीन था। उसने सम्पूर्ण उत्तरीय भारत पर अपना शासन स्थापित किया। उस ने शक लोगों को भारी हार दी। तभी से शक सम्वत् का प्रारम्भ हुआ। इसी कारण इस श्री हर्ष को 'विक्रमादित्य' की उपाधि मिली। कविवर मातृगुप्त ने इस विक्रमादित्य को इसी कारण 'शकारि' लिखा है।

ततः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम्।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ २८॥
एतां द्वादश साहस्रीं युगाख्यां कवयो विदुः।
सहस्र परिवर्तं तद् ब्राह्मं दिवसमुच्यते ॥ २९ ॥
रात्रिमेतावतीं चैव तदादौ विश्वमीश्वरः।
प्रलयेऽध्यानमाविश्य सुप्त्वा सोऽन्ते विबुध्यते ॥ ३० ॥
सहस्र युग पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युग सहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ३१ ॥
(शान्ति पर्व, २३१ अध्याय)

१. आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विक् पंच द्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञस्य ॥ ५६ ॥
(राजतरङ्गिणी. अध्याय १.)

७. श्री हर्ष काल— का प्रारम्भ ४५७ ई० पू० से होता है। सुप्रसिद्ध विक्रमी सम्वत् से ४०० पूर्व यह सम्वत् शुरू हुआ। मुसल्मान ऐतिहासिक अल्बरूनी के अनुसार विक्रमादित्य से ४०० वर्ष पूर्व नैपाल तथा अन्य उत्तरीय देशों में यह सम्वत् प्रयुक्त किया जाता था। सम्वत् के सम्बन्ध में विस्तार से हम तीसरे अध्याय में लिखेंगे।

८. विक्रम सम्वत्— मालव के सम्राट विक्रमादित्य ने ५७ ई० पू० में इस सम्वत् का प्रारम्भ किया। इस के दो नाम सम्वत् और मालवकाल भी हैं। यह सम्वत् सम्पूर्ण भारत में आजतक भी व्यवहृत होता है।

९. शालिवाहनाब्द— प्रस्थान के राजा शालिवाहन ने ७८ ई० पश्चात में इसका प्रारम्भ किया।

१० कौल्लम सम्वत्— ८२९ ई० पश्चात् कौल्लम (क्वीलन Quilon) ने इसका प्रारम्भ किया।

भारतवर्ष में मुख्यतया यही सम्वत् भिन्न २ प्रान्तों अथवा सम्पूर्ण देश में प्रचलित रहे हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य सम्वत भी भारतीय साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इस देश के प्राचीन साहित्य में प्राप्त होने वाले अधिकांश सम्वतों की तिथि १ वैशाख १९८५ तदनुसार १३ एप्रिल १९२८ शुक्रवार के दिन निम्नलिखित है—

१. सृष्ट्यब्द— १९५९८८५०३०.
२. वार्हद्रथाब्द (मगध)— ५२२८.
३. श्रीकृष्ण जननाब्द— ५१३४.
४. वार्हस्पत्यमान शष्ट्यब्द— ५१०८.
(काश्मीर के गोनन्द प्रथम द्वारा प्रचलित)
५. युधिष्ठिराब्द (हिन्दुओं का)— ५०६७.
६. सौरमान शष्ट्यब्द— ५०४३.
(नैपाल के वलम्बरा द्वारा प्रचलित)

७. श्री कृष्ण निर्वाणाब्द— ५०३१.

८. कल्याब्द (या परीक्षिताब्द)— ५०३०.

९. लौकिकाब्द— ५००६.

(काश्मीर के गोनन्द द्वितीय द्वारा प्रचलित)

१०. युधिष्ठिराब्द (जैन आदि का)— ४५६२.

११. प्रद्योताब्द (मगध)— ४०९३.

१२. शैशुनागाब्द (मगध)— ३८८८.

१३. तृतीय गोनन्दाब्द (काश्मीर)— ३८४७.

१४. पशुप्रेक्ष देवाब्द (नैपाल)— ३७९५.

१५. भूमवर्माब्द (नैपाल)— ३६४०.

१६. नन्दाब्द (मगध) ३५२८.

१७. मौर्याब्द (मगध)— ३३४४.

१८. शुङ्गाब्द (मगध)— ३०२८.

१९. प्रतापदित्याब्द (काश्मीर)— २८४५.

२०. कण्वाब्द (मगध)— २७२९.

२१. आन्ध्राब्द (मगध)— २६८४.

२२. मेघवाहनाब्द (काश्मीर)— २६५३.

२३. शककाल (शकों का पराजय)— २५०४.

२४. श्री हर्षाब्द (उज्जैन)— २३८९.

२५. गुप्ताब्द (मगध)— २२५३.

२६. वसन्तदेवाब्द (नैपाल)— २२२९.

२७. अंशुवर्माब्द (नैपाल)— २०२९.

२८. विक्रमाब्द (मालव)— १९८५.

२९. शालिवाहनाब्द (प्रस्थान)— १८५१.

३०. वीरदेवाब्द (नैपाल)— १६२९.

३१. कर्कोटाब्द (काश्मीर)— १३२७.

३२. हर्षवर्धनाब्द (कन्नौज) — १३३२.

३३. प्रताप रुद्राब्द (ओरङ्गल)— १२४१.

३४. गुण कामदेवाब्द (नैपाल)— १२०६.

३५. सदाशिवदेवाब्द (नैपाल)— ११७८.

३६. कोल्लाब्द (मालावार)— ११०३.

३७. उत्पलाब्द (काश्मीर)— १०७३.

३८. नैपालाब्द— १०४८.

(नैपाल के जयदेवमल्ल द्वारा प्रचालित.)

३९. नारायणदेवाब्द (नैपाल)— १०३८.

४०. यशस्करदेवाब्द (काश्मीर)— ९८९.

४१. प्रथम लोधाब्द (काश्मीर)— ९२५.

४२. भोजदेवाब्द (धारा)— ९१४.

४३. द्वितीय लोधाब्द (काश्मीर)— ८२७.

४४. रामदेवाब्द (देवगिरि)— ६२८.

४५. हरिसिंहदेवाब्द (नैपाल)— ६०४.

४६. कृष्ण रामाब्द (विजय नगर)— ४००.

४७. पृथवी नारायणाब्द (नैपाल)— १६०.

तृतीय अध्याय

नारायण स्वामी का मत .

सर विलीयम जोन्स की ग्रीक सम सामयिकता को प्रायः सभी भारतीय इतिहास के विद्वान प्राचीन तिथिक्रम का आधार स्वीकार करते हैं। इस समय भारतवर्ष का जो प्राचीन इतिहास प्रामाणिक समझा जाता है, उस में इसी तिथिक्रम के अनुसार ही घटनाओं और वंशावलियों का वर्णन किया जाता है। केवल दो चार शब्दों के उच्चारण-साम्य के आधार पर ही इस देश की सम्पूर्ण आनुश्रुतिक तिथियों को झूठा मान लिया गया है, और ग्रीक साहित्य के आधार पर बाकायदा एक और इतिहास की उत्पत्ति कर दी गई है। इस आविष्कार के बहुत पश्चात् सन् १९१६ में मद्रास हाई कोर्ट के वकील स्वर्गीय श्रीयुत नारायण स्वामी ने इस सर्व सम्मत तिथिक्रम के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इस देश के सम्पूर्ण साहित्य में प्राप्त होने वाली तिथियों को एक दम झूठा मान लेना उन्हें सहन न हुवा। उन्होंने अपने Age of Shankar (एज आफ शंकर) नामक अंग्रेजी ग्रन्थ और उस के दो परिशिष्टों में प्रचलित तिथिक्रम की खूब धज्जियां उड़ाई हैं। प्रचलित क्रम की तीव्र आलोचना कर के उन्हों ने एक नवीन तिथिक्रम का आविष्कार किया है जो तिथिक्रम भारतीय साहित्य में उपलब्ध होने वाले तिथिक्रम के अनुसार ठीक सिद्ध होता है। भारतवर्ष में आनुश्रुतिक रूप से जो सम्वत् चले आते हैं, उस के अनुसार उन की संगति ठीक लग जाती है। इस सम्बन्ध में भी नारायण स्वामी की युक्तियां हम यथास्थान उद्धृत करेंगे। इस अध्याय में हमें नारायण स्वामी द्वारा प्रदर्शित एक और भारतीय तिथि क्रम की सम-सामयिकता पर प्रकाश डालना है।

श्री नारायण स्वामी का कथन है कि ग्रीक साहित्य बहुत अधिक भ्रमोत्पादक है। उस में भारतीय इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले प्रामाणिक वर्णन एक तो उपलब्ध ही बहुत कम होते है, फिर उन वर्णनों में भी परस्पर विरोध देखा जाता है। अतः ग्रीक साहित्य द्वारा भारतीय तिथि क्रम की सम-सामयिकता ढूंढना खतरे से खाली नहीं है। उस के द्वारा निकाले गए परिणाम एक सिरे से दूसरे सिरे तक नितान्त अशुद्ध भी हो सकते हैं। भारतीय तिथिक्रम की सम-सामयिकता किसी और देश के इतिहास में अवश्य ही ढूंढ निकालनी चाहिये यह बात भी हमें युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती। भारतवर्ष के अपने प्राचीन साहित्य में स्वयं ही इतनी सामग्री उपलब्ध होजाती है कि उस के द्वारा इस देश का प्रामाणिक इतिहास बड़ी सुगमता से तैयार किया जा सकता है। प्राचीन भारतवासियों में ऐतिहासिक बुद्धि पूरी तरह विद्यमान थी, वे अपने साहित्य में इस देश का इतिहास निर्माण करने लायक पर्याप्त सामग्री छोड़ गये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस देश का एक स्वतन्त्र प्रामाणिक इतिहास तय्यार किया जाय और उस के तिथि क्रम से अन्य देशों—जिन से कि भारत का सम्बन्ध रहा है— के इतिहास में प्राप्त होने वाले तिथिक्रम का समन्वय कर लिया जाय। परन्तु यदि कुछ लोगों की सम्मति में भारतीय तिथिक्रम की सम-सामयिकता ढूंढना यदि आवश्यक ही हो तो उन्हें पर्शियन इतिहास का अनुशीलन करना चाहिये।

श्री नारायण स्वामी ने एक नवीन पर्शियन सम-सामयिकता (Persian Synchronism) की रचना की है। उन की यह स्थापना संक्षेप में इस प्रकार है— राजा साइरस ने पर्शियन साम्राज्य की स्थापना की थी। पर्शियन इतिहास के अनुसार उस की तिथि ५५० ई० पूर्व है। इस समय से पर्शियन इतिहास में एक नवीन समय का प्रारम्भ होता है। यही सम्वत् भारतवर्ष में भी प्रचलित हुआ, क्योंकि इस समय भारतवर्ष और पर्शिया का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध था। मुख्य बात तो यह है कि राजा साइरस ने अपने पर्शियन साम्राज्य की स्थापना ही भारतवर्ष की सहायता से की थी। भारतवर्ष में यह सम्वत् आजकल 'शककाल'

'शक नृपति काल' और 'शक सम्वत्' आदि नामों से प्रसिद्ध है। भारत और पर्शिया के पारस्परिक सम्बन्ध को सिद्ध करने वाले निम्नलिखित मुख्य आधार पर्शियन साहित्य में उपलब्ध होते हैं—

१. बैबीलोन में प्राप्त साइरस का शिला लेख।

२. पर्सिपोलिस और नक्शाई रुस्तम में प्राप्त डेरियस के शिलालेख।

३. साइक्लस, हैराडोटस, ट्सेसियस और वज़ैनो आदि प्राचीन ऐतिहासिकों के ग्रन्थ।

इन प्रमाणों के आधार पर साइरस के पर्शियन साम्राज्य को स्थापित करने की तिथि और शक सम्वत्सर में एकता सिद्ध की जा सकती है। इस पर्शियन सम-सामयिकता पर विचार करने के लिये इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि साइरस ने पर्शियन साम्राज्य की स्थापना किस प्रकार की। अतः संक्षेप में इस घटना का उल्लेख कर देना उचित होगा। ५५० ई० पूर्व से कुछ समय पूर्व भारत के पश्चिम ओर के देश मुख्यतया तीन भागों में विभक्त थे। उस समय तक पुराना बैबिलोनियन साम्राज्य— जो कि २२३६ ई० पूर्व तक कायम रहा– नष्ट हो चुका था। उस के स्थान पर असीरियन लोगों ने 'नेनेवा' को राजधानी बना कर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। ६२५ ई० पूर्व के लगभग बैबीलोन के आधीनस्थ राजा वैलिसिस ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी और मीडिया के राजा साइक्ज़ेरस के साथ मिल कर 'नेनेवा' के ऊपर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार असीरिया के साम्राज्य का भी अन्त हुआ। इस समय पुराना पर्शिया दो जातियों के अधिकार में था। दोनों जातियां आर्यवंश की थीं। इनका नाम 'मीड' और 'पर्शियन' है। इन दोनों में से मीड लोग बहुत उत्तम घुड़सवार थे, पर्शियन लोग पैदल सेना के लिये प्रसिद्ध थे। 'मीड' जाति के राजा का नाम 'साइक्ज़ेरस' था। इस सारक्ज़ेरस ने असीरियन राज्य को नष्ट कर उस के एक भाग पर मीडियन साम्राज्य की स्थापना की थी। कुछ लोगों का ख्याल है कि उस ने असीरियन साम्राज्य के विनाश में तो भाग लिया था परन्तु वह मुख्य आक्रमण कारी न था। इस प्रकार इस समय तीन साम्राज्य पश्चिमी एशिया खण्ड पर विद्यमान थे—

i. बैबीलोन.

ii. मीडिया.

iii. असीरिया.

इस अवस्था में यह स्वाभाविक था कि तीनों साम्राज्य अपनी २ शक्ति बढ़ाने के लिये परस्पर युद्ध करते। परन्तु इसी समय इन तीनों को नीचा दिखाने के लिये एक नई शक्ति का उदय हुवा। यह शक्ति 'महान साइरस' था। इस महान् साइरस ने तीनों राज्यों को नष्ट कर के उन के स्थान पर पर्शियन साम्राज्य की स्थापना की।

साइरस पर्शियन राज्य के अन्तर्गत 'एलम' नामक एक छोटी सी रियासत का राजकुमार था। इस के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ लिखना निरर्थक है। साइरस ने कुछ शक्ति संचय करके सब से पूर्व साइक्जेरस पर आक्रमण किया और ५५० ई० पूर्व में मीडिया को परास्त कर के अपने पर्शियन साम्राज्य की नींव रखी। भारतवर्ष के साथ इस सम्राट् साइरस का घना सम्बन्ध था। पर्शियन सम्राज्य की स्थापना में उसे सिन्धुदेश या भारत के राजा से बहुत अधिक सहायता मिली थी। यदि हम चाहें तो सर विलियम जोन्स की तरह केवल नामों की उच्चारण साम्यता के आधार पर ही सम-सामयिकता की स्थापना कर सकते हैं क्योंकि साइरस तथा उस के वंशज अन्य राजाओं के नाम भारतीय संस्कृत नामों से बहुत अधिक मिलते हैं, तथा इस बात के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं कि इन पर भारतीय सभ्यता का बहुत प्रभाव था। परन्तु अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये हम इस समस्या पर विचार नहीं करेंगे अपितु ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ही इस सम-सामयिकता का आधार आश्रित करेंगे। अस्तु;

५५० ई० पूर्व० की तिथि मीडियन साम्राज्य के अन्त और पर्शियन साम्राज्य की स्थापना को सूचित करती है। यह तिथि संसार के इतिहास में अत्य-धिक महत्व पूर्ण है। हिरोडोटस ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि इस काल के बादके पर्शियन राजा काल-गणना इसी तिथि से किया करते थे। यह भी बिलकुल

स्वाभाविक ही है कि साइरस को सहायता देने वाले भारतीय व हिन्दू राजाओं ने काल की गणना का प्रारम्भ कर दिया हो।

बहुत प्राचीन काल से भारत और पाश्चात्य देशों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। महाभारत आदि ग्रन्थों द्वारा भारत का चीन, असीरिया, चालिया, बैबिलोन, मिश्र, फिनीशिया आदि देशों के साथ सम्बन्ध सूचित होता है।[1] साइरस के इन युद्धों में भी भारतवर्ष ने भाग लिया था। जेनोफेन के लेखों से सूचित होता है कि ५६० ई० पू० में जब साइरस और बैबिलोनियन लोगों में युद्ध शुरू हुवा तब दोनों पक्षों ने अपने प्रतिनिधि सिन्धु देश के राजा के पास भेजे। इन प्रतिनिधियों का उद्देश्य सिन्धु देश के राजा से अपने पक्ष में सहायता प्राप्त करना था। दोनों पक्षों से सहायता की मांग पाकर भारत से एक प्रतिनिधि यह निर्णय करने के लिये पश्चिमी एशिया में भेजा गया कि दोनों में से कौन सा पक्ष न्याय पूर्ण है। इस कमीशन ने साइरेस के पक्ष को न्याय पूर्ण उद्घोषित किया, अतः राजा साइरस को ही सहायता देने का निश्चय किया गया। इसी भारतीय सहायता का यह परिणाम हुवा कि साइरस को सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि ५५० ई० पू० की तिथि न केवल पर्शियन इतिहास में अपि तु भारतीय इतिहास में भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण काल है। क्योंकि सिन्धु देश के राजा ने ही साइरस की सहायता की थी और उस की सहायता पाकर ही वह युद्ध में सफलता प्राप्त कर सका था।

अब प्रश्न यह है कि ५५० ई० पू० की तिथि को भारतीय साहित्य में भी किसी नवीन सम्वत् का प्रारम्भ होता है या नहीं? संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थ बराह मिहर संहिता में १ श्लोक प्राप्त होता है—

आसन मघासु मुनयः शासति पृथवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षट् द्विक् पञ्च द्वि युतः शककालस्तस्य राज्ञस्य॥

इस श्लोक के अनुसार युधिष्ठिर के काल तथा शक सम्वत में २५२६ वर्षों का अन्तर है। हमें ज्ञात है कि राजा युधिष्ठिर की मृत्यु ३०७६ ई० पू०

---

१. इस सम्बन्ध में हम अपने इतिहास के द्वितीय खण्ड के चतुर्थ भाग में खूब विस्तार से विचार कर चुके हैं।

में हुई थी। अतः २०७७ ई० पू० में से २५, २६ वर्ष घटा देने पर ५५० ई० पू० सन् प्राप्त होता है। यह तिथि निस्सन्देह शक काल को सूचित करती है। इस प्रकार भारतीय साहित्य के अनुसार शककाल का प्रारम्भ ५५० ई० पू० में ही समझना चाहिये। पर्शियन इतिहास के अनुसार तो साइरस या 'शकनृपति' का काल ५५० ई० पू० सिद्ध होता ही है। इस शककाल के सम्बन्ध में आजकल के ऐतिहासिकों में बड़ा मतभेद है। इस सारी गड़बड़ का मूल कारण यही है कि 'शक' शब्द को ठीक प्रकार से समझा नहीं गया। भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य में जो सप्त-द्वीप गिनाये गए हैं उन में एक का नाम 'शक-द्वीप' है। हमारी सम्मति में इस शक द्वीप से सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया का ग्रहण होता है। प्राचीन पर्शिया में एक द्वीप का नाम सैकी (Sacae) भी था। सैकी 'शक' शब्द का अपभ्रंश है। शक शब्द द्वीप में रहने वाले लोगों के लिये प्रयुक्त होता था। मनु के अनुसार शक लोग काम्बोज, पल्हव, पारद और यवन—इन चार उपविभागों में विभक्त थे। इन्हीं शक लोगों के राजा साइरस को प्राचीन साहित्य में शक-नृपति के नाम से कहा गया है। और इसी के साम्राज्य स्थापन के समय से वस्तुतः शककाल का प्रारम्भ होता है। यह बात स्वीकार कर ली जाय तो भारतीय तिथि क्रम के सब विवाद यहीं समाप्त हो जाते हैं और प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार ही बिना किसी परिवर्तन के सम्पूर्ण तिथिक्रम का निर्णय हो जाता है।

भारतीय इतिहास के वर्तमान पुरातत्व वेत्ताओं ने शक काल को अपने कल्पित तिथि क्रम में टिकाने के लिये उसे जहां तक बन पड़ा है पीछे ले जाने का यत्न किया है। शक सम्वत् को उन्होंने इतना पीछे फेंक दिया है कि उसे 'शालिवाहन शक' के साथ मिला डाला है। और इसी गलती के कारण एक और भारी भूल यह की है कि भारत के प्रसिद्ध ज्योतिषी वराह मिहर की तिथि ५०५ ई० पश्चात् नियत कर दी है। ज्योतिषाचार्य वराह मिहर के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्च सिद्धान्तिका' के अनुसार यह ग्रन्थ ४२७ शककाल में समाप्त होता है। साथ ही, वराह मिहर को ५०५ ई० पू० मान लेने के कारण एक और भयंकरतम भूल कर दी गई है, वह यह कि क्यों

कि वराह मिहर सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था इसलिये विक्रम की तिथि भी पांचवी या छटी शताब्दी पश्चात् फेंक दी गई है ! हालांकि विक्रम की तिथि उन के सुप्रसिद्ध विक्रमी सम्वत के अनुसार भी ५७ ई० पू० है। यहां तक कि सर विलीयम जोन्स ने भी विक्रमी सम्वत की इस तिथि को स्थिर रूप से स्वीकार किया है। परन्तु दो चार शब्दों के उच्चारण साम्य मात्र के आधार पर ही भारत भर में प्रचलित विक्रमी सम्वत की प्रामाणिकता भी अस्वीकार कर दी गई है। यह बात कितनी असंगत और हास्यास्पद है।

दूसरी ओर यदि ५५० ई० पू० में शक काल का प्रारम्भ स्वीकार कर लिया जाय तो वराह मिहर की तिथि ५५० ई० पू०—४२७ वर्ष = १२३ ई० पू० हुई। वराह मिहर की मृत्यु अन्य राज[1] के अनुसार ५०६ शक में, अर्थात् ५५० ई० पू०—५०६ वर्ष = ४१ ई० पू० में हुई। इस प्रकार यह सिद्ध हुवा कि अवश्य ही आचार्य वराह मिहर १२३ ई० पू० से ४१ ई० पू० तक जीवित रहे। भारतीय प्राचीन अनुश्रतियों के अनुसार भी यही तिथि पूर्णतया सत्य है।

वर्तमान पुरात्व वेत्ताओं ने कालिदास की तिथि निश्चित करने में भी इसी प्रकार की गड़बड़ की है। कविवर कालिदास ने अपने 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ में लिखा है—

> धन्वन्तरी क्षपणकामरसिंह शङ्क
> वेताल भट्ट घटकर्पर कालिदासः।
> ख्यातो वराह मिहरो नृपते सभायां
> रत्नानि वै वररुचि नव विक्रमस्य ॥

'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रन्थ में उस ने इस ग्रन्थ को समाप्त करने की तिथि लिखी है—'यह ग्रन्थ मैंने ३०६८ कलि सम्वत में समाप्त किया'।[2] यह ३०६८

---

१. नवाधिक पञ्च शत संख्य शकाब्दे (५०६) वराह मिहराचार्यो दिवं गतः।" (खण्ड खाद्य में भाऊ जी द्वारा उद्धृत)

२. वर्षे सिन्धुरदर्शनम्बर गुणैर्याते कलौ सम्मिते।
मासे माधव संज्ञितेऽत्र विदितो ग्रन्थ क्रियोपक्रमः ॥
(ज्योतिर्विदाभरण)

कलि सम्वत् ३५ ई० पू० के बराबर है। पुरातन भारतीय इतिवृत्त के अनुसार कालिदास और वराह मिहर दोनों विक्रमादित्य की सभा के समानकालीन नवरत्नों में से थे। जब कालिदास ने ज्यर्तिविदाभरण में स्वयं कहा है कि वराह मिहर मेरा समकालीन है तब वराह मिहर की तिथि उस के समकालीन ही होनी चाहिये। इस युक्ति के आधार पर भी शककाल को ५५० ई० पूर्व में प्रारम्भ हुआ ही मानना उचित है।

इस स्थापना को पुष्ट करने के लिए एक और प्रमाण भी लिया जा सकता है। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य के ग्रन्थ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' द्वारा निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि वह १०३६ शक सम्वत्सर में हुआ। इस के अनुसार पाश्चात्य विद्वान् यह मानते हैं कि भास्कराचार्य का समय ११५० ई० पूर्व है। परन्तु इस स्थापना में एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह बात निश्चित रूप से स्वीकार की जाती है कि अलबरूनी ने १०३० ई० पश्चात् भारत की यात्रा की थी। इस अलबरूनी ने अपने यात्रा वृत्तान्त में भास्कराचार्य के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। यूरोपियन विद्वान भास्कराचार्य की जो तिथि स्वीकार करते हैं उस से ८० वर्ष पूर्व अलबरूनी भारत वर्ष में आया था। इस कठिनता को प्रो० वीवर तक ने अनुभव किया है। उन्होंने लिखा है कि मैं इस पहेली को सुलझाने में असमर्थ हूं। आखिरे हार मान कर उन्होंने दो पृथक् भास्कराचार्यों की कल्पना कर ली है। ये दोनों भास्कराचार्य भिन्न २ समयों पर हुए। परन्तु वास्तव में एक भास्कराचार्य प्रो० वीवर के दिमाग में ही उत्पन्न हुआ, भारत के इतिहास में उस का वर्णन नहीं।

इस प्रकार यदि उपर्युक्त पर्शियन सम-सामयिकता को स्वीकार कर लिया जाय तो भारतीय अनुश्रुतियों तथा इतिवृत्त में उपलब्ध होने वाले वर्णनों में ज्यादा हेर फेर न करनी पड़ेगी। भारत के प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होने वाले तिथि क्रमकी संगति भी पूर्णता के साथ लग जायगी।

चतुर्थ अध्याय

प्रचलित तिथिक्रम की समीक्षा

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य को पाश्चात्य विद्वान बहुत सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। उन का विश्वास है कि प्राचीन भारतवासी इतिहास के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते थे; किसी का वर्णन करते हुए तथ्य को नष्ट न होने देना उन के स्वभाव में सम्मिलित नहीं था—प्रशंसा करते हुए दुनियां भर के उत्तम विशेषणों और महिमाओं से अलंकृत किये बिना और निन्दा करते हुए जी भर कर कोसे बिना वे अपने वर्णन को पूर्ण तथा सुन्दर नहीं समझते थे। पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति में, यही कारण है, जिस से कि प्राचीन भारत के सभी वर्णित पात्र असाधारण प्रतीत होते हैं। अपने इस विश्वास के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने इस देश के सभी प्रचलित सम्वतों या तिथि सम्बन्धी अनुश्रुतियों को एक दम असत्य मान लिया है।

सन् १७६८ में रायल एशियाटिक सोसाइटी के वार्षिकोत्सव पर कैप्टन फैन्सिस विलफोर्ड ने हिन्दुओं के तिथिक्रम पर एक निबन्ध पढ़ा था। इसमें उन्होंने तिथिक्रम के सम्बन्ध में हिन्दु विश्वासों को असत्य सिद्ध कर और कहीं कहीं उन की हंसी उड़ा कर, सर विलियम जोन्स के नवीन आविष्कार का पोषण किया था। उन का कथन है—"प्राचीन हिन्दुओं का भूगोल, तिथिक्रम और इतिहास का ज्ञान अतीव हास्यास्पद है। विशेष कर पुराणों के वर्णन तो बिल्कुल बेहूदा हैं। उन के अनुसार इस पृथिवी की परिधि ५००, ०००, ००० योजन अर्थात् २,४४६,०००,००० मील है। हिमालय की ऊंचाई ४६१ मील है। निस्सन्देह प्राचीन लोगों के विश्वास भी इसी प्रकार अत्यधिक अतिशयोक्ति पूर्ण हैं। उन के अनुसार युधिष्ठिर ने २७ हज़ार वर्षों तक राज्य किया। इसी प्रकार पुराणों में वर्णन आता है कि महाराज नन्द के कोश में १, ५८४,०००,०००

सोने के सिक्के थे, चांदी के सिक्के तथा हीरों की संख्या अपरिमित थी। उस की सेना में १० करोड़ सैनिक थे।"[1]

कैप्टन विल्फोर्ड की सम्मति में इस अतिशयोक्ति का कारण प्राचीन आर्यों का जातीय अभिमान है। प्राचीन मिश्री चाल्डियन और यहूदी लोगों की तरह आर्य लोग भी अपने को संसार की सब से पुरानी जाति सिद्ध करना चाहते थे ; अतः उन्होंने अपने इतिहास में वर्णित यशस्वी राजाओं के राजकाल को यथेष्ट लम्बा खींच दिया। कैप्टन विल्फोर्ड ने इसी युक्ति के आधार पर भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य को सर्वथा अतिशयोक्ति पूर्ण मान कर सर विलियम जोन्स द्वारा आविष्कृत नवीन तिथिक्रम का पोषण किया है।

इसी प्रकार अन्य पाश्चात्य विद्वान भी भारतवर्ष के सम्पूर्ण इतिहास को बहुत संक्षिप्त काल में समाविष्ट कर देते हैं। भारतीय इतिहास से पर्याप्त सहानुभूति रखने वाले विद्वान भी भारतीय अनुश्रुतियों पर विश्वास नहीं करते। प्रो० मैक्समूलर ने प्राचीन भारतीय साहित्य को पर्याप्त सहानुभूति से पढ़ने का यत्न किया है। अपने ग्रन्थों में उन्हों ने उस पर अन्य पाश्चात्य लोगों की ओर से किये जाने वाले आक्षेपों का उत्तर भी दिया है। परन्तु वैदिक साहित्य के सम्पूर्ण अनुशीलन द्वारा उन्होंने यही परिणाम निकाला है कि चारों वेदों (संहिता भाग) की रचना १५०० ई० पू० से पहले नहीं हुई। अन्य पाश्चात्य विद्वान भी लगभग यही बात स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में खूब विस्तार से विचार कर चुके हैं। यहां इस प्रकरण द्वारा हमें केवल पाश्चात्य विद्वानों की मनोवृत्ति का निदर्शन कराना था।

पाश्चात्य विद्वानों की इस मनोवृत्ति का कारण बाइबल की यह स्थापना है कि सृष्टि को प्रारम्भ हुए ६००० हजार वर्ष हुए हैं। अत एव पाश्चात्य विद्वान सम्पूर्ण संसार के इतिहास को इसी काल में सन्निविष्ट कर देना चाहते हैं। दूसरी ओर रोम ग्रीस आदि देशों का इतिहास प्रारम्भ हुए आज ४००० वर्ष से

---

1. Asiatic Researches. Vol v. Page-241-42.

अधिक नहीं हुए । उन से प्राचीन काल के ईजिप्ट, बैबिलोन आदि राष्ट्रों के इतिहास को भी ५००० ई० पू० से पूर्व का स्वीकार नहीं किया जाता, अतः स्वाभाविक रूप से यह यत्न किया गया है कि भारतवर्ष का इतिहास भी इसी काल में ही प्रारम्भ हुवा माना जाय ।

यहां हमें वैदिक काल की प्राचीनता प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं । तथापि पाश्चात्य विद्वानों की इस सम्बन्ध की कुछ युक्तियों की समीक्षा करना अनुचित न होगा । प्रो० मैक्समूलर साहब ने वैदिक शिक्षाओं की उच्चता पूर्ण रूप से स्वीकार की है । उन का कथन है कि जिस काल में वेदों का निर्माण किया गया उसे दृष्टि में रख कर उन की शिक्षाएं तथा वर्णन बहुत उन्नत प्रतीत होते हैं । उन के शब्दों में—"क्या तुम वेदों के अनेकेश्वरवाद या आख्यायिकाओं पर आश्चर्य करते हो ? क्यों, इन का होना तो अवश्यम्भावी था । इन को तुम धर्म का बचपन कह सकते हो । यह दुनिया एक समय बचपन में थी जब यह बचपन में थी तब यह बच्चों की तरह बोलती थी, बच्चों की तरह समझती थी और बच्चों की तरह ही सोचती थी । यह हमारा अपना दोष होगा यदि हम बच्चों की भाषा को जवानों की भाषा की तरह लेने लगें । प्राचीन काल की भाषा बच्चों की भाषा है"[1] इत्यादि । प्रो० मैक्समूलर की यह स्थापना नितान्त अयुक्ति युक्त है । प्राचीन काल को मनुष्य समाज का बचपन और वर्तमान काल को जवानी स्वीकार न करते हुए भी हम इस वादविवाद में नहीं पड़ते । परन्तु भूगर्भ विद्या तथा प्राचीन अवशेषों के आधार पर भी प्रो० मैक्समूलर की उपर्युक्त स्थापना नितान्त अशुद्ध सिद्ध होती है । इस सदी में हजारों वर्ष पुराने अवशेष प्राप्त हुए हैं । प्रोफेसर ड्रेपर (Prof. W. Draper) का कथन है कि स्कौटलैण्ड में प्राचीन हाथी आदि जानवरों के अवशेषों के साथ मनुष्य की हड्डियां भी प्राप्त हुई हैं । इन हड्डियों का पूरी तरह परीक्षण करने पर प्रतीत हुवा है कि ये हड्डियां कम से कम १ लाख ४० हजार वर्ष पुरानी हैं । इसी

1. Age of Shanker. Appendix. Vol II. Page 28.

प्रकार अमेरिका में भी २ लाख वर्ष से ऊपर के हड्डियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर भूगर्भ विद्या के विद्वान अब संसार को लाखों वर्ष पुराना स्वीकार करने लगे हैं। प्रो० ड्रेपर के उपर्युक्त आविष्कार के आधार पर यदि संसार को कम से कम २ लाख ४० हज़ार वर्ष पुराना भी स्वीकार कर लिया जाय और प्रो० मैक्समूलर के अनुसार वेदों के निर्माण काल को आज से ३००० वर्ष पूर्व माना जाय तो यह बात अत्यधिक हास्यास्पद प्रतीत होती है कि यह संसार अपने जन्म के २,३७,००० वर्षों तक बिल्कुल बच्चा ही बना रहा, बच्चों की तरह सोचता रहा, बच्चों की तरह समझता रहा और उसके ३ हज़ार वर्ष बाद ही—अर्थात् आजकल—वह पूरा जवान बन गया ! प्रो० मैक्समूलर की यह स्थापना कितनी अयुक्ति युक्त है। आज दोपहर के १२ बजे तक एक बच्चा मां की गोद में दूध पी रहा था ; १२ बज कर ३० मिनट पर वह जवान होकर बड़ी बड़ी किताबें लिखने लगा।

पाश्चात्य विद्वानों के उपर्युक्त विश्वास का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भारत के सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास को १५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक सीमित कर दिया। उन का कथन है कि १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक वेदों की रचना हुई, उस के बाद उपनिषद और ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये। ५०० ई० पू० के लगभग महात्मा बुद्ध का काल है। और ग्रीक समसामयिकता के आधार पर ३२१ ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य भारतवर्ष का सम्राट् बना। ग्रीक समसामयिकता के सम्बन्ध में हम प्रथम अध्याय में विस्तार के साथ लिख चुके हैं। उसी के आधार पर अपने विश्वासों के अनुसार पाश्चात्य विद्वानों ने इस नवीन तिथिक्रम की रचना की है। इस अध्याय में पूर्वोक्त ग्रीक समसामयिकता जिन भ्रम पूर्ण आधारों पर आश्रित है उनका निदर्शन किया जायगा।

'पाली बोथा' तथा पाटलिपुत्र' और 'सैण्ड्राकोट्टस' तथा 'चन्द्रगुप्त' इन दोनों नामों में कुछ सादृश्य देख कर सर विलियम जोन्स ने प्रचलित ग्रीक सम-सामयिकता की स्थापना की है। परन्तु यह करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण ग्रीक ऐति-हासिकों के एतद्विषयक वर्णनों पर ध्यान नहीं दिया। स्वयं यूनानी लेखकों

के वर्णन भी बहुत स्पष्ट नहीं हैं। वे लोग उस राजा को, जिसे मार कर पालीबोथ्रा में नये राजवंश की स्थापना की गई थी, सैराड्रूमस, ऐराड्रूमस या एराड्रूमन के नाम से लिखते हैं। नये वंश के स्थापक के लिए वहां सैराड्राकोट्टस और सैराड्राकिप्टस ये दो नाम प्राप्त होते हैं। ग्रीक इतिहास के अनुसार इस सैराड्राकोट्टस (या सैराड्राकिप्टस) ने ही अपने पूर्ववर्ती राजा को मार कर राज्य प्राप्त किया था। इसी नये वंश के संस्थापक राजा की सिकन्दर से भी भेंट हुई थी। दूसरी ओर अनेक स्थानों पर सिकन्दर के ३२६ ई० पूर्व में भारत आक्रमण के समय गंगा के पार के प्रदेश पर राज्य करने वाले राजा का नाम भी "सैराड्राकोट्टस" लिखा है। अब यह स्पष्ट है कि भारतीय इतिवृत्त के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश के अन्तिम सम्राट् महानन्द को मार कर मौर्यवंश की नींव डाली थी, परन्तु इन ग्रीक ऐतिहासिकों के अनुसार सैराड्राकोट्टस ने 'एराड्रूमस' को मार कर नये राजवंश की नींव डाली। यदि सैराड्राकोट्टस और चन्द्रगुप्त इन दो नामों में समता है तो हम पूछते हैं कि क्या महानन्द और एराड्रूमस में भी कुछ साम्य प्रतीत होता है! यदि नहीं तो इस ग्रीक समसामयिकता का आधार ही क्या है? यह हम स्वीकार करते हैं कि ग्रीक इतिहास के सम्बन्ध में जो वर्णन उपलब्ध होता है उसे भारतीय इतिहास के साथ संगत करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, परन्तु साथ ही हम यह भी कहते हैं कि यह संगति लगाने का प्रयत्न करते हुए सर विलियम जोन्स ने भारी भूलें की हैं। उन भूलों को दिखा कर हम स्वयं अपने मतानुसार ग्रीक वर्णनों की संगति लगाने का प्रयत्न करेंगे। सर जोन्स की ग्रीक समसामयिकता पर ये आक्षेप उपस्थित किये जा सकते हैं—

१. सर विलियम जोन्स ने जिस समय प्रचलित ग्रीक समसामयिकता का आविष्कार किया था उस समय भारतीय इतिहास में केवल एक ही चन्द्रगुप्त ज्ञात था, अतः सैराड्राकोट्टस नाम का चन्द्रगुप्त के साथ उच्चारण साम्य देख कर उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य से ही उसकी संगति लगाने का प्रयत्न किया क्योंकि तब तक गुप्त वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का किसी को ज्ञान ही न था। भारतीय इतिवृत्त के अनुसार इस गुप्त वंश के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त का काल ३२८ ई०

पूर्व है। सर विलियम जोन्स ने तिथिक्रम की समसामयिकता स्थापित करते हुए चन्द्रगुप्त मौर्य की यही तिथि निश्चित की है यह भ्रम कितना स्वाभाविक है।

२. सर जोन्स ने अपनी स्थापना का आधार तीन भारतीय ग्रन्थों को बताया है। एक तो सोमदेव की कविता जिस में उस ने पाटलीपुत्र की उस क्रान्ति का वर्णन किया है जिस में कि महाराज नन्द की अपने आठों पुत्रों के साथ हत्या हुई थी और चन्द्रगुप्त को राजगद्दी मिली थी। दूसरा ग्रन्थ संस्कृत का एक शोकान्त नाटक है। जिस का नाम "चन्द्र का अभिषेक" है परन्तु सर विलियम जोन्स द्वारा वर्णित यह "चन्द्र का अभिषेक" नाटक कहीं भी प्राप्त नहीं होता। मालूम नहीं कि सर जोन्स को यह कहां से प्राप्त हुआ और उस के बाद इस ग्रन्थ का क्या हुआ। यहां तक कि ग्रीक समसामयिकता के कट्टर पोषक कैप्टिन विल्फोर्ड भी इस नाटक को प्राप्त नहीं कर सके। सोमदेव कृत कविता भी आज कल कहीं प्राप्त नहीं होती। कैप्टिन विल्फोर्ड ने लिखा है कि—"मैं इन दोनों कविताओं को कहीं भी प्राप्त नहीं कर सका। परन्तु सोमदेव कृत कविता के स्थान पर मेरा विचार है कि सर जोन्स 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक का उल्लेख करना चाहते हैं, जो दो भागों में विभक्त है।"[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन दोनों की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। इन अलभ्य ग्रन्थों द्वारा कोई भी परिणाम नहीं निकाला जा सकता। तीसरे ग्रन्थ का नाम 'कथासरित्सागर' है। कथासरित्सागर में चन्द्रगुप्त मौर्य और महानन्द का जो वर्णन दिया है वह ग्रीक पुस्तकों में प्राप्त सैण्ड्राकोट्टस के वर्णन से मेल नहीं खाता। कथासरित्सागर में यह कहीं नहीं लिखा कि चन्द्रगुप्त ने पार्वतीय राजा की सहायता से नन्द का वध किया। कथासरित्सागर की इस कथा के सम्बन्ध में विस्तार से हम अगले अध्याय में लिखेंगे।

३. भारतीय इतिवृत्त के अनुसार सब से पूर्व आन्ध्रवंश के समय ही भारतवर्ष पर विदेशियों के आक्रमण हुए। इस इतिवृत्त को असत्य मानने का कोई

---

1. Asiatic Researches. vol. v

कारण प्रतीत नहीं होता । यह स्पष्ट ही है कि आन्ध्रवंश चन्द्रगुप्त मौर्य से बहुत पीछे प्रारम्भ हुआ अतः सिकन्दर को चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालीन नहीं माना जा सकता ।

४. यूनानी लेखकों के अनुसार क्जैण्ड्रमस को राजगद्दी से हटा कर सैण्ड्राकोट्टस राजा बना । दूसरी ओर भारतीय इतिवृत्त के अनुसार आन्ध्रवंश के अन्तिम राजा चन्द्रश्री को हटाकर गुप्तवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त ने राज्य प्रारम्भ किया । क्जैण्ड्रमस शब्द का नन्द से ज़रा भी उच्चारण-साम्य नहीं है यह शब्द चन्द्रश्री से ही मेल खाता है । अतः ग्रीक समसामयिकता को इस आन्ध्र वंश के बाद भारत में राज्य करने वाले गुप्तवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त के साथ मिलाना चाहिये । भारतीय इतिवृत्त के अनुसार इस गुप्तवंश के संस्थापक सम्राट् चन्द्रगुप्त का काल ३२८ ई० पू० से ३२१ ई० पू० तक है । यही काल सिकन्दर के आक्रमण से भी मेल खाता है ।

५. प्रचलित ग्रीक समसामयिकता को स्वीकार कर लेने पर विक्रमी सम्वत् का प्रारम्भ एक अभाव कल्पना से होता है । प्रचलित प्रथा के अनुसार वर्तमान विक्रमी सम्वत् उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य का प्रारम्भ किया हुआ है । सर विलियम जोन्स ने भी विक्रम की इस तिथि ५७ ई० पू० को भारतीय इतिहास में स्थिर तिथि के तौर पर स्वीकार किया है । परन्तु प्रचलित समसामयिकता के अनुसार भारतीय तिथिक्रम का काल निश्चित करते हुए विक्रमादित्य को ५७ ई० पू० से बहुत पीछे ले जाया जाता है । एक ज़रा से उच्चारण साम्य के आधार पर एक भारत भर में प्रचलित सम्वत् के प्रारम्भ कर्ता की तिथि को ही बदल देना कितना अधिक हास्यास्पद है ।

६. भारतीय इतिवृत्त के अनुसार नन्दवंश का काल १०० वर्ष है । परन्तु सर विलियम जोन्स की समसामयिकता को सत्य सिद्ध करने के लिये बिना किसी युक्ति या प्रमाण के आधार पर ही इस अवधि को कम कर के ५० वर्ष कर दिया जाता है । मानो इस तिथिक्रम द्वारा भारतीय इतिहास की घटनाओं को

सिलसिले में प्रगट नहीं करना, अपितु भारतीय इतिहास को ही, कांट छांट करके, इस ईश्वरीय तिथिक्रम के अनुकूल बनाना है ! यह कितना बड़ा अन्याय है। भारत के प्राचीन इतिहास के विशेषज्ञ मि० विन्सेंएट ए० स्मिथ ने भी अपने इतिहास में इस जबरदस्ती की अयुक्तियुक्तता स्वीकार की है ।

७. भारतीय साहित्य में इस देश के प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित जो तिथियां या सम्वत प्राप्त होते हैं उन पर कोई प्रबल अभियोग स्थापित किये बिना ही उन्हें अप्रामाणिक और असत्य मान लेना भारी अन्यान्य है । इस देश के प्राचीन साहित्य में प्राप्त होनेवाले सम्वतों का वर्णन हम दूसरे अध्याय में कर चुके हैं। यदि उन सम्वनों की प्रामाणिकता स्वीकार करके प्राचीन भारतीय इतिवृत्ति की विवेचना की जाय तो सम्पूर्ण भारतीय घटनाओं के क्रम तथा काल का समन्वय बड़ी सुगमता से किया जा सकेगा। परन्तु पाश्चात्य ऐतिहासिक, अपने इसी एक भ्रममूलक विश्वास के आधार पर ही, कि मनुष्य को उत्पन्न हुए ६ हज़ार वर्षों से अधिक समय नहीं हुवा, भारत के सम्पूर्ण तिथिक्रम को बड़ी निर्दयता के साथ भींच देते हैं। बाइबल के उपर्युक्त कथन के आधार पर वे लोग भारत के सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य को अविश्वसनीय मानकर उस पर आश्रित सम्वतों की प्रामाणिकता स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं और अपने विश्वासों के अनुसार कार्य करते हैं। पाश्चात्य ऐतिहासिकों का दावा है कि वे लोग प्राचीन शिलालेख, सिक्के आदि प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर ही भारतीय इतिहास का निर्माण करते हैं परन्तु वास्तव में अपने विश्वासों की रक्षा के लिये वे लोग उन को भी भ्रममूलक मानने में संकोच नहीं करते। यहां पर इस सम्बन्ध में केवल एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा।

नैपाल की प्राचीन राजवंशावलियों में हर्ष सम्वत् का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। "नैपाल राजवंशावली" में अनेक नैपाली राजाओं के जो दानपत्र उल्लिखित हैं वे इसी सम्वत् के अनुसार हैं। नैपाल के प्राचीन राजाओं की एक वंशावली पं० भगवान दास इन्द पी० एच० डी० को प्राप्त हुई है। इस वंशावली का नाम पार्वतीय वंशावली है। इस वंशावली में कलियुग के प्रारम्भ से

भी अनेक शताब्दि पूर्व से लेकर १७२८ ईसवी पश्चात् तक के राजाओं की वंशावलियां दी गई हैं। इस के अनुसार सूर्यवंश के २७ वें राजा शिवदेव वर्मा का शासन काल कलि सम्वत् २७६४ (तदनुसार ३३८ ई० पू०) के लगभग है। इसी तरह ठाकुरी वंश के प्रथम राजा अंशुवर्मा का शासन काल वहां ६८ लिखा हुवा है। इस प्रकार उसने १०.१ ई० पू० से ३३ ई० पू० तक राज्य किया। इसी वंशावली के अनुसार अंशुवर्मा के समय विक्रमादित्य ने नैपाल की यात्रा की थी। हम जानते हैं कि विक्रम सम्वत् के प्रारम्भकर्ता विक्रमादित्य का भी यही समय है। अतः इस वंशावली की प्रामाणिकता सर्वथा स्पष्ट है। परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने निस्संकोच होकर इसे अस्वीकृत कर दिया है। डा०फ्लीट ने देखा कि 'परम भट्टारक महाराजाधिराज शिवदेव वर्मा', जो सूर्यवंश के २७ वें राजा हैं, के दान पत्र में ११६ हर्ष सम्वत् लिखा है। यह देख कर उन्होंने एक दम शिवदेव वर्मा की तिथि को ७२५ ई० पश्चात् नियत कर दिया। उन्होंने यह परिणाम इस प्रकार निकाला कि कन्नौज के प्रसिद्ध राजा हर्ष वर्धन का समय ६०६ ई० पश्चात् है अतः स्वाभाविक रूप से शिवदेव वर्मा का समय ७२७ ई० पश्चात् होना चाहिये, क्योंकि हर्ष सम्वत् कन्नौज के हर्ष वर्धन का ही चलाया हुआ है!

इस प्रकार अपने कल्पित हर्ष सम्वत् के अनुसार पाश्चात्य ऐतिहासिक एकदम नैपाल राजवंशावली की तालिका की तिथियों को अशुद्ध उद्घोषित कर देते हैं। नैपाल वंशावली ने शिवदेव वर्मा का समय ३३८ ई० पू० रखा है, परन्तु पाश्चात्य ऐतिहासिकों द्वारा उत्तीर्ण लेखों की साक्षी द्वारा शिवदेव वर्मा का समय ७२५ ई० पश्चात् ज्ञात होता है। परन्तु कुछ अधिक गम्भीरता से विचार करने पर ऐतिहासिकों की यह युक्ति हेत्वाभास प्रतीत होने लगती है। विचारणीय प्रश्न यह है कि बाणभट्ट और ह्यूनसांग के आश्रयदाता तथा कन्नौज के सम्राट् हर्ष वर्धन ने किसी नये सम्वत् को चलाया था या नहीं। भारतीय तथा चीनी साहित्य द्वारा इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। बाणभट्ट ने बड़े विस्तार के साथ महाराज हर्ष का जीवन चरित्र लिखा है परन्तु उसने यह कहीं नहीं लिखा कि हर्ष ने किसी नये सम्वत् का प्रारम्भ किया, हालांकि बाणभट्ट ने हर्ष वर्धन की

अत्यधिक स्तुति की है और उसके द्वारा एक नये सम्वत् की स्थापना को लिख कर वह हर्ष की महान् स्तुति में एक महत्वपूर्ण वात और भी जोड़ सकता था। इसी प्रकार प्रत्येक बात का विस्तार के साथ वर्णन करने वाले ह्यूनसांग अथवा किसी अन्य चीनी लेखक ने भी इस बात का वर्णन नहीं किया। यदि महाराज हर्ष ने किसी नये सम्वत् की स्थापना की होती तो अवश्य ही ये लेखक उसका वर्णन करते। अतः यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि कन्नौज के हर्ष वर्धन ने हर्ष सम्वत् का प्रारम्भ नहीं किया और उस के साथ हर्ष का सम्बन्ध जोड़ना सर्वथा अयुक्ति युक्त है। फिर इस प्रश्न को किस प्रकार सुलझाया जाय ? तथा शिवदेव वर्मा के दान पत्र में किस हर्ष सम्वत् का उल्लेख है ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर बहुत आसान है। भारतीय साहित्य द्वारा हमें ज्ञात होता है कि विक्रमीय सम्वत् के प्रारम्भ से ४०० वर्ष पूर्व भारत में एक सम्वत् प्रचलित था जिसे हर्ष सम्वत् कहा जाता था। अल्वरूनी के अनुसार भी इस हर्ष सम्वत् का प्रारम्भ विक्रमीय सम्वत् से ४०० वर्ष पूर्व हुवा था।

इस प्रकार यदि हम शिवदेव वर्मा के ताम्रपत्र में उत्तीर्ण हर्ष सम्वत् का अभिप्राय ४५७ ई०पू० लें तो शिवदेववर्मा का काल ४५७ ई०पू०-११९=३३८ ई० पू० सिद्ध होगा। यह काल नैपाल राजवंशावली के अनुसार बिल्कुल ठीक है इस के द्वारा अंशुवर्मा के प्रथम सदी ईसवी पूर्व में विक्रम के समकालीन होने में बाधा नहीं पड़ती।

पञ्चम अध्याय

चन्द्रगुप्त 'मौर्य' या चन्द्रगुप्त गुप्तवंशी !

प्रचलित ग्रीक समसामयिकता पर जो दोष दिये जा सकते हैं उनमें से अधिकांश हम पिछले अध्याय में दे चुके हैं। इस समसामयिकता को अशुद्ध करे देने पर हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि फिर ग्रीक साहित्य में उपलब्ध होने वाले सैण्ड्राकोट्टस राजकुमार की संगति भारतीय इतिहास में किस प्रकार लगाई जाय ? इस प्रश्न का उत्तर बहुत सहल है। ग्रीक साहित्य में उस राजा के लिए, जिसे मार कर सैण्ड्राकोट्टस ने नये राज्य की स्थापना की थी, क्जैण्ड्रमस, ऐण्डेमस और एण्ड्रमन-ये तीन नाम प्राप्त होते हैं। हम पहले भी, कह चुके हैं कि उन में से कोई नाम भी 'नन्द' से बिल्कुल नहीं मिलता। अब यदि हम कलियुग-राज वृत्तान्त के गुप्त वंश सम्बन्धी प्रकरण पर ध्यान दें तो इस की संगति भली प्रकार लग जाती है।

कलियुग राजवृत्तान्त के अनुसार आन्ध्रवंश का अन्तिम राजा 'चन्द्रश्री' था। उस के सेनापति का नाम चन्द्रगुप्त था। इस चन्द्रगुप्त ने अपनी सेना की सहायता से चन्द्रश्री को मरवा दिया और उसके लड़के पुलोमान ने सात वर्ष तक चन्द्रगुप्त के प्रतिरूप (रीजेन्सी) में राज्य किया। इस के बाद चन्द्रगुप्त ने पुलोमान का भी वध कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। इस चन्द्रगुप्त के अनेक पुत्र थे। इन में से एक पुत्र का नाम समुद्रगुप्त था। इस समुद्रगुप्त ने म्लेच्छ सेनाओं की सहायता से स्वयं अपने पिता को तथा अपने भाइयों को मारकर राज्य प्राप्त किया।[1] यही समुद्रगुप्त संसार में अशोकादित्य नाम से

---

१. अथ श्री चन्द्रगुप्ताख्यः पार्वतीयकुलोद्भवः।
श्री पर्वतेन्द्राधिपतेः पौत्रः श्री गुप्त भूपतेः॥

मशहूर हुआ । इस प्रकार गुप्तवंश का यह वृत्तान्त ग्रीक साहित्य में उपलब्ध होने वाले सैण्ड्राकोट्टस के वृत्तान्त से पूरी तरह मिलता है । यह 'चन्द्र श्री' ही वह 'क्ज़ैण्ड्रमस' है जिसे मार कर सैण्ड्राकोट्टस ने एक नये राजवंश की स्थापना की। फिर उस के पुत्र सैण्ड्रोकिप्टस अर्थात् समुद्रगुप्त ने ग्रीक अर्थात् म्लेच्छ सेनाओं की सहायता से स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया। कलियुगराजवृत्तान्त में वर्णन आता है कि यह समुद्रगुप्त म्लेच्छ सेनाओं की सहायता से अपने पिता तथा भाइयों को मार सका । वास्तव में यही समुद्रगुप्त (सैण्ड्राकिप्टस) ही सिकन्दर से मिला था। ग्रीक साहित्य में किसी किसी स्थान पर भूल से सिकन्दर से भेंट करने वाले इस सैण्ड्राकिप्टस को सैण्ड्राकोट्टस भी लिख दिया गया है । वास्तव में ये सैण्ड्राकोट्टस और सैण्ड्राकिप्टस एक ही व्यक्ति नहीं है। दोनों नाम क्रमशः चन्द्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त के लिये हैं। ग्रीक ऐतिहासिकों ने सैण्ड्राकिप्टस का सम्बन्ध

कुमारदेवी मुद्वाह्य नेपालाधीशितुः सुताम् ॥
लब्ध प्रवेशो राज्ये ऽस्मिन् लिच्छवीनां सहायतः ।
सेनाध्यक्षपदं प्राप्य नानासैन्यसमन्वितः ॥
लिच्छवीनां समुद्वाह्य देव्याश्चन्द्रश्रियोऽनुजाम् ।
राष्ट्रियः स्यालको भूत्वा राजपत्न्या च चोदितः ॥
चन्द्रश्रियं घातयित्वा मिषेणैव हि केनचित् ।
तत्पुत्रप्रतिभूत्वे च राज्ञ्या चैव नियोजितः ॥
वर्षैस्तु सप्तभिः प्राप्तराज्यो वीराग्रणीरसौ ।
तत्पुत्रं च पुलोमानं विनिहत्य नृपार्भकम् ॥
आन्ध्रेभ्यो मागधं राज्यं प्रसह्यापहरिष्यति ।
कचेन स्वेन पुत्रेण लिच्छवीयेन संयुतः ॥
विजयादित्यनाम्ना तु सप्त पालयिता समाः ।
स्वनाम्ना च शकं त्वेकं स्थापयिष्यति भूतले ॥
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती पुत्रस्तस्य महायशाः ।
नेपालाधीशदौहित्रो म्लेच्छसैन्यैः समावृतः ॥
वञ्चकं पितरं हत्वा सहपुत्रं सबान्धवम् ।
अशोकादित्यनाम्ना तु प्रख्यातो जगतीतले ॥

(कलियुग राजवृत्तान्त भाग ३ अध्याय २)

विदेशी राजाओं के साथ सम्बन्ध वर्णित किया है और कलियुगराजवृत्तान्त के अनुसार इस गुप्त वंशी समुद्रगुप्त का भी विदेशी राजाओं से सम्बन्ध था।[१] वास्तव में इसी सैण्ड्राकिप्टस (समुद्रगुप्त) के दरबार में ग्रीक दूत सैल्यूकस आकर रहा था।

सर विलियम जोन्स के समय इस गुप्त वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का आविष्कार ही नहीं हुवा था इसी से उच्चारण साम्य के आधार पर वह इतनी भयंकर भूल कर गए। यदि उन के सामने भी पूर्ण तथ्य उपस्थित होते तो सम्भवतः वह अपनी ग्रीक समसामयिकता में आमूलचूल परिवर्तन कर देते। और तब भारतीय इतिहास को भींच कर या कांट छांट कर थोड़े से काल में ज़बरदस्ती ठूंसने की आवश्यकता न रहती।

सर विलियम जोन्स ने अपनी ग्रीक समसामयिकता को सिद्ध करने के लिये कथासरित्सागर का आश्रय लिया है। परन्तु वास्तव में कथा सरित्सागर में महाराज नन्द तथा चन्द्रगुप्त का जो वर्णन प्राप्त होता है वह ग्रीक सैण्ड्राकोट्टस के वर्णन से सर्वथा भिन्न है। कथासरित्सागर का यह प्रकरण पूरी तरह से दे देना आवश्यक होगा। इस ग्रन्थ के ६ठे भाग में आता है—"जब मैं इस प्रकार शान्ति से अपनी कुटी में रहता था, मेरे पास एक ब्राह्मण यात्री, जो अयोध्या से आ रहा था, ठहरा। उसने मुझे पहचान कर योगनन्द की कहानी बड़े शोक से इस प्रकार सुनाई। तुम्हारे चले आने पर योगनन्द ने शकटाल को मन्त्री बनाया। वह अपने वंश का नाश करने का बदला निकालने के लिये योगनन्द को मारने के उपाय सोचने लगा। इस बीच में उसने एक दिन एक चाणक्य नामक ब्राह्मण को मैदान में कुशाएं उखाड २ फेंकते देखा। शकटाल ने उस ब्राह्मण से इस का कारण पूछा। ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'यह कुशा मेरे पैर में चुभी थी अतः मैं इसे उखाड़ रहा हूं।' यह सुन कर शकटाल ने उसे अपने काम का व्यक्ति समझ कर बड़े विनय से राजा के श्राद्ध में पुरोहित बनने का निमन्त्रण दिया।

---

२. स्वदेशीयैर्विदेशीयैः नृपैः सममिपूजितः
(कलियुग राज वृत्तान्त भाग ३ अध्याय २)

चाणक्य निमन्त्रण स्वीकार कर के श्राद्ध के दिनों में राजमहल में पहुंचा । परन्तु शकटाल द्वारा उकसाये जाकर योगनन्द ने सुबन्धु नामक एक और ब्राह्मण को श्राद्ध का पुरोहित नियत कर दिया था । अतः जब चाणक्य ने श्राद्ध में पहुंच कर यह कार्रवाई देखी तो वह क्रोध से जल उठा । उसे कुछ देख कर शकटाल ने भयभीत हो कहा कि अपराध मेरा नहीं, राजा का है । तब और भी अधिक क्रुद्ध हो कर चाणक्य ने अपनी चोटी खोल कर यह प्रतिज्ञा की कि आज से सातवें दिन मैं राजा नन्द को मार कर अपनी चोटी बांधूंगा । यह सुन कर जब योगनन्द क्रुद्ध हुवा तब शकटाल ने चाणक्य को अपने घर में छिपा लिया । वहां उस ने शकटाल की सहायता से उपकरण प्राप्त कर के कहीं और जाकर 'क्रिया' को, जिससे ठीक सातवें दिन योगनन्द की मृत्यु होगई । तब शकटाल ने योगनन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त को भी मार डाला और पूर्व नन्द के पुत्र चन्द्रगुप्त को राज्य प्रदान किया । चन्द्रगुप्त के मन्त्रि पद के लिये उसने प्रार्थना कर के चाणक्य को तैयार कर लिया और अपना अभीष्ट सिद्ध हुवा देख कर स्वयं वैरागी होकर बन में चला गया ।"[1]

---

१. दिवसेष्वथ गच्छत्सु तत्तपोवनमेकदा ।
अयोध्यात उपागच्छत् विप्र एको मयि स्थिते ॥ १०६ ॥
स मया योगनन्दस्य राज्यवार्तामपृच्छयत् ।
प्रत्यभिज्ञाय मां सोऽथ सशोकमिदमब्रवीत् ॥ १०७ ॥
शृणु नन्दस्य यद्वृत्तं तत्सकाशाद्गते त्वयि ।
लब्धावकाश स्तत्राऽभूच्छकटालश्चिरेण सः ॥ १०८ ॥
स चिन्तयन् वधोपायं योगनन्दस्य युक्तितः ।
क्षितिं खनन्त मद्राक्षीत् चाणक्याख्यं द्विजं पथि ॥ १०९ ॥
किं भुवं खनसीत्युक्ते तेन विप्रेन सोऽब्रवीत् ।
दर्भमुन्मूलयाम्यत्र पादो ह्येतेन मे क्षतः ॥ ११० ॥
तच्छ्रुत्वा सहसा मन्त्री कोपनं क्रूरनिश्चयम् ।
तं विप्रं योगनन्दस्य वधोपायममन्यत ॥ १११ ॥
नाम पृष्ट्वाऽब्रवीत् तं च हे ब्रह्मन् दापयामि ते ।
अहं त्रयोदशीश्राद्धे गृहे नन्दस्य भूपतेः ॥ ११२ ॥

दूसरी ओर ग्रीक साहित्य में वर्णन प्राप्त होता है कि सैण्ड्राकोट्टस ने पार्वतीय राजाओं की सहायता से क्जैण्ड्रमस का वध किया और इस क्जैण्ड्रमस के दरबार में विदेशी लोग आते रहे। इसका विदेशी यवन राजाओं से सम्बन्ध था। ऐतिहासिकों का कथन है कि मैगस्थनीज़ भी इसी के दरबार में रहा था। अतः

दक्षिणातः सुवर्णस्य लक्षं तव भविष्यति।
भोक्ष्यसे धुरि चाऽन्येषां एहि तावद् गृहं मम ॥ ११३ ॥
इत्युक्त्वा शकटालस्तं चाणक्य मनयद् गृहम्।
श्राद्धाहेऽदर्शयत्तं च राज्ञे स श्रद्दधे च तम् ॥ ११४ ॥
ततः स गत्वा चाणक्यो धुरि श्राद्ध उपाविशत्।
सुबन्धु नामा विप्रश्च तामैच्छद्धुरमात्मनः ॥ ११५ ॥
तद् गत्वा शकटालेन विज्ञप्तो नन्दभूपतिः।
अवादीन्नापरो योग्यः सुबन्धुर्धुरि तिष्ठतु ॥ ११६ ॥
आगत्यैतां च राजाज्ञां शकटालो भयानतः।
न मेऽपराध इत्युक्त्वा चाणक्याय न्यवेदयत् ॥ ११७ ॥
सोऽथ कोपेन चाणक्यो ज्वलन्निव समन्ततः।
निजां मुक्त्वा शिखां तत्र प्रतिज्ञामकरोदिमाम् ॥ ११८ ॥
अवश्यं हन्त नन्दो ऽयं सप्तभिर्दिवसैर्मया।
विनाश्यो, बन्धनीया च ततो निर्मन्युना शिखा ॥ ११९ ॥
इत्युक्तवतं कुपिते योगनन्दे पलायितम्।
अलक्षितं स्वगेहे तं शकटालो न्यवेशयत् ॥ १२० ॥
तत्रोपकरणे दत्ते गुप्तं तेनैव मन्त्रिणा।
स चाणक्यो द्विजः क्वापि गत्वा कृत्यामसाधयत् ॥ १२१ ॥
तद्वशाद्योगनन्दोऽथ दाहज्वर मवाप्य सः।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते पञ्चत्वं समुपागमत् ॥ १२२ ॥
हत्वा हिरण्यगुप्तं च शकटालेन तत्सुतम्।
पूर्वनन्दसुते लक्ष्मीश्चन्द्रगुप्ते निवेशिता ॥ १२३ ॥
मन्त्रित्वे तस्य चाऽभ्यर्थ्य बृहस्पतिसमं धिया।
चाणक्यं स्थापयित्वा तं स मन्त्री कृतकृत्यताम् ॥ १२४ ॥
मन्वानो योगनन्दस्य कृतवैरप्रतिक्रियः।
पुत्रशोकेन निर्विण्णः प्रविवेश महद्वनम् ॥ १२५ ॥

इति कथापीठलम्बके षष्ठस्तरङ्गः ॥

यह भली प्रकार स्पष्ट है कि सोमदेवकृत कथासरित्सागर में उपलब्ध होने वाले चन्द्रगुप्त के वर्णन तथा ग्रीक साहित्य में प्राप्त होने वाले सैण्ड्राकोट्टस के वर्णन में एकता नहीं है।

प्रचलित मत के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने ३२१ ई० पू० से २९८ ई० पू० तक राज्य किया, चन्द्रगुप्त के बाद उसका पुत्र विन्दुसार ने २९८ ई० पू० से २८२ ई० पू० तक राज्य किया। विन्दुसार के बाद उस का पुत्र अशोक मौर्य २८२ ई० पू० में मगध की राजगद्दी पर बैठा। यह बड़ा प्रतापशाली भारत सम्राट् हुवा। इसने चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य का और भी अधिक विस्तार किया इस का भारतीय साम्राज्य वर्तमान ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की अपेक्षा भी बहुत बड़ा था। कोई मुसलमान सम्राट् भी भारत में इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित नहीं कर सका। यह मौर्य अशोक कुछ समय विजेता क्षत्रिय के रूप में रहा परन्तु फिर युद्ध के भयंकर परिणामों को देख कर अपना पैत्रिक धर्म छोड़ कर बौद्ध धर्म में दीक्षित होगया। तब इसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति शान्ति, त्याग तथा प्रेम पूर्ण उपायों से बौद्धधर्म के प्रचार में लगादी। यहां तक कि अपने लड़के लड़की को भी बौद्ध भिक्षु बना कर विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये भेज दिया। इसी अशोक मौर्य के समय सम्पूर्ण एशिया महाखण्ड का एक बड़ा भाग बौद्ध धर्म में दीक्षित होगया। लंका, जावा, सुमात्रा, ब्रह्मा, चीन, स्याम, अनाम आदि सभी देशों में बौद्ध धर्म का नारा बुलन्द होगया। इसने अपनी धर्म प्रचार सम्बन्धी आज्ञाओं को पत्थरों की बड़ी २ शिलाओं पर जगह जगह खुदवाया। ये शिलालेख आज भी उपलब्ध होते हैं। इन सब में धर्म सम्बन्धी आज्ञाओं के साथ "देवताओं का प्रिय राजा ऐसा कहता है"— यह इबारत खुदी हुई है। वर्तमान ऐतिहासिकों का कथन है कि इन शिलालेखों द्वारा हमें भारतीय इतिहास का निर्माण करने में बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इन शिलालेखों पर जो तिथि अंकित है उस से ये लेख ईसा से लगभग अढ़ाई सदी पूर्व खुदवाए गए प्रतीत होते हैं।

परन्तु हमारी उपर्युक्त स्थापना के अनुसार मौर्य वंश का प्रारम्भ १६३५ ई० पू० में हुवा। अतः यह एक समस्या सी आ उपस्थित होती है कि

यह महान सम्राट् अशोक है कौन, जिस का शिलालेखों में वर्णन पाया जाता है। हमारी स्थापना है कि यह अशोक मौर्यवंशी नहीं अपितु यह गुप्तवंशी अशोकादित्य अर्थात् 'समुद्रगुप्त' है। कलियुग राजवृत्तान्त द्वारा यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि गुप्तवंशी समुद्रगुप्त अशोकादित्य के नाम से भी मशहूर था। "अशोकादित्यनामोऽसौ विख्यातो जगतीतले" क० रा० ३। २

वास्तव में भारतीय इतिहास में 'अशोक' नाम से भिन्न २ कालों में तीन सम्राट् हुए हैं। इन तीनों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. अशोक वर्धन— इस का दूसरा नाम चण्डाशोक है। यही अशोक नन्द वंश का नाश करने वाले चन्द्रगुप्त मौर्य का पोता है। इस का समय १५ सदी ईसवी पूर्व है। पुराणों में कई स्थानों पर इस का वर्णन प्राप्त होता है।

२. अशोकादित्य—इस सम्राट् का वास्तविक नाम समुद्रगुप्त है। यह गुप्त वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का पुत्र था। कलियुग राजवृत्तान्त के अनुसार इसने अपने पिता को मार कर राज्य प्राप्त किया। यह भारतवर्ष का एक परम प्रतापी सम्राट् हुआ है। इस के प्रताप को देख कर विन्सैण्ट ए० स्मिथ ने इसे 'भारतीय नैपोलियन' की उपाधि दी है। इस का वर्णन हरिषेण द्वारा उत्कीर्ण शिलालेखों, कलियुग राजवृत्तान्त तथा पुराणों में प्राप्त होता है।

३. अशोक—यह काश्मीर का राजा हुआ है। इस का दूसरा नाम 'धर्माशोक' है। कल्हण की राजतरंगिणी में इस का वर्णन प्राप्त होता है। यह गोनन्द वंश में पैदा हुआ था। अपने राज्यारोहण के कुछ समय बाद इस ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये अनथक यत्न किया। लोगों को सन्मार्ग पर चलाने तथा उन्हें आराम देने के लिए इस ने हज़ारों स्तूप, विहार और भवन आदि बनवाए। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि वर्तमान श्रीनगर की आधार शिला भी इसी धर्माशोक ने ही रखी थी।[1]

---

१. प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः।
अथावहदशोकाख्यः सत्यसंधो वसुंधराम्॥ १०१॥

बौद्ध साहित्य बड़े विस्तार तथा प्रशंसा के साथ जिस अशोक का वर्णन करता है वह वास्तव में यही धर्माशोक है। बौद्ध लेखकों ने इस धर्माशोक की इतनी अधिक महिमा बढ़ाने का यत्न किया कि उन्हों ने उस की राजनीतिक शक्तियों का भी बड़ा प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। सम्भवतः इसी कारण अनेक स्थानों पर बौद्ध लेखकों ने अशोकादित्य (समुद्र गुप्त) और इस गोनन्दी धर्माशोक को मिला डाला है। विस्तृत साम्राज्य, अपूर्व वैभव, दिग्विजयिनी शक्ति आदि भावों को उन्हों ने समुद्रगुप्त से ले लिया है और सहस्त्रों स्तूपों तथा विहारों का निर्माण इस धर्माशोक से लिया है। और इन दोनों को एक ही सम्राट के रूप में वर्णन कर दिया है। वस्तुतः जिस अशोक ने राज्यारोहण के बाद बौद्ध धर्म ग्रहण किया था और अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस के प्रचार के लिये लगा दी थी वह सम्पूर्ण भारतवर्ष का चक्रवर्ती सम्राट् नहीं था। और जो अशोकादित्य भारत का चक्रवर्ती सम्राट था वह बौद्ध न था। बौद्ध लेखकों ने इन दोनों को मिला कर एक चक्रवर्ती बौद्ध सम्राट अशोक की कल्पना कर ली। बौद्ध लेखकों से यह भूल हो जाना कोई असम्भव बात नहीं है। इन के अधिकांश ग्रन्थ बहुत सी परस्पर विरुद्ध बातों से भरे हुए मिलते हैं। एक ओर दीप वंश तथा महावंश कुछ लिखते हैं तो दूसरी ओर दिव्यावदान तथा उत्तरीय ग्रंथ कुछ और ही लिखते हैं। दक्षिणीय और उत्तरीय बौद्ध ग्रन्थों में परस्पर बड़ा भेद पाया जाता है। राजतरंगिणी से इस धर्माशोक का समय ठीक वही सिद्ध होता है जो वर्तमान ऐतिहासिक प्रचलित

यः शान्त वृजिनो राजा प्रपन्नो निज शासनम्।
शुष्कलेत्र वितस्तात्रौ तस्तार स्तूप मण्डलैः॥ १०२॥
धर्मारण्यविहारान्तर्वितस्तात्र पुरेभवत्।
यत्कृतं चैत्यमुत्सेधावधिप्राप्त्यक्षमेक्षणम्॥ १०३॥
स पण्णवत्या गेहानां लक्षैर्लक्ष्मीसमुज्वलैः।
गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपः॥ १०४॥

राजतरंगिणी प्रथमस्तरङ्गः।

मौर्यवंशीय सम्राट् अशोक का स्वीकार करते हैं। अब यह बात भली प्रकार स्पष्ट होगई कि वर्तमान ऐतिहासिकों का सुप्रसिद्ध बौद्ध अशोक वास्तव में यही काश्मीर का गोनन्द वंशीय धर्माशोक ही है। अशोक के शिला लेखों में अशोक का नाम कहीं नहीं आता, केवल 'देवानां प्रियदर्शी राजा' यही नाम प्राप्त होता है। अतः यह नहीं कहा जासकता कि ये शिलालेख अशोक मौर्य द्वारा ही खुदवाये गए हैं। हाल ही में 'मास्की' में जो शिलालेख प्राप्त हुआ है उस पर यह वाक्य अंकित है कि—"देवताओं के प्रिय अशोक की ओर से ऐसा कहना—" केवल इस अकेले और हाल ही में प्राप्त शिलालेख को छोड़ कर और कहीं अशोक का नाम प्राप्त नहीं होता। परन्तु इस मास्की के शिला लेख द्वारा भी यह सिद्ध नहीं होता कि कि यह अशोक मौर्य है अथवा गोनन्दी। अन्य सब प्राप्तव्य तथ्यों के आधार पर निस्संकोच होकर यह परिणाम निकाल सकते हैं कि ये शिलालेख काश्मीर के गोनन्द वंशीय अशोक द्वारा ही खुदवाए गए हैं।

हम प्रचलित ग्रीक समसामयिकता को एक नये रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, अतः हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम किसी बहुत ही स्पष्ट और प्रबल प्रमाण द्वारा प्रचलित ग्रीक समसामयिकता को भ्रमपूर्ण सिद्ध करने के लिये प्रस्तुत करें। हमें विश्वास हैं कि हम बड़ी सफलता के साथ एक ऐसा ही पुष्ट प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं।

प्रचलित मतानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्दवंश को नष्ट करे के मगध के राज्य सिंहासन पर अधिकार प्राप्त किया। इस का मुख्य सहायक चाणक्य नामक एक असाधारण प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ था। वास्तव में चाणक्य की प्रतिज्ञा के कारण ही चन्द्रगुप्त मौर्य को सफलता हो सकी। यही चाणक्य, अर्थात् आचार्य कौटिल्य, चन्द्रगुप्त के शासन काल में भी उसका प्रधानामात्य तथा गुरु बन कर रहा। साथ ही यह भी माना जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य तथा यूनानी सैल्यूकस में हुई सन्धि के उपरान्त मैगस्थनीज़ नाम का यूनानी सरकार का एक दूत चन्द्रगुप्त के दरबार में बहुत समय तक रहा। सौभाग्य से आचार्य चाणक्य का राजनीति

पर एक ग्रन्थ "कौटिल्य अर्थ शास्त्र" के नाम से उपलब्ध होता है; दूसरी ओर मैगस्थनीज़ के संस्मरणों के कुछ भाग भी प्राप्त होते हैं। यद्यपि आचार्य कौटिल्य का ग्रन्थ राजनीति के सिद्धान्तों पर विचार करता है तथापि यह बात भी इतनी ही स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में वर्णित शासन पद्धति और राष्ट्र व्यवस्था तत्कालीन भारत में भी अवश्य प्रचलित होगी, क्योंकि आचार्य कौटिल्य न केवल चन्द्रगुप्त के प्रधानामात्य और गुरु ही थे अपितु उन्हीं की सहायता द्वारा ही चन्द्रगुप्त राज्य स्थापित कर पाया था, अतः उन को अपने प्रत्येक विचार को क्रियात्मक रूप देने का पूर्ण अवसर प्राप्त था। वर्तमान ऐतिहासिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं। वे लोग स्वयं भी कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार ही मौर्यकालीन राष्ट्रव्यवस्था तथा शासन पद्धति का वर्णन करते हैं। मैगस्थनीज के वर्णन तो उस के आखों देखे तथ्यों के संस्मरण मात्र ही हैं, अतः उन पर अनैतिहासिक होने का दोष डाला ही नहीं जा सकता।

यह देख कर अत्यधिक आश्चर्य होता है कि मैगस्थनीज के संस्मरणों का जितना भाग प्राप्त होता है उस में भारतवर्ष की खेती, भूमि, प्राकृतिक दशा, निवासी, राजदरबार आदि का तो विशद वर्णन प्राप्त होता है परन्तु उसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मन्त्री और गुरु आदि राजनीतिज्ञ कौटिल्य का नाम तक भी कहीं प्राप्त नहीं होता। चन्द्रगुप्त और उस के दरबार का वर्णन करते हुए चाणक्य का निर्देश मात्र भी न करना ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार कि रामायण लिखते हुए वशिष्ठ विश्वामित्र का निर्देश भी न करना। यह कहा जा सकता है कि मैगस्थनीज़ के संस्मरण बहुत ही अधूरी दशा में टुकड़े २ के रूप में प्राप्त होते हैं। परन्तु उस के ६९ टुकड़ों में कहीं भी आचार्य चाणक्य का संकेत मात्र भी तो प्रतीत नहीं होता। यह बात सचमुच बहुत ही आश्चर्य जनक है।

इस बात की ओर यदि विशेष ध्यान न दिया जाय तो भी एक दूसरी बात को देख कर तो यह आश्चर्य चरम सीमा तक पहुंच जाता है। वह बात यह है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मैगस्थनीज के संस्मरणों में वर्णित कतिपय एक ही

विषय की बातों में ज़मीन आस्मान का अन्तर है। किसी एक वस्तु या संस्था का दोनों ने दो सर्वथा प्रतिकूल रूपों में वर्णन किया है। उन वर्णनों को देख कर यह बात नहीं कही जा सकती कि दोनों महानुभाव एक ही शासन व्यवस्था का वर्णन कर रहे हैं। उदाहरण के लिये हम यहां कुछ बातें उद्धृत करते हैं—

१. किलों के निर्माण प्रकार में बड़ा भारी भेद प्रतीत होता है। मैगस्थनीज़ के अनुसार मौर्यकाल में किलों के परकोटे लकड़ी के बनाए जाते थे। मैगस्थनीज़ के भारत वर्णन के खण्ड २५ तथा २६ में लिखा है—

"गंगा की अधिकतम चौड़ाई १०० स्टेडिआ (लगभग १२ मील) है, वह २० फेदम गहरी है। गंगा तथा एक और नदी के संगम पर पालीबोथ्रा (पाटलीपुत्र) नगर बसा हुआ है। यह नगर ८० स्टेडिआ लम्बा तथा १५ स्टेडिआ चौड़ा है·······इस के चारों ओर लकड़ी का परकोट है, जिस में बाण चलाने के लिये जगह जगह छेद बने हुए हैं। इस के चारों ओर खाई है। इस नगर के राजा का नाम सैण्ड्राकोट्टस (चन्द्रगुप्त) है।·······[1] ग्रीक लेखक स्ट्रैबो का कथन है कि मैगस्थनीज़ इसी भारतीय राजा के दरबार में रहा था।

"सैंकड़ों नगर नदियों और समुद्र के किनारे बसे हुए हैं, परन्तु ये नगर ईंटों के न बना कर लकड़ी के बनाए गए हैं। वर्षा बहुत होने के कारण ये नगर लकड़ी के बनाए गए हैं।·······सब से बड़ा नगर पालीबोथ्रा है, जो गंगा और इरानो बोअस (सर विलियम जोन्स के मतानुसार सोन नदी) के संगम पर बसा हुवा है। गंगा भारत की सब से बड़ी नदी है। और इरानोबोअस सम्भवतः भारत की तीसरे नम्बर की नदी है। यद्यपि अन्य देशों की बड़ी से बड़ी नदियों से भी यह नदी बड़ी है तथापि गंगा से छोटी है।"[2]

---

1. Fragments of India. Magasthenes: Frag. 25.
2. " " " Frag. 26.

दूसरी ओर आचार्य कौटिल्य ने जहां दुर्ग निर्माण का वर्णन किया है वहां उन्होंने स्पष्ट रूप से उन्हें ईंटों से बनाने का निर्देश किया है ।[१] नगर भी ईंटों से ही बनाने को कहा है । आचार्य कौटिल्य ने लकड़ी को तो सड़कों तक में इस्तेमाल करने से मना किया है । उनका कथन है—"रथों के मार्ग ताल के लम्बे २ तनों अथवा पत्थरों से बनाने चाहिएं लकड़ी से नहीं । क्योंकि लकड़ी में आग घर बना कर रहती है—।"[२]

इसी प्रकार दोनों लेखकों द्वारा वर्णित किलों की लम्बाई चौड़ाई आदि में भी बड़ा भेद है ।"[४]

२. मैगस्थनीज़ के भारत वर्णन में बौद्ध धर्म का ज़िकर प्राप्त होता है । यद्यपि यह वर्णन बहुत अधिक नहीं है, क्योंकि उस समय तक बौद्ध धर्म राज-धर्म नहीं बना था, तथापि उसने महात्मा बुद्ध का नाम बड़े सन्मान से लिया है । उस का कथन है—"भारतीयों में कई ऐसे विचारक (Philosopher)[३] हैं जो बोत्तो (बुद्ध) के अनुयायी हैं । वे उसे देवता के समान पूजते हैं और उस की असाधारण पवित्रता स्वीकार करते हैं ।

---

१. वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधं ऐष्टकं......कारयेत् ।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २ । अध्या० ३)

२. रथचर्य्यासंचारं तालमुरजकैः''''''वा शैलं कारयेत् । न त्वेव काष्ट-मयमग्निः अवहितो हि तस्मिन् वसति ।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २ । अध्या० ३)

३. मैगस्थनीज़ ने अन्य स्थानों पर 'फिलौसफर' शब्द ब्राह्मणों के लिये प्रयुक्त किया है । यहां उस का अभिप्राय बौद्ध भिक्षुओं से है । स्ट्रैबो आदि कुछ ग्रीक लेखकों का कथन है कि इस वर्णन में मैगस्थनीज़ ने बौद्ध भिक्षुओं को भारतीय ब्राह्मणों से सर्वथा पृथक् वर्णित किया है ।

४. Fragments of Indica· Megasthnese. Frag. 43.

मैगस्थनीज़ के इस उद्धरण से यह स्पष्ट रूपसे विदित होता है कि उस के समय भारतवर्ष में बौद्धधर्मावलम्बियों की पर्याप्त संख्या थी, और उन्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। बौद्ध धर्मानुयायी उस समय तक भारत के अन्य सम्प्रदायों के समान एक सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो चुके थे, परन्तु अभी बौद्ध धर्म सम्पूर्ण भारतव्यापी नहीं बन पाया था।

दूसरी ओर कौटिल्य अर्थशास्त्र में बौद्ध धर्म या उस के अनुयायियों का वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता। केवल तीन शब्द इस प्रकार के प्राप्त होते हैं जिन के आधार पर कौटिल्य के समय बौद्ध धर्मावलम्बियों की सत्ता सिद्ध की जा सकती है। ये तीन शब्द 'पाषण्ड 'शाक्याजीवक' और 'श्रमण' हैं।

संस्कृत साहित्य में 'पाषण्ड' का वास्तविक अर्थ नास्तिक और अनाचारी है। यह शब्द संस्कृत साहित्य में बहुत बदनाम है। 'शब्द-कल्पद्रुम में पाषण्ड का अर्थ है—"पः वेदधर्मः तं खण्डयति।" इसके बाद कहा है—" पा शब्द का अभिप्राय त्रयी धर्म के पालन करने से है, वे लोग उस का खण्डन करते हैं इसी से उन्हें पाषण्ड कहा जाता है। ये पाषण्ड नाना वेशधारी और नाना प्रकार के होते हैं।"[1] मनुस्मृति में पाषण्डी के लिये कहा है—"उसे शीघ्र ही नगर से बाहर निकाल दे।"[2] युक्ति कल्पतरु में इन पाषण्डियों के लिये बहुत से अपमान जनक विशेषण देकर उन्हें दूसरे राष्ट्रों में गुप्तचर के रूप में नियुक्त करने की सलाह दी है—"क्रुद्ध तथा लोभी पाषण्डी और अनुभवी तथा तत्व भाषी तापसों को परराष्ट्रों में नियुक्त करना चाहिये।"[3]

---

१. पालनाच्च त्रयीधर्मः पाशब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाषण्डास्तेन हेतुना॥
नाना व्रतधराः नानावेशाः पाषण्डिनो मताः॥
(शब्द कल्पद्रुम 'पाषण्डी' शब्द)

२. क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात्॥
(मनुस्मृति अ० ६)

३. अक्रुद्धांश्च तथा लुब्धान् दृष्टार्थांस्तत्वभाषिणः॥
पाषण्डिनस्तापसादीन् परराष्ट्रेषु योजयेत्॥ (युक्तिकल्पतरु)

कौटिल्य अर्थ शास्त्र में 'पापण्ड' शब्द बौद्ध क्षपणकों के लिये प्रयुक्त किया गया प्रतीत होता है। कौटिल्यकाल में इन बौद्ध क्षपणकों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। वे समाज से पृथक् समझे जाते थे। उन्हें गुप्तचर के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' नाटक के अनुसार चाणक्य ने क्षपणक गुप्तचर रखे हुए थे। कौटिल्य अर्थशास्त्र में इन क्षपणकों के लिये कहा है—"पापण्ड और चाण्डालों को श्मशान के समीप बसाना चाहिये।"[1] अर्थशास्त्र में सभी स्थानों पर पापण्डों का वर्णन अन्य ब्रह्मचारी, तपस्वी, वानप्रस्थी, संन्यासी आदि पूज्य लोगों से जुदा किया है। जहां इन तपस्वियों के अपराधों पर दण्डविधान वर्णित किया गया है वहां लिखा है—"पापण्ड साधुओं के पास क्योंकि सोना चांदी नहीं होता अतः उन्हें साधारण अपराधों पर उपवास, व्रत आदि का दण्ड देना चाहिये, परन्तु गुरु अपराधों पर उन्हें और लोगों की तरह सजा मिलनी चाहिये।"[2] पापण्ड लोगों द्वारा गुप्तचर का कार्य, तथा अन्य ऐसे कार्य जिनमें छद्मवेश की आवश्यकता पड़े, करवाने का आचार्य कौटिल्य ने निर्देश किया है। यहां तक कि जब राजा किसी दुर्ग में शत्रु द्वारा घेर लिया जाय, तब बचाव का और कोई उपाय न देखकर उसे सलाह दी गई है कि वह—"पापण्ड का वेश बनाकर थोड़े से लोगों के साथ गुप्तद्वार से निकल जाय।"[3] "चित्रकार, बढ़ई, पापण्ड, नट, व्यापारी तथा वेश बदलते हुए गुप्तचर...........''[4]

---

१. पापण्ड चण्डालानां श्मशानान्ते वासः।
(कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २। अध्या० १६)

२. अहिरण्यसुवर्णाः पापण्डसाधवस्ते यथास्वं उपवासव्रतैराराधयेयुः अन्यत्र पारुष्य स्तेय साहस सङ्ग्रहणेभ्य.। तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः।
(कौटिल्य अर्थ० अधि ३. अध्या० १६)

३. प्रसिद्धपार्श्वेण ...... पापण्डछद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत्।
(कौ० अर्थ० अधि० १२ अ० ५)

४. "कारु शिल्पि पापण्ड कुशीलव वैदेहक व्यञ्जकाम्......'
(कौटिल्य अर्थ० अधि० १३ अध्या० ३)

इन सब उद्धरणों से यही प्रतीत होता है कि कौटिल्य के समय बौद्ध क्षपणकों को बड़ी नीची दृष्टि से देखा जाता था।

'शाक्य' का अभिप्राय बौद्धधर्मावलम्बी प्रतीत होता है। इन को तुच्छ तथा घृणा युक्त दृष्टि से देखा जाता था। कौटिल्य अर्थशास्त्र में कहा है कि "जो शाक्य आजीवकों (भिक्षुओं) को देवपितृकार्यों में भोजन कराए उसे १०० पण दण्ड मिलना चाहिये।"[४] इस प्रकरण को छोड़ कर शाक्य शब्द सम्पूर्ण अर्थ शास्त्र में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता। 'श्रमण' का अभिप्राय भी बौद्ध सन्यासियों से है। 'श्रमण' शब्द भी 'शाक्य' शब्द की तरह सम्पूर्ण अर्थ-शास्त्र में केवल एक स्थान पर ही प्राप्त होता है; वहां श्रमणों को गुप्तचर बनाने के लिये कहा गया है।[५]

इस प्रकार यह भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि जहां मैगस्थनीज़ के समय बौद्ध लोगों का अच्छा सन्मान था और उन की संख्या भी पर्याप्त थी वहां आचार्य कौटिल्य के समय बौद्ध संन्यासियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था यह बड़ा भारी भेद है।

इन दोनों भेदों के अतिरिक्त कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मैगस्थनीज़ के भारतवर्ष में और भी बहुत से भेद हैं। ये भेद दोनों ग्रन्थों के पूरे २ प्रकरणों पर आश्रित हैं। अतः हम यहां इनकी प्रतीक न दे सकेंगे। ये भेद निम्नलिखित हैं—

३. कौटिल्य अर्थशास्त्र में मैगस्थनीज़ के भारत वर्णन की अपेक्षा आवा-गमन के लिये सड़कों का बड़ा विस्तृत वर्णन है। यहां तक कि भिन्न २ सड़कों की चौड़ाई, उन की रचना आदि के सम्बन्धों में भी खूब विस्तार से लिखा गया है।

---

४. शाक्याजीवकादीन् वृषलप्रव्रजितान् देवपितृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः। (कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० ३ अध्या० २०)

५. वने वनचरैः कार्याः श्रमणाटविकादयः।
पर प्रवृत्ति ज्ञानार्थाः शीघ्राः चार परम्पराः॥
(कौटिल्य० अधि० १ अध्या० १२)

परन्तु उस में दूरी प्रदर्शक पत्थरों का कहीं वर्णन नहीं है । मैगस्थनीज़ ने अपने भारत-वर्णन में दूरी प्रदर्शक पत्थरों का वर्णन किया है ।

४. मैगस्थनीज़ ने किसानों में पानी के विभाग का वर्णन किया है । कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य के समय पानी के विभाग का कार्य सरकार के आधीन नहीं था अपितु यह काम कृषिकारों के अपने संघों द्वारा ही हुवा करता था ।

५. मैगस्थनीज़ ने प्रत्येक हाथी के साथ जितने नौकर नौकरानियों की संख्या दी है उस की अपेक्षा आचार्य चाणक्य ने हाथी के पालकों की संख्या बहुत अधिक वर्णित की है । कौटिल्य ने मैगस्थनीज़ की अपेक्षा हाथियों की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है ।

६. मैगस्थनीज के अनुसार उस समय हाथी और घोड़े रखने का अधिकार केवल राजा को ही था परन्तु आचार्य कौटिल्य ने इस प्रकार के किसी प्रतिबन्ध का वर्णन नहीं किया । यद्यपि हाथी घोड़ों के सम्बन्ध में उन्होंने मैगस्थनीज की अपेक्षा बहुत अधिक लिखा है ।

७. मैगस्थनीज का भारत-वर्णन पढ़ कर यह प्रभाव पड़ता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रजा से प्रायः मिलते रहते थे, उन्हें बहुत अधिक गुप्त नहीं रखा जाता था । परन्तु आचार्य कौटिल्य ने राजा के शरीर रक्षकों की नियुक्ति तथा उसे गुप्त और सुरक्षित रखने पर बहुत अधिक बल दिया है । उन के अनुसार राजा को प्रजा से बहुत ही सुरक्षित रखा जाता था ।

८. मैगस्थनीज़ के अनुसार पूजा के लिये राजा नगर के मन्दिरों में जाता था परन्तु आचार्य कौटिल्य ने इस कार्य के लिये राज महल में ही मन्दिर बनाने की सलाह दी है ।

९. कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मैगस्थनीज के भारत वर्णन में शिकार तथा वन रक्षकों के सम्पूर्ण वर्णन में भारी भेद है ।

१० मैगस्थनीज ने लिखा है—"सम्पूर्ण भारतीय बिल्कुल स्वतन्त्र हैं। उनमें कोई दास नहीं। भारतीयों के मित्र पड़ोसी लैकिडिमोनिअन (Lakedeamonians) हेलट (Helet) जाति वालों को दास बना कर उन से नीचे दर्जे का काम कराते हैं परन्तु भारतीय लोग अपने शत्रुओं से भी दास का व्यवहार नहीं करते।"[1] मैगस्थनीज के इस वर्णन से प्रतीत होता है कि जिन दिनों वह भारत में था उन दिनों यहां दासत्व प्रथा का सर्वथा अभाव था। परन्तु आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक स्थानों पर दासों का वर्णन आता है।[2] कौटिल्य अर्थशास्त्र के तृतीय अधिकरण का १३ वां अध्याय, जो पर्याप्त लम्बा चौड़ा है, दासों से सम्बन्ध रखने वाले नियमों पर ही लिखा गया है। इस अध्याय का शीर्षक है "दास कल्पः।"

११. व्यापार, व्यवसाय, कर, अपराध, दण्डविधान आदि के सम्बन्ध में मैगस्थनीज़ का वर्णन बिल्कुल प्रारम्भिक, साधारण और अपूर्ण है। कौटिल्य अर्थशास्त्र का वर्णन उस की अपेक्षा बहुत अधिक पूर्ण और उन्नत है।

१२. इसी प्रकार कौटिल्य अर्थशास्त्र का गुप्तचर विभाग मैगस्थनीज़ द्वारा वर्णित गुप्तचर विभाग से कहीं अधिक उन्नत और पूर्ण है। उसे पढ़ कर मैगस्थनीज़ द्वारा कथित यह धारणा कि, भारतीयों में चोरी आदि पाप तथा साहस के कार्य प्रायः बिल्कुल नहीं होते थे, नष्ट हो जाती है।

१३. राजदूत मैगस्थनीज तथा आचार्य चाणक्य के ग्रन्थों में सरकार की रचना, शासन प्रबन्ध, आर्थिक प्रबन्ध, नगर समितियां, नगर निरीक्षक, भूमि निरीक्षक, स्थानीय संस्थाएं आदि के वर्णनों में भारी भेद है। यह भेद केवल इसी बात के आधार पर नहीं टाला जा सकता कि मैगस्थनीज़ का सम्पूर्ण भारत वर्णन प्राप्त नहीं होता। उस का जितना अंश प्राप्त होता है, उस में और आचार्य चाणक्य के वर्णनों में भारी भेद है।

---

1. Fragments of India, Magasthenese. Frag. 26.
२. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० २ अध्या० १
 " " " ४ " १२

परन्तु उक्त दोनों ग्रन्थों के सम्पूर्ण वर्णनों में केवल भेद ही भेद नहीं है कुछ समानतायें भी हैं। उपज, वर्ष की फसलें, किले का स्थान, किले के परकोटे में गोली चलाने के छेद, हाथी पालना, भारतीयों में बहुविवाह की प्रथा, जीवन का ढंग, विवाह का उद्देश्य, पुत्र पैदा करने को धर्म समझना, राजा की मुख्यता—इन सब बातों में कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मैगस्थनीज के वर्णन लगभग एक समान ही हैं। इन समानताओं पर पृथक २ कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

दोनों ग्रन्थों के उपर्युक्त तुलनात्मक अनुशीलन द्वारा एक बात बड़े स्पष्ट रूप में दिखाई देती है, वह यह कि आचार्य चाणक्य तथा राजदूत मैगस्थनीज के लेखों में परस्पर जो समानताएं पाई जाती हैं वे प्रायः सभी इस प्रकार की हैं, जो आज तक भी लगभग उसी रूप में चली आरही हैं। आज भी भारत में उतनी ही बार खेती बोई जाती है और उतनी ही फसलें होती हैं जितनी कौटिल्य या मैगस्थनीज ने वर्णन की हैं। किले का स्थान चुनना, उसके परकोटे में छेद होना आदि बातें मुगल काल के अन्त तक उसी प्रकार की जाती रही हैं। बहु विवाह की प्रथा का उन्मूलन करने के लिये यद्यपि यत्न अवश्य किया जा रहा है तथापि वह आज तक भारत में मौजूद है। आज भी भारतीय जनता राजा की मुख्यता उसी रूप में स्वीकार करती है। इस समय तक भी पुत्र पैदा करना धर्म के अन्तर्गत समझा जाता है। अतः इन समानताओं के आधार पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि आचार्य चाणक्य और राजदूत मैगस्थनीज अवश्य ही समकालीन हुए हैं। दूसरी ओर दोनों ग्रन्थों के वर्णनों में जो भेद हैं, उन में से अधिकांश धर्म, समाज की दशा, कानून, शासन व्यवस्था, और किसी वस्तु के वर्णन के विस्तार में है। ये सब बातें ऐसी हैं जिन में काल के भेद से परिवर्तन आता रहता है।

कौटिल्य अर्थ शास्त्र और मैगस्थनीज के वर्णनों में परस्पर भेद देख कर जर्मनी के डाक्टर स्टीन ने तो कौटिल्य अर्थशास्त्र को आचार्य चाणक्य कृत मानने

से ही इनकार कर दिया है।[1] वास्तव में दोनों ग्रन्थों के वर्णनों में परस्पर इतना भारी भेद है कि उन्हें एक ही काल में लिखा हुआ माना ही नहीं जा सकता।

इसी प्रकार कौटिल्य में नियोग का वर्णन भी प्राप्त होता है। यदि कोई राजपुरुष विदेश गया हो तो उसकी स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार न था पर वह किसी और व्यक्ति से बच्चा उत्पन्न कर सकती थी। इस तरह अपने वंश की रक्षा के लिए बच्चा पैदा कर लेना बदनामी का कारण नहीं होना चाहिए।[2]

स्मृति ग्रन्थों में यह प्राप्त होता है कि पहले नियोग होता था। अतः कौटिल्य उन से पूर्ववर्ती सिद्ध होता है।

---

1. Magasthenese and Koutilya. Dr. Otto Stein. (मूल जर्मन ग्रन्थ) page 298.

२. कौटिल्य अर्थशास्त्र अधि० ३। अध्या० ४।
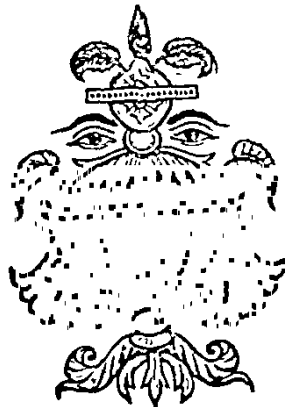
छठा अध्याय

परिणाम

अंग्रेज़ ऐतिहासिक भारतवर्ष के प्राचीन को एक ऐसा नया और अछूता विषय समझते हैं, जिस की चिन्ता प्राचीन भारतीयों ने तिलमात्र भी नहीं की थी ; अतः वे अपना यह पूर्ण अधिकार समझते हैं कि इस देश के प्राचीन इतिहास की तिथियों का निर्णय वे अपने दिमाग से करें। मि० एलफिन्स्टन का कथन है—"सिकन्दर के भारत आक्रमण से पूर्व के भारतीय इतिहास की किसी घटना की कोई तिथि निश्चित नहीं की जा सकती, और मुसल्मानों के भारत पर आक्रमण करने से पूर्व भारत के किसी जातीय परिवर्तन के सम्बन्ध में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।"[1] प्रो० मैक्समूलर भारतवर्ष को एक विचारकों और दार्शनिकों का देश समझते हैं अतः उन के ख्याल में यहां प्राचीन इतिहास का पूर्ण अभाव है। उनका कथन है—"जहां प्राचीन ग्रीक संसार को जीवन तथा वास्तविकता से पूर्ण समझते थे वहां प्राचीन भारतीय संसार को स्वप्न और भ्रम मानते थे। प्राचीन ग्रीक और भारतीय आर्य जाति के ऐतिहासिक विकास के दो सर्वथा प्रतिकूल सिरे हैं।"[2] डाक्टर फ्लीट का कथन है—"यद्यपि प्राचीन हिन्दुओं का अन्य साहित्य बहुत धनी है तथापि उस में कोई विश्वसनीय ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।"[3] ऐसे ही मत अन्य अंग्रेज़ ऐतिहासिकों के भी हैं।

इन उद्धरणों द्वारा हम यही बताना चाहते हैं कि भारत के प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं की उपलब्धि असम्भव मान कर पाश्चात्य

---

1. History of India. Elphinstone. Page 11.
2. History of Sanskrit Literature. Max Muller. Page 9.
3. Imperial gazetteer of India. Dr. J. F. Fleet's article on 'Epigraphy.'

ऐतिहासिक विदेशी साहित्यों में जहां नहां भारत का कुछ वर्णन प्राप्त होता है उसी के आधार पर इस देश के प्राचीन इतिहास को निर्णय करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह करते हुए जब वे भारतीय साहित्य में उपलब्ध होने वाले वर्णनों की सर्वथा उपेक्षा कर देते हैं तब उन के निकाले हुए परिणाम पूर्णतया भ्रमात्मक और अशुद्ध बन जाते हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास ज्ञान से अवगत थे या नहीं इस की विवेचना हम अपने इतिहास के प्रथम खण्ड में भली प्रकार कर चुके हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि प्राचीन भारतीयों में आजकल की ऐतिहासिक बुद्धि नहीं थी तब भी भारत के प्राचीन साहित्य में तत्कालीन राजवंशों के जो तिथि सहित वर्णन उपलब्ध होते हैं उन की सर्वथा उपेक्षा कर देना बिल्कुल अयुक्तियुक्त होगा। ऐतिहासिक बुद्धि के अभाव का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि ऐसा व्यक्ति यदि किसी का कुछ वर्णन करेगा तो वह सर्वथा अशुद्ध होगा। इस का अभिप्राय यही है कि ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखे गये वर्णनों में घटनाओं की परम्परा तथा उन के द्वारा निकाले गए परिणामों में भ्रम रहने की पूरी सम्भावना है। अतः उस अवस्था में यही उचित होगा कि उन वर्णनों अथवा परिणामों की सत्यता जांचने के लिये अन्य कसौटियां भी व्यवहार में लाई जांय। उन वर्णनों को सर्वथा अशुद्ध कह कर छोड़ देना ही ऐतिहासिक बुद्धि के अभाव का प्रमाण समझा जायगा। हम देखते हैं कि पाश्चात्य ऐतिहासिक अपने अनुचित विश्वासों तथा अधूरे विदेशी प्रमाणों द्वारा इस देश के प्राचीन इतिहास का निर्माण करते हैं और उस इतिहास को सत्य सिद्ध करने के लिये भारतीय साहित्य में उपलब्ध होने वाले तिथिक्रम या घटनाओं की परम्परा को तोड़ मरोड़ कर या भींचभांच कर उसी कल्पना में सम्बन्ध कर देने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिये पुराणों में नन्दवंश के राजकाल की सम्पूर्ण अवधि १०० वर्ष प्राप्त होती है परन्तु पाश्चात्य ऐतिहासिक अपनी कल्पित ग्रीक समसामयिकता को सिद्ध करने के लिये इसे, बिना किसी आधार के, ५० वर्ष कर देते हैं।

फिर, भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य को सर्वथा इतिहास शून्य कहना भी तो सत्य नहीं है। यदि कुछ ग्रन्थों में अविश्वसनीय और असम्भव तिथियां प्राप्त होती हैं तो केवल इसी आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि भारत का सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य तत्कालीन इतिहास के सम्बन्ध में इसी प्रकार के असम्भव वर्णनों से भरा हुवा है। भारत का सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य किसी एक ही व्यक्ति का लिखा हुवा तो नहीं है, कि उस में से एक घटना को असम्भव सिद्ध कर के सम्पूर्ण साहित्य को ही असम्बन्ध और असम्भव घटनाओं से पूर्ण मान लिया जाय। यदि उस में राम के ६० हजार वर्ष राज्य करने की हास्यास्पद बात प्राप्त होती है तो दूसरी ओर 'राजतरंगिणी' जैसे प्राचीन शुद्ध रूप से ऐतिहासिक ग्रन्थ भी तो उपलब्ध होते हैं। स्वयं पुराण ग्रन्थों में, विशेष कर विष्णु पुराण में, जो राजवंशावलियां पूरे तिथिक्रम सहित प्राप्त होती हैं उन्हें असत्य कहने का कोई कारण नहीं है। सौभाग्य से अब भारत के प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री की सत्ता स्वीकार करने वाले पाश्चात्य विद्वानों का सर्वथा अभाव नहीं रहा। प्रो० विलसन और श्रीयुत पार्जीटर जैसे महानुभाव स्पष्ट रूप में इस बात को स्वीकार करते हैं।

काल माप तथा काल गणना पूर्ण रूप से शुद्ध करने का भारतीयों का प्राचीन काल से स्वभाव है। इसी कारण भारत के प्राचीन साहित्य में ऋतु विभाग, वर्ष विभाग, नक्षत्रों और सौर मण्डल की काल की दृष्टि से गति आदि का वर्णन खूब विस्तार से उपलब्ध होता है। ज्योतिष विद्या, काल की शुद्ध गणना जिसका मूल आधार है, भारतीयों ने ही सब से पूर्व आविष्कृत की थी। इस बीसवी सदी में भी, जहां विज्ञान के अन्य अंगों में पाश्चात्य सभ्यता बहुत उन्नति कर गई है। भारतीय ज्योतिष पाश्चात्य ज्योतिष से, काल गणना के सम्बन्ध में अधिक पूर्ण है, भारतीय आर्यों का कालगणना पूर्ण रूप से ठीक करने का स्वभाव इतना स्थायी है कि आज कल भी हिन्दू घरों में ब्राह्मण जब कभी कोई संस्कार कराते हैं तब वे उस समय के सृष्टि सम्वत्, वर्ष, ऋतु, मास, तिथि, घड़ी, पल, राशी आदि सम्पूर्ण काल गणना सम्बन्धी अंकों अथवा नामों का ठीक निर्देश करते हैं। कालगणना करना जिस जाति का स्वाभाविक गुण

है उसे ऐतिहासिक बुद्धि से सर्वथा शून्य कहना और उस के साहित्य में उपलब्ध होने वाले तिथिक्रम को सर्वथा असम्बद्ध मान लेना बुद्धिमत्ता से शून्य होगा।

चाहिये तो यह था कि प्राचीन भारतीय साहित्य में जो राजवंशावलियां उपलब्ध होती हैं, अथवा जो तिथियां प्रथा से चलती आकर आज तक भी सम्पूर्ण भारत या उसके किसी भाग में व्यवहृत होती हैं, उन्हीं के आधार पर उनकी जांचकर, भारतीय इतिहास का निर्माण किया जाय। परन्तु ऐसा न करके पाश्चात्य त्यता को ऐतिहासिक भारतीय इतिहास की गौण साक्षियों के अधूरे वर्णनों के आधार पर हीभारतीय साहित्य की तिथियों को भ्रमपूर्ण और असंगत मान लेते हैं।

प्रचलित ग्रीक समसामयिकता (Greek Synchronism) पर जो आक्षेप स्थापित किये जा सकते हैं उन्हें अत्यन्त संक्षेप से हम पिछले दो अध्यायों में वर्णित कर चुके हैं। उस समसामयिकता की संगति भी हम भारतीय इतिहास में अन्यत्र लगा चुके हैं। श्रीनारायण शास्त्री द्वारा आविष्कृत एक नवीन पर्शियन समसामयिकता का वर्णन भी किया जा चुका है। इन सब प्रमाणों के आधार पर हम महाभारत युद्ध को ३१३६ वर्ष ईसवी पूर्व स्वीकारे करते हैं। और विष्णु पुराण में उपलब्ध होने वाली राजवंशावली के आधार पर महाभारत के बाद हम निम्न तिथिक्रम को स्वीकार करते हैं—

१. बार्हद्रथ वंश	३१३६ ई० पू० से	२१३३ ई० पू० तक	....	२२ राजा
२. प्रद्योत वंश	२१३३ ”	१९९५ ”	....	५ ”
३. शिशुनाग वंश	१९९५ ”	१६३५ ”	....	१० ”
४. नन्द वंश	१६३५ ”	१५३५ ”	....	२ ”
५. मौर्य वंश	१५३५ ”	१२१९ ”	....	१२ ”
६. शुङ्ग वंश	१२१९ ”	९१९ ”	....	१० ”
७. कराव वंश	९१९ ”	८३४ ”	....	४ ”
८. आन्ध्रवंश	८३४ ”	३२८ ”	....	३२ ”
९. गुप्तवंश	३२८ ”	८२ ”	....	७ ”

इस तृतीय खराड में १९९५ ई० पू० से १५३५ ई० पू० तक के शिशुनाग वंश और नन्द वंश के इतिहास का वर्णन किया जायगा।

द्वितीय भाग
धार्मिक सुधारणा

प्रथम अध्याय

बुद्ध का प्रादुर्भाव

भारतवर्ष के इतिहास में समय समय पर जो क्रान्तिकारी सुधारक जन्म लेते रहे हैं, उन में महात्मा बुद्ध का स्थान बहुत ऊंचा है। जिन दिनों महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ उन दिनों इस देश का सामाजिक और वैयक्तिक आचार बहुत अवनत हो चुका था। लोग धर्म के वास्तविक स्वरूप को भूल कर रूढ़ी के उपासक बन गए थे। इतिहास में इस युग को कर्मकाण्ड का युग कहा जाता है। इस कर्मकाण्ड का अभिप्राय यज्ञों से है। इन दिनों यज्ञ करना मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा जाता था। परन्तु 'यज्ञ' के वास्तविक अभिप्राय को भूल कर लोग रात दिन आग में भिन्न भिन्न प्रकार की आहुतियां डालते रहने को ही यज्ञ-साधना समझते थे। वेद के मन्त्रों का अशुद्ध अर्थ समझकर पशुबलि को यज्ञ की श्रेष्ठतम आहुति स्वीकार करते थे। सात्रिक और पौर्व-यज्ञों में सैंकड़ों, हजारों मूक और निरपराधी पशुओं की आहुति दी जाया करती थी। इसी प्रकार धर्म के अन्य सामाजिक और वैयक्तिक आचरणों में भी बहुत अधिक बिगाड़ आगया था। महात्मा बुद्ध ने इसी रूढ़ी-पूजा के विरुद्ध आवाज़ उठाई। अपनी साधना और तपस्या के बल से उन्होंने भारतवर्ष में युग-परिवर्तन कर दिया। असीम हिंसा के भाव का नाश कर के उन्हों ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक साथ अहिंसा के व्रत में दीक्षित कर लिया। भारतवर्ष की वह धार्मिक क्रान्ति इस देश के

इतिहास में सदैव अमर रहेगी। महात्मा बुद्ध ने कोई नया सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया किन्तु उन्होंने केवल धर्म के सनातन और सच्चे स्वरूप का प्रतिपादन मात्र ही किया।

परन्तु उन के अनुयाइयों ने धीरे धीरे अपने नेता के वास्तविक भावों को भुला दिया। महात्मा बुद्ध के नाम पर एक भिन्न सम्प्रदाय की स्थापना कर दी गई। उनकी शिक्षाओं को तोड़ मोड़ कर उसे एक पृथक् मत का स्वरूप दे दिया गया। वास्तव में प्रत्येक सुधारक अपने समय की आवश्कताओं के अनुसार धर्म के कुछ पहलुओं पर ही विशेष बल दिया करता है। इसी तथ्य के अनुसार महात्मा बुद्ध ने उस पशुहिंसा के युग में अहिंसा का पवित्र झण्डा खड़ा किया था। परन्तु उन के उपदेशों का केवल यही एक पहलू नहीं है। उन्होंने मनुष्य जीवन के प्रायः प्रत्येक आध्यात्मिक और आधार सम्बन्धी पहलू पर अपने विचार प्रगट किये हैं। ये विचार प्राचीन भारतीय विचारों के प्रतिरूप ही हैं। तथापि उन के अनुयाइयों ने एकमात्र अहिंसा के सिद्धान्त को लेकर एक पृथक् अवैदिक सम्प्रदाय की रचना कर दी। फल यह हुआ कि कालान्तर में भारतवर्ष से बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से नाश हो गया। इस अध्याय में हम महात्मा बुद्ध के धार्मिक सिद्धान्तों और विचारों का उल्लेख करके अगले अध्याय में उनकी समीक्षा करेंगे।

महात्मा बुद्ध के जीवन तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन हम बौद्ध त्रिपिटक ग्रन्थों के आधार पर करेंगे। ये त्रिपिटक ग्रन्थ महात्मा बुद्ध के देहावसान के बाद समय समय पर लिखे जाते रहे। इन में महात्मा बुद्ध के उपदेशों तथा उनके जीवन की घटनाओं का संग्रह है। इन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर अपने पथ-प्रदर्शक की महत्ता और अलौकिकता सिद्ध करने के लिये अत्युक्ति से भी काम लिया गया है। ये सम्पूर्ण त्रिपिटक पाली भाषा में ही लिखे गये हैं।

इन ग्रन्थों के नाम ये हैं—

त्रिपिटक

विनय पिटक — सुत्त पिटक — अभिधम्म पिटक

सुत्त पिटक—
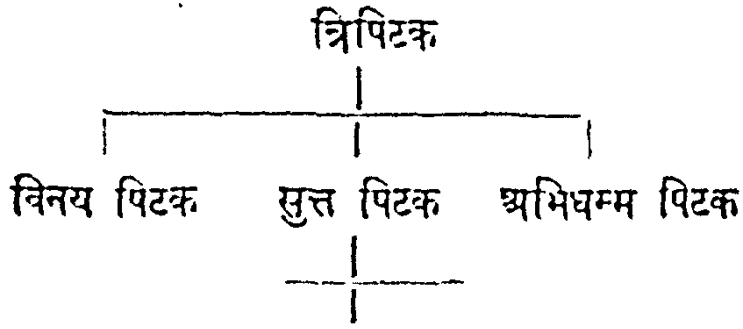
१. दीघ निकाय.
२. मज्झिम निकाय.
३. संयुत्त निकाय.
४. अंगुत्तर निकाय.
५. खुद्दक निकाय.—

१. खुद्दक पाप.
२. धम्प पद.
३. उदान.
४. इति वुत्तकं.
५. सुत्त निपात.
६. विमान वत्थु.
७. पेत वत्थु.
८. थेर गाथा.
९. तिरि गाथा.
१०. जातक.
११. निद्देस
१२. पति संभिदा.
१३. अपदान.
१५. बुद्ध वंश.
१५. क्रिया पिटक.

महात्मा बुद्ध प्राची धर्म के प्रचारक थे— महापरि निव्वान सुत्त (महा परिनिर्वाण सूत्र) के चतुर्थ अध्याय में महात्मा बुद्ध के कार्य के सम्बन्ध में कहा है—"सर्व श्रेष्ठ प्रभु ! तुम्हारे मुख से निकले हुए शब्द सर्व श्रेष्ठ हैं। जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी गिरा दी गई चीज़ को पुनः ठीक कर देता है, अथवा किसी छिपी चीज़ को प्रगट कर देता है, या किसी भटके हुए को ठीक राह दिखा देता है, या अन्धकार में बत्ती द्वारा प्रकाश कर देता है जिस से आंखों वाले लोग वस्तुओं के वाह्य आकार को देख सकें—ठीक उसी प्रकार बुद्ध भगवान की कृपा से सत्य धर्म का पुनः प्रकाश कर दिया गया है। इसलिये मैं भी संघ में सम्मिलित होना चाहता हूं।" इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध का उद्देश्य कोई पृथक सम्प्रदाय खड़ा करना नहीं था। वह केवल प्राचीन सत्य मार्ग का प्रचार ही करना चाहते थे।

'धम्म-चक्कप्पवत्तन सुत्त (धर्म-प्रवर्तन सूत्र) में पुष्ट मार्गों का वर्णन इस प्रकार है—"काशी में एक समय महात्मा बुद्ध पांच भिक्षुओं के साथ 'दिग दाय' नामक कुटीर में ठहरे हुए थे। एक दिन पांचों भिक्षुओं को उन्होंने यह उपदेश दिया—'भिक्षुओ ! मनुष्यों को चाहिये कि वे संसार के इन दो सीमान्त मार्गों का अनुसरण न करें। पहला मार्ग है भोग के आकर्षणमय पदार्थों का अतिशय सम्भोग। सन्तोष प्राप्ति का यह सर्वथा निकम्मा और हानिकर मार्ग है। सांसारिक व्यक्ति ही प्रायः इस मार्ग का अनुसरण करते हैं। दूसरा सीमान्त मार्ग है— अतिशय तपस्या। यह भी कष्टप्रद, निकम्मा और हानिकर है।

'हे भिक्षुओ, इन दोनों सीमाओं से भिन्न एक मध्य का मार्ग तथागत ने बताया है। यह मार्ग आंखें खोल देता है; इस का अनुसरण करने वाला व्यक्ति संसार के यथार्थ रूप को समझ लेता है। यह मार्ग हृदय को शान्ति, उच्च बुद्धि, पूर्ण प्रसन्नता और निर्वाण की ओर ले जाता है। यह श्रेष्ठ मार्ग इन निम्न आठ भागों में विभक्त है:—[1]

---

१. धम्म चक्क पवत्तन सुत्त. १, २, ३ और ४.

१. सत्य दृष्टि

२. सत्य भाव

३. सत्य भाषण

४. सत्य व्यवहार

५. सत्य निर्वाह

६. सत्य प्रयत्न

७. सत्य विचार Right Mindfulness.

८. सत्य ध्यान Right Contemplation.

'भिक्षुओ ! वास्तविक दुख निम्नलिखित हैं—जन्म लेते हुए दुख होता है, बुढ़ापा दुख है, बीमारी दुख है, मृत्यु दुख है । अप्रिय से मिलना दुख है, प्रिय से बिछुड़ना दुख है, कोई बड़ी इच्छा पूर्ण न होना दुख है। संक्षेप में मोह से उत्पन्न होने वाले पांच महायोग दुख देने वाले हैं।"[1]

'भिक्षुओ ! दुख की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—"यह वह प्यास है जो भोग के आनन्द से नयी हो जाती है, इस के द्वारा मनुष्य सन्तोष प्राप्ति के लिये इधर से उधर मारा मारा भटकता है । दूसरे शब्दों में अपनी वासनाओं को तृप्त करने की इच्छा अथवा भविष्य जीवन में सुख प्राप्ति की इच्छा, या वर्तमान जीवन में सफलता की इच्छा ही दुख का कारण है।"[2]

'भिक्षुओ ! दुख निवारण के वही आठ मार्ग हैं जो पहले बताए गए हैं। इनके निवारण द्वारा कोई वासना शेष नहीं रहती । इसके द्वारा उपर्युक्त प्यास से छुटकारा हो जाता है।"[3]

महात्मा बुद्ध ने अपने देहान्त से पूर्व अन्तिम रुग्ण शैया पर से अपने शिष्यों को जो उपदेश दिया था वह आज सम्पूर्ण प्राप्त नहीं होता । 'महापरि निब्बान

---

१. धम्म चक्क पवत्तन सुत्त ५.

२. " " ६.

३. " " ७. ८.

सूत्त' में उनके बहुत से खण्ड प्राप्त होते हैं । इनके द्वारा महात्मा बुद्ध के मन्तव्यों का वास्तविक ज्ञान हो जाता है । इस उपदेश में बौद्ध धर्म का सम्पूर्ण स्वरूप वर्णित है । इसी के आधार पर हम यहां महात्मा बुद्ध के मन्तव्यों का अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु सारभूत परिचय अपने पाठकों को देंगे ।

महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण उपदेशों का उद्देश्य आत्म-निर्माण और आत्म-संयम है। इसके उपाय हैं—

(क) चार ध्यान (चत्तारो सत्तिपत्थान)

१. शरीर पर ध्यान

२. अनुभव पर ध्यान

३. भावों और विचारों पर ध्यान

४. बुद्धि और आचार पर ध्यान

(ख) पाप के विरुद्ध चार महान प्रयत्न (चत्तारो समप्पध्यान)

१. पाप भावना के उत्थान को रोकने का प्रयत्न

२. पाप की जो अवस्थाएं उत्पन्न हो गई हैं उन्हें उखाड़ फेंकने का प्रयत्न

३. जो भलाई इस समय उपस्थित नहीं है, उसे उत्पन्न करने का प्रयत्न

४. यदि भलाई मौजूद हो तो उसे बढ़ाने का प्रयत्न

(ग) साधु बनने के चार मार्ग (चत्तारो इधि पाद)

१. साधुपन को प्राप्त करने के लिये इच्छा पूर्वक सच्चा ध्यान और पाप के विरोध में अध्यवसाय

२. पूर्ण ध्यान के साथ आवश्यक प्रयत्न तथा पाप के विरुद्ध अध्यवसाय—

३. पूर्ण ध्यान के साथ अपने हृदय की खोज तथा पाप के विरुद्ध अध्यवसाय,

(घ) पांच नैतिक शक्तियां (पञ्च बलानि)

१. विश्वास

२. शक्ति

३. विचार

४. आत्म निरीक्षण (Contemplation)

५. बुद्धि

(ङ) सात बुद्धियां (सत्त बोधाङ्ग)

१. शक्ति

२. विचार

३.

४. निरीक्षण

५. आल्हाद

६. शान्ति

७. पवित्रता

(च) आठ मार्ग (आरियो अल्थांकिको मार्गो) का वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

इन सम्पूर्ण साधनाओं द्वारा निर्वाण की प्राप्ति होती है। प्रतीत होता है कि इस 'निर्वाण' शब्द से महात्मा बुद्ध का अभिप्राय मोक्ष का था। परन्तु उन के अनुयाइयों ने निर्वाण का एक नया अभिप्राय मान कर उसकी पुष्टि के लिये नवीन बौद्ध दर्शनों का निर्माण किया है। वे लोग इस निर्णय का शाब्दिक अर्थ लेते हैं—'बुझ जाना'। जिस प्रकार दीया तेल या बत्ती के समाप्त हो जाने पर बुझ जाता है उसी प्रकार इन साधनाओं के द्वारा मनुष्य निर्वाण पद को प्राप्त होता है। उस का पुनर्जन्म नहीं होता। इस प्रकार वह सांसारिक दुखों से सदा के लिये छुट्टी पाजाता है।

द्वितीय अध्याय

महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित्र
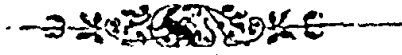
ईसवी सन् के प्रारम्भ से लगभग १५०० बरस पूर्व भारतवर्ष अनेक भागों में विभक्त था। इन भागों पर भिन्न २ प्रकार की शासन-व्यवस्थाएं प्रचलित थीं। इन भागों को हम जुदा जुदा राज्य कह सकते हैं। कुछ राज्यों में एकात्मक राज-सत्ता कायम थी और कुछ पर प्रजातन्त्र स्थापित था। इन प्रजातन्त्र राज्यों में से एक में "शाक्य" जाति निवास किया करती थी। इसी शाक्य वंश के निर्वाचित राष्ट्रपति शुद्धोदन के घर में ईसा से पूर्व महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। बुद्ध का जन्म का नाम गौतम था।

भारतवर्ष के वर्तमान मानचित्र में महात्मा बुद्ध के जन्म स्थान को पर्याप्त सुगमता और निश्चय के साथ प्राप्त किया जासकता है। हिमालय की नैपाल के निकटस्थ पहाड़ियों और राप्ती नदी के बीच में करीब ३० मील की चौड़ाई का एक मैदान है। यह मैदान खूब हरा भरा और उपजाऊ है। राप्ती नदी अवध के उत्तर पूर्वीय भाग में बहती है। बौद्ध साहित्य में इसका नाम 'अचिरावती' उपलब्ध होता है। इस नदी के किनारे फैले हुए इस मैदान में ही शाक्यों का यह प्रजातन्त्र अवस्थित था। उन के राष्ट्र का विस्तार अधिक नहीं था। इस राज्य की पूर्वीय सीमा रोहणी नाम की एक छोटी सी नदी थी जो इसे अन्य राज्यों से पृथक् करती थी। दक्षिण-पश्चिम में यह प्रजातन्त्र राप्ती नदी तक विस्तृत था। शाक्य वंश के शासन काल में यह प्रान्त खूब उपजाऊ था। हिमालय के निकट होने के कारण यहां पानी की कमी नहीं थी। परन्तु पीछे से यह प्रान्त उजड़ गया। मुग़ल सम्राट अकबर ने भी इस प्रान्त को फिर से आबाद करने का प्रयत्न किया था। परन्तु उस के बाद फिर से यहां जंगलों की बहुतायत हो गई। अंग्रेज़ी सरकार आजकल इसे पुनः आबाद करने का प्रयत्न कर रही है।

शाक्य वंश की सैनिक और राजनीतिक शक्ति अपने पड़ोसी राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत कम थी, परन्तु क्षत्रियोचित वीरता का इन में अभाव न था। इस वंश की आर्थिक दशा भी बहुत उन्नत थी। उनके राज्य में सोने की कानें थी अतः उनके पास सोना अधिक परिमाण में था। उन के वैभव का मुख्य साधन चावल की कृषि थी। गंगा के मैदानों तथा पार्वतीय प्रदेशों के मध्य में अवस्थित होने के कारण इस जाति के व्यापार व्यवसाय की दशा भी बहुत सन्तोषजनक थी।

महात्मा बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन और माता का नाम माया था। बुद्ध के जन्म के एक सप्ताह बाद ही माया का देहान्त हो गया। तब माया की बहिन और शुद्धोदन की दूसरी पत्नी महाप्रजापति मोहिनी ने बालक गौतम का पालन किया। गौतम के पिता सम्भवतः शाक्य वंश के एक बड़े जमींदार थे। यह प्रसिद्ध है कि गौतम एक बड़े राजा का पुत्र था, परन्तु सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में यह बात उपलब्ध नहीं होती। यह सम्भव है कि शुद्धोदन शाक्य वंशीय प्रजा-तन्त्र में राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित हों। शाक्य प्रजातन्त्र की राजधानी कपिल-वस्तु नगर था। बालक सिद्धार्थ का बचपन और नवयौवन इसी नगर में व्यतीत हुआ। कपिल वस्तु नगर एक सम्पन्न और बड़ा शहर था। इस की गलियां हाथी, रथ, घोड़े और पैदल मनुष्यों से प्रति समय भरी रहती थीं। सिद्धार्थ की दूसरी माता से उस का एक भाई और एक बहिन और भी पैदा हुई थी।

उस प्रान्त के कुलीनों की शिक्षा में भौतिक उन्नति की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता था। गौतम की शिक्षा में भी वेदों की शिक्षा की अपेक्षा अन्य विद्याओं के अभ्यास पर अधिक बल दिया गया। उसे तीरन्दाज़ी, घोड़े पर चढ़ना, मल्लविद्या आदि में खूब प्रवीण बना दिया गया। फिर भी गौतम सिद्धार्थ के प्राचीन संस्कार उसे श्रेय मार्ग का पथिक बनाने का प्रयत्न करते थे। कई बार अपने घर से दूर एक जम्बू वृक्ष के नीचे बालक **गौतम** सिद्धार्थ ध्यानमग्न दशा में समाधि लगाए पाया गया। अपने अन्य कुलीन समान वयस्कों के साथ सिद्धार्थ का नवयौवन बड़े ऐश्वर्य में व्यतीत होने लगा। सरदी, गरमी और वर्षा इन तीनों ऋतुओं में निवास करने के लिये तीन भिन्न भिन्न महल बने हुए थे।

प्रत्येक महल में अपनी २ ऋतु के अनुसार सब ऐश्वर्य के सामान एकत्र किये गये थे। उस के भ्रमण और विनोद के लिये सघन उद्यान लगाये हुये थे । इन में फूलों से लदे हुए सुन्दर कुञ्ज कमलों से भरे हुए छोटे २ तालाब और मर मर ध्वनि करते हुए मनोहारी झरने और पीपल, शाल, मौलसरी, आम आदि के समान आकार वाले वृक्षों की क्रमबद्ध पंक्तियां थीं।

नवयुवक सिद्धार्थ ने अपने गुरुजनों की आज्ञा से यशोधरा नाम की एक अनन्य सुन्दरी राजकुमारी का स्वयंवरण किया । यह राजकुमारी सब दृष्टियों से नवयुवक सिद्धार्थ के योग्य थी। इस विवाह के अनन्तर दोनों का गृहस्थ-जीवन बड़े आनन्द से व्यतीत होने लगा। सिद्धार्थ के वैराग्य पूर्ण प्रबल संस्कार भी गृहस्थ के इस पारस्परिक प्रेममय समर्पण के प्रवाह में कुछ समय के लिए दब से गए। कुछ समय के उपरान्त सिद्धार्थ का राहुल नामक पुत्र उत्पन्न हुवा।

सिद्धार्थ को इस प्रकार पूर्ण रूप से सांसारिक होता हुवा देख कर उस के पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि बचपन से ही अपने पुत्र की प्रवृत्तियां वैराग्य-पूर्ण देख कर उसे भय होगया था कि कहीं गौतम युवावस्था में ही संन्यास न ग्रहण कर ले। शुद्धोदन ने एक दिन कपिलवस्तु का परिदर्शन करने का निश्चय किया। उस दिन नगर को खूब सजाया गया था, ताकि संसार के दुखमय दृश्य देखकर कहीं सिद्धार्थ की प्रवृत्ति फिर से वैराग्योन्मुखी न होजाय । कपिलवस्तु के नागरिक राजकुमार सिद्धार्थ की वीरता सुन्दरता तथा सरल स्वभाव के कारण इस से प्रेम करते थे। अतः जिस दिन सिद्धार्थ रथ पर सवार होकर नगर को देखने के लिए निकला उस दिन नागरिकों ने उस का हार्दिक स्वागत किया। राजकुमार सिद्धार्थ नगर की शोभा को देखता हुआ चला जा रहा था कि उस का ध्यान सड़क के एक ओर लेट कर अन्तिम श्वांस भरते हुए एक बीमार की ओर पड़ा। सारथी से उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह एक बीमार है जो कष्ट के कारण भूमि पर पड़ा हुआ तड़प रहा है और थोड़ी ही देर में इसका देहान्त हो जायगा। कोमल-हृदय सिद्धार्थ पर इस दृश्य का गहरा प्रभाव

हुवा। इस के बाद उसे क्रमशः एक लाठी टेक कर जाता हुवा बूढ़ा, स्मशान की ओर जाती हुई एक अर्थी और एक शान्त मुख सन्यासी दिखाई दिया। पहले तीन दृश्यों को देख कर गौतम का दबा हुवा वैराग्य एक दम प्रबल हुवा। इसे यह भोग-विलासमय जीवन अत्यन्त तुच्छ और क्षणिक जान पड़ने लगा। संन्यासी को देख कर उस के हृदय में उमंग आई कि मैं भी इसी प्रकार संसार से विरत होजाऊं।

इस घटना के बाद सिद्धार्थ को फिर से वैरागी सा होता हुवा देख कर उसके पिता को बड़ी चिन्ता हुई। उस ने संसार के तीव्र विलासों द्वारा सिद्धार्थ का वैराग्य दबा देने का प्रयत्न किया। एक रात को सिद्धार्थ अत्यन्त सुन्दरी वेश्याओं के बीच में अकेला छोड़ दिया गया। ये नवयुवती वेश्याएं नाना प्रकार के हावभाव कर के उसे रिझाने का प्रयत्न करती रहीं। सिद्धार्थ उदासीन भाव से स्थिरदृष्टि होकर वहां बैठा रहा। थोड़ी देर में उसे नींद आगई। रंग न जमने के कारण वेश्याओं को भी नींद सताने लगी। वे सब वहीं सो गईं। जब आधी रात के समय सिद्धार्थ की नींद अचानक टूटी तब उस ने देखा कि थोड़ी देर पूर्व जो नवयुवतियां सचमुच सुन्दरता का अवतार प्रतीत होरही थीं, उनकी ओर अब आंख उठाकर देखने से भी भय लगता है। कोई जोर २ से खुराटे ले रही है, किसी के बाल अस्तव्यस्त हैं, कोई भयंकर स्वप्न देखने के कारण मुख को विकृत कर रही है, किसी के शरीर से वस्त्र उतर गया है। सिद्धार्थ थोड़ी देर तक इस विचित्र दृश्य को देखता रहा। इस के बाद वह वहां से उठ कर अपने शयनागार में चला गया। इस दृश्य ने उस के कोमल हृदय को और भी अधिक वैरागी बना दिया। उसने शीघ्र ही संन्यास लेलेने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

रात को नवयुवक राजकुमार सिद्धार्थ ने गृहत्याग कर दिया। शयनागार से बाहर आकर जब वह सदा के लिये अपने परिवार से बिदा होने लगा तब उसे अपने प्रिय अबोध बालक राहुल और सुन्दरी यशोधरा की मधुर स्मृति सताने लगी। वह पुनः अपने शयनागार में प्रविष्ट हुवा। यशोधरा सुख की नींद में सो रही थी। राहुल माता की छाती से सट कर सो रहा था। कुछ देर तक

सिद्धार्थ इस अनुपम दृश्य को देखता रहा । उसके हृदय पर दुर्बलता प्रभाव करने लगी । परन्तु अगले ही क्षण अपने हृदय के कोमल भावों को एक साथ परे ढकेल कर राजकुमार सिद्धार्थ अपने प्रिय घोड़े कन्थक पर सवार होकर कपिलवस्तु से बाहर चला गया । राजकुमार सिद्धार्थ अब संन्यासी सिद्धार्थ बन गया । इस गृहत्याग के समय सिद्धार्थ की आयु लगभग २६ बरस की थी ।

प्रातःकाल हो जाने पर सिद्धार्थ ने अपना घोड़ा भी खुला छोड़ दिया । घोड़ा स्वयं अपने घर वापिस लौट गया । सिद्धार्थ ने अपने राजसी कपड़े एक साधारण किसान से बदल लिये । प्रातःकाल शुद्धोदन ने सिद्धार्थ की खोज में अपने अनुचरों को भेजा परन्तु बाल काट कर किसान के वस्त्र धारण किए हुए सिद्धार्थ को पहिचान लेना आसान न था । सिद्धार्थ निश्चिन्त होकर अपने मार्ग पर अग्रसर होने लगा ।

इस के बाद लगातार ७ बरस तक सिद्धार्थ ज्ञान और सत्य की खोज में इधर उधर भटकता रहा । शुरु शुरु में उस ने क्रमशः दो तपस्वियों को अपना गुरु धारण किया । इन दोनों ने उसे 'निर्वाण' का उपदेश दिया । निर्वाण प्राप्ति के लिये इन्होंने बुद्ध से खूब तपस्या करवाई । निष्क्रिय हो जाने को उन्होंने निर्वाण-प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय बताया । सिद्धार्थ शरीर को पूर्णरूप से क्रिया शून्य, हृदय को भाव शून्य और मस्तिष्क को विचार शून्य करने का प्रयत्न करने लगा । परन्तु इन साधनों द्वारा उसे आत्मिक शान्ति जरा भी अनुभव न हुई । अतः उसने यह मार्ग छोड़ दिया ।

निष्क्रिय हो जाने के मार्ग को छोड़ कर सिद्धार्थ सम्पूर्ण मगध को पार करता हुआ उरुवेल पहुंचा । उरुवेल के मनोहर दृश्यों ने उस के हृदय पर बड़ा उत्तम प्रभाव डाला । इस प्रान्त के निस्तब्ध और सुन्दर जंगलों तथा मधुर शब्द करने वाले स्वच्छ जल के झरनों ने उस की तपस्या में खूब सहायता दी । महात्मा बुद्ध ने स्वयं अपने शिष्यों से उरुवेल के इन सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है । उनका कथन है कि आत्मिक शान्ति तथा मोक्ष के अभिलाषी जनों को सिद्धि प्राप्त करवाने में प्राकृतिक सुन्दर दृश्य भी बड़े सहायक

होते हैं। इन उरुवेल के जंगलों में गौतम ने भारी तपस्या प्रारम्भ की। वह लगातार पद्मासन लगा कर बैठा रहता। भोज्य पदार्थ तथा पानी का उस ने बहुत ही न्यून सेवन शुरू कर दिया। यहां तक कि उसकी जीभ तालु से चिपक गई। इतनी तपस्या करने पर भी उसे अभीष्ट-प्राप्ति नहीं हुई। यह देख कर उस ने तपस्या की मात्रा और भी अधिक बढ़ा दी। अब उस ने भोजन और पानी का सर्वथा त्याग कर दिया। यहां तक कि वह प्राणायाम द्वारा अपने श्वाश प्रश्वासों का भी संयम करने लगा।

उरुवेल के इन जंगलों में ५ और तपस्वी भी रहते थे। उन तपस्वियों ने जब गौतम की इस कठोर तपस्या को देखा, तो वे बड़े प्रभावित हुए। इन्होंने गौतम को अपना गुरु मान लिया। ये लोग अपनी सम्पूर्ण क्रियाएं छोड़ कर गौतम की तपस्या को देखने लगे। इनको विश्वास था कि गौतम शीघ्र ही मुक्त हो जायगा और तब हम भी उसी के मार्ग का अनुसरण करके शीघ्र अपना ध्येय प्राप्त कर लेंगे। इस कठोर तपस्या से गौतम का शरीर लाश के समान होगया। परन्तु फिर भी उसे अपना ध्येय प्राप्त न हुआ, उसने अपनी आत्मा को उसी स्थान पर पाया जहां पर वह पहले थी। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास होगया कि अपने शरीर को भयंकर कष्ट देने से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। गौतम ने यह भयंकर तपस्या छोड़ दी, और आहार लेना प्रारम्भ कर दिया। उसका शरीर थोड़े ही दिनों में फिर से पहले के समान पुष्ट हो गया। यह देख कर पांचों तपस्वियों ने निराश होकर गौतम का साथ छोड़ दिया। गौतम फिर से बिल्कुल अकेला रह गया।

इसके बाद सातवें वर्ष की समाप्ति पर गौतम ने वर्तमान बुद्ध-गया के एक 'बढ़' के पेड़ की छाया में सात दिन की निरन्तर समाधि लगाई। इस पेड़ के नीचे वह लगातार सात दिन और सात रात तक ध्यानमग्न दशा में बैठा रहा। सातवें दिन की समाप्ति पर वह गौतम से "बुद्ध" बन गया अर्थात् उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो गया। राजकुमार गौतम की तपस्या सफल हुई। वह अज्ञान से ज्ञानावस्था को प्राप्त हो गया। 'अज्ञान' की दशा से वह 'निश्चय' की दशा में पहुंचा और निश्चय से 'ज्ञान' की दशा में। महात्मा बुद्ध के अपने शब्दों में जिस

तरह इच्छा से प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति से सत्ता, सत्ता से उत्पत्ति और उत्पत्ति से बुढ़ापा, दुख, शोक, कष्ट, निराशा और मृत्यु होती है उसी तरह राजकुमार गौतम क्रमिक विकासों द्वारा ज्ञानी बुद्ध बन गया। इस दशा में उसने अनुभव किया कि उस की आत्मा बुरी इच्छाओं, सांसारिक अभिलाषाओं, भूलों तथा अज्ञान से मुक्त हो गई है। इस मुक्तावस्था में मुक्ति का ज्ञान पैदा हुआ जिससे वह पुनर्जन्म के बन्धन से भी छूट गया। इस अवस्था में उसे निश्चय हो गया कि मैंने यह पवित्र मार्ग समाप्त कर लिया मेरा कर्तव्य पूरा होगया; अब मैं पुनर्जन्म के बन्धन में नहीं पडूंगा।

बौद्ध-जातक-ग्रन्थों में महात्मा बुद्ध की इस ज्ञान-प्राप्ति की अवस्था का बड़ा विस्तृत और अतिरंजित वर्णन किया गया है। जातक-ग्रन्थों में लिखा है कि इस दिन ज्ञान प्राप्ति के समय महात्मा बुद्ध पर मार (कामदेव) आदि राक्षसों ने अपनी सेना सहित चढ़ाई की। उनके सामने नाना प्रकार के प्रलोभन तथा कंपा देने वाले भय उपस्थित किये परन्तु बुद्ध ने इन सब पर विजय पाई। सम्भव है कि प्रारम्भ में ये वर्णन महात्मा बुद्ध के हृदय के अच्छे-बुरे भावों की अन्तिम लड़ाई को उपलक्ष में रख कर लिखे गए हों, और पीछे से इन्हें और भी अधिक अतिरंजित कर दिया गया हो। महात्मा बुद्ध ने सात दिन की तीव्र तपस्या के अनन्तर अपनी समाधि भंग की। भाग्य से इसी समय दो धनी व्यापारी उसी वृक्ष के निकट से गुज़रे। महात्मा बुद्ध के उज्वल चेहरे को देख कर वे इतने प्रभावित हुए कि वे वहीं कुछ देर के लिये रुक गए। उन्होंने अपने पास से अच्छे से अच्छा भोजन महात्मा बुद्ध को समर्पित किया। लम्बे उपवास के बाद पहले पहल महात्मा बुद्ध ने इन्हीं व्यापारियों का भोजन स्वीकार किया।[१] यद्यपि ये दोनों व्यापारी महात्मा बुद्ध को देख कर अत्याधिक प्रभावित हुए तथापि महात्मा बुद्ध ने उन्हें कोई उपदेश नहीं दिया। उन के हृदय में अभी तक यह प्रश्न समस्या का रूप धारण किये हुए था कि वह अपने ज्ञान का लोगों

---

१. महावग्ग I. ४. २.

में प्रचार करें या नहीं? पीछे से महात्मा बुद्ध ने बहुत सोच विचार कर अपने अनुभवों द्वारा मनुष्य जाति के कल्याण करने का निश्चय कर लिया।

यह निश्चय कर महात्मा बुद्ध बनारस की ओर चले। वर्तमान सारनाथ के स्थान पर उन्हें अपने पूर्व-परिचित पांचों तपस्वी मिले। उन्हें दूर ही से देख कर महात्मा बुद्ध ने यह निश्चय कर लिया कि सब से पहले मैं इन्हीं पांचों को इस मार्ग में दीक्षित करूंगा! जब इन पांचों तपस्वियों ने गौतम को दूर से आते हुए देखा तब वे आपस में बातें करने लगे "देखो, यह वही गौतम अपने परिश्रम में असफल होकर निराश अवस्था में यहां चला आरहा है, जिसने अपनी तपस्या बीच में ही भंग कर दी थी। हम लोग इस का खड़े होकर सम्मान नहीं करेंगे। यदि वह चाहे तो स्वयं हमारे पास आकर बेशक बैठ जाय।

परन्तु जब महात्मा बुद्ध और निकट आगए तब उन के चेहरे पर एक विशेष प्रकार की ज्योति देखकर पांचों तपस्वी आश्चर्य में आगए, और उन्होंने खड़े होकर महात्मा बुद्ध का स्वागत किया, उन के पैर धुलाए और उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। इसके अनन्तर उन्होंने महात्मा बुद्ध से ज्ञान-मार्ग का उपदेश मांगा और बुद्ध ने उन्हें निर्वाण का उपदेश किया। बौद्ध साहित्य में महात्मा बुद्ध के इस सारनाथ के उपदेश का बहुत अधिक महत्व है। यह उन का पहला और सब से अधिक महत्व-पूर्ण उपदेश है। इस उपदेश के प्रभाव से वे पांचों तपस्वी उन के शिष्य बन गए। इसी उपदेश के कारण वर्तमान बौद्ध-संसार बुद्ध-गया के बाद सारनाथ को ही सब से अधिक पवित्र स्थान मानता है। कुछ सदियों बाद महाराज अशोक ने इस स्थान पर एक बड़ा भारी स्तूप बनवाया।

तदनन्तर महात्मा बुद्ध काशी नगर में पहुंचे। उनके वहां पहुंचते, ही 'यस' नाम का एक धनी कुलीन सपरिवार उन का अनुयाई हो गया। कुछ ही दिनों में महात्मा बुद्ध के ६० अनुयाई होगए। उन्हों ने इन शिष्यों को भिक्षुक के रूप में परिवर्तित कर दिया, फिर इन्हें नाना प्रकार के उपदेश देकर विभिन्न प्रान्तों में एक साथ अपने मन्तव्यों का प्रचार करने के लिये भेज दिया। सब से पूर्व उन्हों

ने ढोले को उरूवेल जाने का आदेश दिया। उरुवेल उस समय याज्ञिक ब्राह्मणों का गढ़ था। वहां एक हज़ार के लगभग ब्राह्मण इस प्रकार के रहते थे जो हर समय अग्नि कुण्ड को प्रदीप्त रख कर उस में वेद मंत्रों द्वारा आहुतियां दिया करते थे। कश्यप गोत्र के तीन ब्राह्मण बौद्ध धर्म में दीक्षित होगए। इन सब ने भी बौद्ध भिक्षुओं का वेश धारण कर लिया। कश्यप इस दल का नेता था। वह महात्मा बुद्ध के बड़े शिष्यों में गिना जाने लगा।

इस घटना से महात्मा बुद्ध की ख्याति दूर दूर तक फैल गई। काशी से वह अपने शिष्यों सहित राजगृह (राजगह) पहुंचे। उन्हों ने नगर के बाहर एक जंगल में डेरा लगाया, परन्तु उन की प्रशंसा सुन कर मगध राज्य का नवयुवक राजा बिम्बिसार अपनी बहुत सी प्रजा को साथ ले उन के पास पहुंचा। बिम्बिसार ने जब महात्मा बुद्ध और कश्यप को एक साथ बैठे देखा तब वह यह न पहिचान सका कि इन दोनों में से वास्तविक बुद्ध कौन है? वह प्रणाम करने के लिये इस समस्या में पड़ कर हिचकिचा ही रहा था कि कश्यप ने बड़ी नम्रता से खड़े होकर उसे महात्मा बुद्ध का परिचय दिया। इस के अन्तर महात्मा बुद्ध ने बिम्बिसार को उपदेश किया। जिस के प्रभाव से राजा बिम्बिसार अपनी प्रजा सहित उन का अनुयाई बन गया।

राजगृह से महात्मा बुद्ध ने दो ऐसे शिष्य भी प्राप्त किए जो कालान्तर में बौद्ध धर्म के बड़े महत्वपूर्ण स्तम्भ सिद्ध हुए। इन दोनों का नाम सारिपुत्त और मौग्गलन है। ये दोनों प्रतिभाशाली ब्राह्मण-कुमार बचपन से एक दूसरे के अभिन्न मित्र थे और सदैव एक साथ रहा करते थे। जब राजा बिम्बिसार अपनी बहुत सी प्रजा के साथ महात्मा बुद्ध के दर्शनों को गया था, तब ये दोनों वहां नहीं गए थे। इन दोनों को सम्भवतः महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात ही नहीं था। एक दिन जब ये दोनों नगर की एक गली के निकट बैठे हुए किसी विषय पर बातचीत कर रहे थे, महात्मा बुद्ध का अस्सजी नाम का एक शिष्य भिक्षापात्र हाथ में लेकर उसी गली में से गुज़रा। इन दोनों ब्राह्मण-कुमारों ने उसे देखा। उस की चाल, वस्त्र, मुखमुद्रा और शान्त तथा

वैराग्य पूर्ण दृष्टि से ही ये दोनों इतने अधिक प्रभावित हुए कि उस के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने को व्याकुल हो उठे। जब तक अस्सजी भिक्षा मांगता रहा, तब तक इन्होंने उसके कार्य में कोई बाधा देना उचित नहीं समझा। जब अस्पजी भिक्षा का कार्य समाप्त करके वापिस जाने लगा तब ये दोनों उस के पास पहुंचे, और उसका परिचय प्राप्त किया। अस्सजी से महात्मा बुद्ध का पता मालूम करके ये दोनों उनके पास पहुंचे। इन दोनों को देखते ही महात्मा बुद्ध समझ गये कि ये दोनों तेजस्वी ब्राह्मण मेरे प्रधान शिष्य बनने के योग्य हैं। महात्मा बुद्ध से थोड़ी देर बात करते ही ये दोनों भी उनके संघ में दीक्षित हो गए।

जब मगध के बहुत से कुलीन महात्मा बुद्ध के संघ में दीक्षित होगए तब इस घटना से मगध की जनता में असन्तोश फैलने लगा। लोगों ने कहना शुरु किया—"यह साधु प्रजा की संख्या घटाने, स्त्रियों को विधवाओं के समान बनाने और कुलों का नाश कराने के लिये आया है। इस से बचो।" महात्मा बुद्ध के शिष्यों ने उन्हें आकर यह सूचना दी कि मगध की जनता आजकल इस भाव के गीत बना कर गा रही है—"सैर करता हुआ एक साधु मगध की राजधानी में आया है, और पहाड़ की चोटी पर डेरा डाले बैठा है, उसने संजय के सब शिष्यों को अपना चेला बना लिया है, आज न मालूम वह किसे अपने पीछे लगाएगा?"

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया—"मेरे प्रिय शिष्यो! इस बात से घबराओ नहीं। लोगों का यह असन्तोष क्षणिक है। वे शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जांयगे। जब वे पूछते हैं कि न मालूम आज बुद्ध किस को अपने पीछे लगाएगा, तब तुम उत्तर दिया करो—"वीर और विवेकशाली पुरुष उसके अनुयायी बनेंगे। बुद्ध पर कौन इल्जाम लगा सकता है? वह तो सत्य के बल पर ही लोगों को अपना अनुयायी बनाता है।"

बुद्ध का दैनिक जीवन—अब महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन का उद्देश्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना बना लिया था। भारतवर्ष में वह युग कर्मकाण्ड

का युग कहा जाता है। लोग यज्ञों के क्रियाकाण्डों में, उन दिनों, प्रति समय व्यस्त रहते थे। यज्ञों में पशुहिंसा प्रारम्भ करदी गई थी। उनके वास्तविक अभिप्रायों को लोग भूल चुके थे। समाज में वर्ण-व्यवस्था बड़े विकृत रूप में कार्य कर रही थी। जन्म के आधार पर वर्ण समझा जाता था, अतः जिन लोगों को शूद्र वर्ण में जन्म लेने का दुर्भाग्य प्राप्त होता था, वे समाज की इस व्यवस्था से बहुत असन्तुष्ट थे। इन सब परिस्थितियों ने महात्मा बुद्ध के कार्य में बहुत सहायता पहुंचाई। वह जहां गए प्रायः लोगों ने उन का उद्धारक के रूप में स्वागत किया। लोग मानों पहले ही उनके अनुयाई बनने के लिये उतावले हो चुके थे।

महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को धर्म-प्रचार के लिये दूर दूर के प्रान्तों में भेजना शुरू किया। उनके शिष्य छोटी छोटी टोलियां बना कर सुदूर प्रान्तों में अपने गुरु का सन्देश सुनाने लगे। महात्मा बुद्ध स्वयं भी अपने शिष्यों का एक बड़ा सा टोला लेकर इस कार्य के लिये जगह जगह घूमने लगे। उनके टोले में शिष्यों की संख्या प्रायः २०० से ५०० तक रहती थी। यह टोला किसी नगर के निकट जाकर नगर से बाहर डेरा डाल देता था। लोग वहां उनके दर्शनों के लिये आते थे और उन्हें धर्मोपदेश किया जाता था।

प्रतिवर्ष बरसात की मौसम में महात्मा बुद्ध के अधिकांश शिष्य उनके समीप आजाते थे। इन दिनों बरसात के कारण यात्रा करना कठिन होजाता था, अतः महात्मा बुद्ध भी दौरा बन्द कर के कहीं विश्राम किया करते थे। पूरे तीन मास तक यह बरसात की छुट्टियां मनाई जाती थीं। इन दिनों महात्मा बुद्ध के शिष्य अपने गुरु से नए नए भाव और नई २ उमंगें ग्रहण किया करते थे। स्वाध्याय के लिये भी उन्हें इस ऋतु में पर्याप्त समय मिल जाता था। इन दिनों भी जिज्ञासु लोग महात्मा बुद्ध के डेरे में आना बन्द नहीं करते थे। दूर दूर से लोग आकर उनके संघ में दीक्षित होते थे। बरसात के ये दिन प्रायः दो बड़े बड़े उपवनों में ही काटे जाते थे। इन उपवनों के नाम वेलुवन और जेतवन हैं। ये दोनों बाग़ बुद्ध के शिष्यों ने उन्हें इसी उद्देश्य से समर्पित किये हुए थे।

वर्षा ऋतु के अतिरिक्त, अन्य ऋतुओं में उसी प्रकार घूम फिर कर धर्म-प्रचार किया जाता था। जब किसी नगर में महात्मा बुद्ध का टोला जाता तो वहां के लोग उत्सुकता पूर्वक उन के दर्शनों के लिये आते थे। नगर के श्रद्धालु और धनी लोग उन्हें भोजन के लिये निमन्त्रण देते। कभी कभी यह निमन्त्रण सब भिक्षुओं को कोई एक व्यक्ति ही देता था, और कभी बहुत से गृहस्थी भिक्षुओं को अलग अलग हिस्सों में बांट कर निमन्त्रण देते थे। भिक्षु लोग मांस बिल्कुल नहीं खाते थे। भोजन के अनन्तर हाथ मुंह धोकर महात्मा बुद्ध अपने 'गृही' को उपदेश किया करते थे। इस समय नगर के अन्य निवासी भी उन के समीप आजाया करते थे। धर्मप्रचार का यही सर्वश्रेष्ठ समय समझा जाता था। महात्मा बुद्ध के अन्य शिष्यों का भी लोग प्रायः इसी प्रकार हार्दिक स्वागत करते थे। उदाहरण के लिये अवन्ती (मालव) के लोग बहुत समय तक महात्मा बुद्ध की प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु महात्मा बुद्ध को वहां जाने का समय न मिल सका। पूरे तीन वर्ष के बाद उनके शिष्य दस भिक्षुओं की एक टोली वहां गई। लोगों ने इस टोली का हार्दिक स्वागत किया। सैकड़ों आदमी उनके अनुयाई बन गए।

महात्मा बुद्ध जहां ठहरते थे, वहां उनके पास दर्शन करने तथा उपदेश लेने के उद्देश्य से प्रति समय सैकड़ों लोग आते रहते थे। इन में राजा, रईस, कुलीन, व्यापारी, भूमिपति—सभी लोग होते थे। महात्मा बुद्ध यथाशक्ति स्वयं इन लोगों को धर्म की दीक्षा देते थे। एक समय महात्मा बुद्ध ने मगध देश के राजवैद्य जीवक के बाग में, शहर से बाहर, डेरा डाला। महात्मा बुद्ध को देख कर जीवक पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसका ध्यान सांसारिक बातों से उठ कर पारमार्थिक विषयों की तरफ लग गया। मगध पर इन दिनों राजा अजातशत्रु राज्य कर रहा था। अपने दरबार में अजातशत्रु ने जीवक से कोई बातचीत शुरु की, परन्तु जीवक बहुत गम्भीर बना हुवा था। राजा के पूछने पर उसने वास्तविक कारण बतला दिया। तब अजातशत्रु अपने बहुत से कुलीन दरबारियों के साथ हाथी पर सवार होकर महात्मा बुद्ध के दर्शनों के लिये गया। बुद्ध से बातचीत कर के वह इतना अधिक प्रभावित हुवा कि वह भी उनका अनुयाई बन गया—यद्यपि वह भिक्षु नहीं बना। महात्मा बुद्ध ने उसे भिक्षु बनने की सलाह भी नहीं दी।

महात्मा बुद्ध के उपदेश देने का ढंग बहुत अधिक रोचक था। वह गम्भीर से गम्भीर उपदेश भी बातचीत के ढंग में दिया करते थे। अपने जीवन में एकसाथ लम्बे व्याख्यान उन्होंने बहुत कम दिये होंगे। इसी कारण पीछे से बौद्ध साहित्य में भी उनके उपदेशों और विचारों का संग्रह भी बातचीत के ढंग पर ही किया गया है।

महात्मा बुद्ध के शिष्य—किसी धर्माचार्य का जीवन-वृत्तान्त लिखते हुए उस के शिष्यों का वर्णन करना आवश्यक होता है। कोई भी महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी कार्य कोई सुधारक कुछ विशेष सहायकों के बिना नहीं कर सकता। महात्मा बुद्ध को उन के धर्म प्रचार में अनेक अनुयाइयों द्वारा बड़ी सहायता मिली। महात्मा बुद्ध के ये शिष्य उन की सब से बड़ी सम्पत्ति थे। इन पर उन्हें अभिमान था। बुद्ध जन्ममूलक जातिबन्धन के शत्रु थे। स्वयं कुलीन होते हुए भी वह कुलीन-प्रधानता के पक्षपाती नहीं थे। अतः उनके प्रिय और मुख्य शिष्यों में हमें सब श्रेणियों के लोग प्राप्त होते हैं। जन्म के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोग उन के अनुयायी बने। अपनी प्रतिभा के अनुसार उपर्युक्त सभी वर्णों के कतिपय व्यक्ति उनके प्रधान शिष्य गिने जाने लगे। महात्मा बुद्ध के प्रमुख शिष्यों का परिचय इस प्रकार है:—

सारपुत्त और मौगालिन—ये दोनों ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। दोनों बचपन से ही अभिन्न मित्र थे और एक साथ ही महात्मा बुद्ध द्वारा दीक्षित किये गये थे। इन दोनों की शिक्षा बहुत उच्च थी। महात्मा बुद्ध इन दोनों को अपना सर्वश्रेष्ठ शिष्य समझते थे। ये दोनों भी अपने आचार्य के पूर्ण भक्त थे। बुद्ध की यह इच्छा थी कि अपने बाद वह इन्हीं दोनों को भिक्षु-संघ का प्रधान नियुक्त करें। परन्तु अभाग्य वश इन दोनों का देहान्त महात्मा बुद्ध के जीवन काल में ही होगया। इन दोनों ने अपने जीवन में बौद्ध धर्म का अनथक प्रचार किया था।

आनन्द—शाक्यवंश में ही इस आनन्द का जन्म हुआ था। यह रिश्ते में महात्मा बुद्ध का चचेरा भाई था। सारिपुत्त और मौगालिन के बाद महात्मा

बुद्ध को आनन्द ही सब से अधिक प्रिय था। इसे उन्होंने एक प्रकार से अपना वैयक्तिक सहायक बना रक्खा था। उपर्युक्त दोनों भिक्षु प्रायः महात्मा बुद्ध से अलग रह कर धर्म-प्रचार किया करते थे, परन्तु आनन्द प्रायः बुद्ध के साथ ही रहा था। यही कारण है कि उन्होंने जो उपदेश दिये हैं, उन में से बहुतों में आनन्द को ही संबोधन किया है।

उपाली—आनन्द के बाद उपाली का स्थान है। जन्म से यह शाक्य वंश के राजघराने की हजामत करने वाले किसी नाई का लड़का था। भिक्षुओं के सम्बन्ध में नियम बनाने में इस से महात्मा बुद्ध को बड़ी सहायता मिली।

अनुरुद्ध और राहुल—अनुरुद्ध एक प्रसिद्ध व्यापारी का लड़का था। महात्मा बुद्ध के उपदेशों के प्रभाव से वह अपनी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति छोड़ कर भिक्षु-संघ का सदस्य बन गया था। अपनी तीव्र प्रतिभा के प्रभाव से उसने शीघ्र ही भिक्षुओं में एक विशेष स्थान बना लिया। राहुल महात्मा बुद्ध की अपनी एकमात्र सन्तान थी। यह भी अपनी इच्छा से अपने पिता द्वारा दीक्षित होकर भिक्षु बन गया। परन्तु भिक्षुओं में इसका अपना कोई विशेष महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

देवदत्त—आनन्द का बड़ा भाई देवदत्त था। महात्मा बुद्ध से जन्म से ही तीव्र द्वेश-भाव होते हुए भी यह भिक्षु-संघ में दीक्षित होगया। भिक्षु बन कर भी इसने अनेक षड्यन्त्रों में भाग लेकर महात्मा बुद्ध की हत्या करने के कई प्रयत्न किये। परन्तु किसी में भी उसे सफलता प्राप्त न हुई। अन्त में निराश होकर उसने महात्मा बुद्ध पर यह दोषारोप किया कि वह वास्तविक भिक्षु नहीं है। भिक्षुओं के लिये इस ने नगरों में न जाने तथा कपड़े पहिनने आदि के अनेक नियम बनाए। परन्तु इस बात में ही किसी अन्य भिक्षु ने उसका सहयोग न दिया। उसे पूर्ण रूप से पराजय हुई। देवदत्त का अन्त, "कुल्ल वाभ" के अनुसार बहुत ही कष्ट में हुवा।

सुनीति—महात्मा बुद्ध का यह शिष्य जन्म से किसी बहुत ही नीच जाति का था। इसका पिता भंगी का कार्य करता था।

यह स्वयं भी अपनी जवानी तक यही कार्य करता रहा। तब लोग इस से घृणा करते थे—इसे छूते नहीं थे। मगध के एक प्रसिद्ध नगर में एक बार इसने महात्मा बुद्ध को अपने शिष्यों सहित दूर से जाते हुए देखा। यह अपना काम छोड़ कर भागा हुवा उन के पास पहुंचा। वहां जाते ही वह उन के पैरों पर गिर पड़ा। महात्मा बुद्ध उसे देख कर वहीं रुक गए। उसे उठा कर उन्होंने वहीं पर उपदेश दिया। उसे बौद्ध-भिक्षु-संघ में दीक्षित कर लिया गया! इस प्रकार महात्मा बुद्ध का यह प्रिय शिष्य जन्म से एक अछूत समझी जाने वाली जाति का था।

इन के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के अनुयाई इस प्रकार के भी थे जो भिक्षु-संघ में तो दीक्षित नहीं हुए थे परन्तु सच्चे अर्थों में महात्मा बुद्ध के अनुयाई थे। इन लोगों द्वारा भी उन्हें अपने प्रचार-कार्य में बड़ी सहायता मिली। वास्तव में महात्मा बुद्ध का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार मात्र को भिक्षु बनाना था ही नहीं। भिक्षु लोग तो उनके प्रचारक मात्र थे। सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहने वाले लोगों में से भी हज़ारों लोग महात्मा बुद्ध के अनुयाई थे। इन में से चार का स्थान मुख्य है।

बिम्बिसार और पासन्दी—ये दोनों क्रमशः मगध और कौशल के राजा थे। अपने समय में ये दोनों बड़े शक्तिशाली राजा समझे जाते थे। इन दोनों द्वारा महात्मा बुद्ध को अपने कार्य में बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

जीवक—यह बिम्बिसार का राजवैद्य था। बिम्बिसार को महात्मा बुद्ध के पास जाने की इसी ने प्रेरणा की थी।

अनाथ पिण्डिक—यह एक बहुत बड़ा ज़मींदार था। महात्मा बुद्ध को जेतवन का सुप्रसिद्ध उपवन इसी ने समर्पित किया था। भिक्षुओं के भोजन का प्रबन्ध प्रायः इसी के ज़िम्मे होता था।

महात्मा बुद्ध ने स्त्री जाति के साथ निस्सन्देह उचित कार्य नहीं किया। परन्तु इस में उन का अपना कोई दोष नहीं था। यह उस काल का ही प्रभाव

था। उस युग में स्त्रियों की जो स्थिति थी उस की तुलना में महात्मा बुद्ध ने स्त्री जाति का बड़ा उपकार किया। महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को भी अपने भिक्षुसंघ में सम्मिलित करने की आज्ञा दे दी थी। परन्तु ये भिक्षुणियां भिक्षुओं से पृथक् रक्खी जाती थीं। इनकी स्थिति भिक्षुओं की अपेक्षा बहुत नीची समझी जाती थी। महात्मा बुद्ध ने अनेकों वार स्त्रियों के निमन्त्रण स्वीकार किये हैं, उन्हें उपदेश और आशीर्वाद भी दिया है। कौशल नगर की विशाखा नामक एक कुलीन स्त्री ने महात्मा बुद्ध तथा उनके शिष्यों को उस नगर में सब से पूर्व आमन्त्रित किया। महात्मा बुद्ध उस के यहां गए। उन्होंने उस के आतिथ्य-सत्कार की बड़ी तारीफ़ की, उसे उपदेश और आशीर्वाद भी दिया। उस युग में स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में हम एक अलग अध्याय में विचार करेंगे अतः यहां इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। तथापि इस विशाखा के आतिथ्य का वर्णन करना यहां अनुचित न होगा। विशाखा कौशल नगर की कुलीनतम नागरिका थी। जिन दिनों उसने महात्मा बुद्ध और उन के शिष्यों को अपने यहां निमंत्रित किया, उन दिनों वह वृद्धा थी। उस के पुत्र नगर के महत्वपूर्ण नागरिक थे। महात्मा बुद्ध उन दिनों तक इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि कुलीन और धनी लोग उन्हें निमंत्रित करने के लिये लालायित रहते थे। महात्मा बुद्ध सब लोगों का आतिथ्य स्वीकार नहीं करते थे। जिन्हें वह योग्य और श्रेष्ठ समझते थे, उन्हीं का आतिथ्य ग्रहण किया जाता था। इसका अभिप्राय यही है कि कौशल नगर में विशाखा ही उन्हें सब से अधिक श्रेष्ठा जान पड़ी। विशाखा के यहां वह अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ भोजन करने गए।

भोजन के उपरान्त विशाखा ने महात्मा बुद्ध से कहा—"भगवन्! मैं आप से आठ प्रार्थनाएं करती हूं। आप उन्हें अवश्य स्वीकार करें।"

महात्मा बुद्ध के पूछने पर उसने कहा—"भगवन्! मैं संघ के भिक्षुओं को वर्षा ऋतु में कपड़े देना चाहती हूं। बाहर से इस नगर में यहां आये हुए, अथवा कहीं और जाते हुए यहां ठहर गए या बीमार भिक्षुओं को भोजन देना चाहती हूं। बीमार भिक्षुओं के इलाज का प्रबन्ध करना चाहती हूं। चावलों का

एक सदाव्रत खोलना चाहती हूं और भिक्षुओं को नहाने की पोशाकें देना चाहती हूं।"

इन सब दानों का महात्मा बुद्ध द्वारा कारण पूछे जाने पर विशाखा ने अपनी पहली सात इच्छाओं का कारण तो भिक्षुओं को आराम देना ही बताया और अन्तिम इच्छा का यह कारण बताया कि भिक्षुणियें अचिरावती नदी के जिस घाट पर एक साथ नग्न होकर नहाती हैं, उसी घाट पर नगर की वेश्याएं नवयुवती भिक्षुणियों पर ताने कसती हैं। इस पर प्रायः वहां तकरार हो जाता है। साथ ही श्रीमन्! मेरी राय में स्त्रियों का इस तरह स्नान करना सर्वथा अनुचित, भद्दा और आक्षेप योग्य है, अतः उन्हें मैं नहाने की पोशाकें देना चाहती हूं।"

इस पर महात्मा बुद्ध ने विशाखा के सम्पूर्ण भावों की बड़ी प्रशंसा की। उसे उपर्युक्त सभी बातों की आज्ञा प्रदान की और आशीर्वाद दिया। अपने जीवन में महात्मा बुद्ध ने इतना सुन्दर आशीर्वाद बहुत कम लोगों को दिया होगा।

महात्मा बुद्ध ने अपने अन्तिम दिनों लगभग ४० वर्ष की आयु में लोगों में धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था। इस से पूर्व वह साधना में ही लगे रहे। लगातार ४४ वर्षों तक निरन्तर रूप से वह अपने मन्तव्यों का देश में प्रचार करते रहे। चौरासीवें वर्ष उन्होंने एक बहुत लम्बी यात्रा की थी। वह राजगृह से कुशीनारा गए थे। उन की इस यात्रा का विस्तृत वर्णन सूत्र-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। इस यात्रा में जो उपदेश उन्होंने दिये थे वे तो लगभग पूर्ण ही रूप में प्राप्त होते हैं।

उन दिनों मगध प्रान्त का केन्द्र राजगृह नगर था। राजगृह से उत्तर दिशा में चल कर बुद्ध ने गंगा नदी पार की और वह पाटलीपुत्र नगर में पहुंचे। पाटलीपुत्र उन दिनों नया नया बसाया जा रहा था। यह नगर पीछे से चल कर अनेक शताब्दियों तक भारतवर्ष का केन्द्र रहा। भारत के इतिहास में पाटलीपुत्र को वह स्थान प्राप्त है जो इटली के इतिहास में रोम को कहते हैं कि बुद्ध ने इस नगर के भविष्य की उज्वलता का पूर्वकथन किया था। पाटलीपुत्र से वह

वैशाली गए। वैशाली में अपने संपूर्ण शिष्यों को छोड़ कर एकान्त-वास के लिए नजदीक के बेलुवन में चले गए। इन दिनों वर्षा ऋतु थी। तीन मास तक बुद्ध ने एकान्तवास किया। बेलुवन में उन्हें भयंकर बुखार होगया। बीमारी की अवस्था में उन्होंने अपने अनेक शिष्यों को पुनः अपने पास बुला लिया। बुखार बहुत अधिक बढ़ कर अच्छा हो गया परन्तु महात्मा बुद्ध समझ गए कि अब मेरा यह जीवन समाप्ति पर है—मैं निर्माण के बहुत निकट पहुंच गया हूं।

महात्मा बुद्ध के स्वस्थ हो जाने पर उन के प्रधान शिष्य आनन्द ने उन से कहा—"भगवन्! हम लोग आप की बीमारी के कारण बहुत ही चिन्तित हो गए थे। अब आप स्वस्थ होगए हैं,—इस बात से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं तो घबरा गया था कि अब संघ का क्या होगा। अब आप पुनः संघ की उचित व्यवस्था कीजिये।

बुद्ध ने कहा—"आनन्द! मैंने जो करना था, वह कर चुका। अब संघ की मुझे कोई व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अब बूढ़ा हो गया हूं, मैंने अपनी जीवन-यात्रा लगभग पूर्ण कर ली है। हे आनन्द! अब तुम स्वयं अपने मार्ग-दर्शक बनो। स्वयं अपने पर अश्रित हो। किसी दूसरे का आश्रय ढूंढने का प्रयत्न मत करो। सत्य ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शक होना चाहिये। मेरे बाद जो स्वयं अपना आश्रय लेंगे— सत्य के मार्ग का अनुसरण करेंगे, किसी दूसरे के आश्रय को ढूंढने का यत्न नहीं करेंगे और श्रेष्ठ मार्ग पर चलेंगे वही मेरे सच्चे शिष्य होंगे।"

इस के बाद महात्मा बुद्ध वैशाली नगर में लौट आये, और भिक्षावृत्ति करते हुए वहां रहने लगे। बौद्ध ग्रन्थों में वर्णन आता है कि यहां पुनः मार ने आकर बुद्ध को शीघ्र निर्वाण में चलने का प्रलोभन दिया—परन्तु वह उसके वश में न आये।

एक दिन महात्मा बुद्धने सम्पूर्ण भिक्षुओं को जो वैशाली नगर में या उस के आस पास थे, अपने पास बुलाया। सायंकाल के समय उस संघ को अपना

अन्तिम उपदेश दिया। अगले दिन प्रातःकाल अपने शिष्यों के साथ उन्होंने अन्तिम वार वैशाली में भिक्षा मांगी। इस भिक्षा में नगर वासियों ने उन्हें बड़े स्वादु २ पदार्थ उपहार में दिये। सारी भिक्षा इकट्ठी कर ली गई थी। भोजन के समय कुछ शरारती भिक्षुओं ने उन्हें खूब स्वादु बना हुआ 'खुम्ब' खाने को दिया। प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध ने थाली में कोई झूठी चीज़ न छोड़ने का व्रत लिया हुआ था। भारतवर्ष के सन्यासियों में यह प्रथा बड़ी पुरानी है। इस का उद्देश्य जनता द्वारा दिये गये अन्न का सम्मान करना है। महात्मा बुद्ध पहले ही से कमजोर थे। इस गरिष्ठ खुम्ब के पाक ने उन के स्वास्थ्य पर बड़ा हानिकर प्रभाव डाला। अनेक लोगों का तो यह ख्याल है कि यही खुम्ब ही उनकी मृत्यु का कारण सिद्ध हुवा।[1] दोपहर के समय वह अपने कुछ साथियों के साथ कुशीनारा की ओर चल दिये।

---

१. अनेक ऐतिहासिकों का मन्तव्य है कि महात्मा बुद्ध को इस भोजन में सूअर का मांस परोसा गया और वह उसे—भिक्षु को जो कुछ परोसा जाय उसे वही खा लेना चाहिए —इस सिद्धान्त से खा गए। परन्तु यह मन्तव्य सर्वथा निराधार है। मूल पाली में खुम्ब के लिए "सूकर मादव" शब्द आया है। अनेक विद्वानों ने इस शब्द का अर्थ खुम्ब ही किया है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक रौकहिल भी हमारे इसी मत का समर्थन करते हैं। अपने Life of Buddha नामक ग्रन्थ के १३३ पृष्ठ पर उन्होंने लिखा है कि मूल पाली ग्रन्थों में सूअर के मांस का कहीं वर्णन नहीं मिलता। राक्स डेविड्स ने भी इसी मतका समर्थन किया है।

महापरिनिब्बान सूत्त में जहां यह वर्णन आया है कि महात्मा बुद्धने सूकर मार्दव, खाया, वहां इस 'सूकर मार्दव' को शुष्क लिखा है। इस का अभिप्राय यही है कि वह सूखा खुम्ब ही था। क्योंकि सूकर के सूखे मांस का कोई मतलब हो ही नहीं सकता। वास्तव में "सूकर मार्दव" का अर्थ है—"सूअर के मांस के समान मृदु"। खुम्ब मांस की तरह ही लचकीला होता है। यह वर्षा ऋतु में उत्पन्न होता है और लोग अन्य दिनों में भी इस का शाक खाने के लिये इसे सुखा कर संचित कर लेते हैं। महात्मा बुद्ध का देहान्त वसन्त

बुद्ध उन दिनों बहुत कमजोर और थके हुए थे। कभी कभी बुखार भी उन पर आक्रमण कर देता था। इसी दशा में वह कुशीनारा पहुंचे। नगर के बाहर हिरण्यवती नदी के किनारे एक बड़े भारी शाल वृक्ष के नीचे उन्होंने डेरा डाला। इस हिरण्यवती नदी का वर्तमान नाम छोटा गण्डक है। यहां पहुंच कर उन्होंने आनन्द से कहा मेरे लिए बिस्तरा बिछाओ। मैं लेटूंगा। मेरा सिर उत्तर की तरफ रहे।" आनन्द ने उन के लिये उसी प्रकार बिस्तरा लगा दिया। महात्मा बुद्ध उस पर लेट गए। बिस्तरे पर लेटते ही उन की तबीयत बहुत खराब होगई। यह देख कर उसे बड़ा क्लेश हुआ। उस से यह दृश्य देखा न गया। वह पास ही एक कमरे में जाकर ज़ारज़ार रोने लगा। महात्मा बुद्ध को लोगों से जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने उसे बुलवा भेजा। आन्द आया। बुद्ध ने उसे धैर्य का उपदेश किया। महात्मा बुद्ध की इस भयंकर बीमारी की खबर कुशीनारा नगर में वायुवेग से फैल गई। नगर के कुलीन मल्ल जाति के लोग बड़े बड़े झुण्डों में हिरण्यवती के तट पर महात्मा के अन्तिम दर्शन करने के उद्देश्य से आने लगे।

आनन्द उस समय बहुत ही उदास होकर खड़ा हुआ था। बुद्ध ने उसे निकट बुला कर आशीर्वाद देते हुए कहा—"आनन्द! तुम सोच रहे होगे कि तुम्हारा आचार्य तुम से जुदा हो रहा है। परन्तु प्यारे आनन्द! ऐसा मत सोचो।

ऋतु में हुआ—उन दिनों खुम्ब का सुखाया हुआ शाक मिलना ही असम्भव था। इस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध पर सूखे हुए खुम्बी के शाक से विष का प्रभाव हुआ। बौद्ध साहित्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध की मृत्यु के समय उन पर विष के प्रभाव दिखाई दिये थे। विष के वे चिन्ह उन चिन्हों से सर्वथा मिलते हैं, जो सूखी खुम्बी के विष के प्रभाव से बताये जाते हैं। इस के लिए डा० लोरैण्ड (Dr. Lorrand) **की** Health & Longevity through Rati and Die **नामक पुस्तक के २४१-४६ पृष्ठ देखने चाहिये।**

See Universal Religion by Yogiraj's Disciple Maitreya. p. 306-9

जो सिद्धान्त और नियम मैंने तुम्हें बताये हैं, जिनका मैंने प्रचार किया है, वही तुम्हारे आचार्य होंगे—और वे सदैव जीवित रहेंगे।"

फिर उन्होंने उपस्थित भिक्षुओं से कहा— "पुत्रो, सुनो ! मैं तुम्हें कहता हूं कि जो आता है, वह अवश्य ही जाता भी है। बिना रुके प्रयत्न करो।"

महात्मा बुद्ध के यही अन्तिम शब्द थे। इस के बाद उन का देह प्राण-शून्य हो गया।

अगले दिन की प्रातःकाल कुशीनारा निवासियों ने बड़े समारोह से उनकी देह का अन्तिम संस्कार किया।

तृतीय अध्याय

बुद्ध की धार्मिक शिक्षाओं का अनुशीलन

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का उद्देश्य मनुष्य का वैयक्तिक तथा सामजिक आचार उन्नत करना था। उनके अपने शब्दों में इस आचार की श्रेष्ठता का परिणाम दुख-निवृत्ति और सन्तोष है। यह उद्देश्य भारतवर्ष की प्राचीन वैदिक शिक्षाओं का विरोधी नहीं है। महात्मा बुद्ध ने जिस ढंग से अपनी शिक्षाओं का प्रसार किया अर्थात् उन्हों ने जिस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों में धर्म के जिन अंगों पर विशेष बल दिया और अन्य अंगों के सम्बन्ध में लगभग उदासीन वृत्ति प्रगट की, उसे देख कर उन की महान् शिक्षाओं को अधिक से अधिक एकांगी ही कहा जा सकता है, वैदिक धर्म के विरुद्ध नहीं। महात्मा बुद्ध ने निर्मोही त्यागियों (भिक्षुओं) का एक संघ निर्माण किया था। इस संघ का कुछ भाग (संघ) प्रायः उनके साथ ही रहा करता था अतः उन के बहुत से उपदेश इन्हीं भिक्षुओं को लक्ष्य करके हुवा करते थे। इन्हें वह संसार-त्याग, निर्मोह आदि की शिक्षाएं दिया करते थे। परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि वह सम्पूर्ण जन-समाज से संसार त्याग की अभिलाषा करते थे।

कालान्तर में उस महात्मा के अनुयाई यह समझने लगे कि हमारा पथ-प्रदर्शक एक नये सम्प्रदाय का निर्माण कर गया है। और यह सम्प्रदाय परमात्मा औरआत्मा की सत्ता से इन्कार और वेद की प्रामाणिकता का खण्डन करता है। इस सम्प्रदाय का आदर्श संसार त्याग कर यह प्रतिज्ञा लेते हुए कि बुद्ध की शरण में जाता हूं; धर्म की शरण में जाता हूं, संघ की शरण में जाता हूं[1] भिक्षु बन

1. धम्मं शरणं गच्छामि बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मपाद

जाना है। परन्तु महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों की विवेचना करने से हमें यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उनका उद्देश्य किसी नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करना नहीं था।

बुद्ध 'आर्य'—धम्मपाद में महात्मा बुद्ध के लिये तथा उन से प्राचीन काल में हुए आचार्यों के लिये 'आर्य' शब्द आता है—"जो व्यक्ति नियमानुकूल भक्षण करता है, पवित्र मन से प्रसन्नता पूर्वक आयु व्यतीत करता है और आर्यों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता है वह पण्डित है।"[२] इस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध अपने को प्राचीन धर्माचार्यों से पृथक् नहीं करना चाहते थे। यदि वह स्वयं पैगम्बर बन कर कोई नवीन सम्प्रदाय खड़ा करना चाहते तो अवश्य ही उन के लिये यहां कोई दूसरा शब्द प्रयुक्त किया जाता। धम्मपाद के सम्पूर्ण टीकाकारों ने इस 'आर्य' शब्द का अर्थ 'महात्मा बुद्ध तथा उन से पूर्व काल के धर्माचार्य' लिया है।

आत्मा की सत्ता— कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध आत्मा की सत्ता स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु उन के उपदेशों में स्पष्ट रूप से आत्मा का वर्णन उपलब्ध होता है। धम्मपाद में कहा है—

"यदि कोई मनुष्य स्वयं भी वैसा ही आचरण करता है जैसा कि वह दूसरों को उपदेश देता है तो स्वयं अपने पर विजय प्राप्त होने के कारण वह दूसरों पर भी विजय प्राप्त कर सकता है, क्योंकि स्वयं अपनी आत्मा का विजय सब से कठिन कार्य है।"

"आत्मा स्वयं ही अपना स्वामी है, और कौन उसका स्वामी हो सकता है? स्वयं अपने को वश में करके मनुष्य एक ऐसा स्वामी प्राप्त कर लेता है जो कम लोग पा सकते हैं।"

"आत्मासे ही कोई पाप करता है, आत्मा के कारण ही कोई कष्ट भोगता है, आत्मा से ही कोई पाप से शुद्ध रहता है और आत्मा द्वारा ही कोई पवित्र

---

२. धम्मपाद, अध्याय ६. वाक्य ७६।६।४।

हो जाता है। आत्मा स्वयं ही अपने को पवित्र या अपवित्र करती है कोई किसी दूसरे को पवित्र नहीं कर सकता।"

* धम्मपाद के उपर्युक्त उच्चरणों में 'अात्ता' शब्द प्रयुक्त किया गया है। यह आत्मा का ही अपभ्रन्श है।

रचना साम्य —महात्मा बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं का आधार प्राचीन भातीय वैदिक साहित्य को ही रक्खा है। इस का एक प्रमाण यह है कि उनकी शिक्षाओं के अनेक वाक्य पुराने स्मृति या सूत्र ग्रन्थों के अनुवाद मात्र प्रतीत होते हैं। कहीं कहीं तो वाक्य रचना भी पूरी तरह से मेल खाती है। उदाहरण के लिये मनुस्मृति में कहा है—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥[४]

धम्मपाद में इस श्लोक का पाली संस्करण इस प्रकार किया गया है—

अभिवादन सीलस्स निच्चं वुड्दा पचभिनम्।
खतारी धम्मावड्ढन्ति आनुपवण्णसुिलम् ॥[५]

मनुस्मृति के इसी अध्याय का एक और श्लोक है—

न तेन वृद्धो भवति; येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः ॥[६]

---

* अत्तानञ्चे तथा सहिया यथञ्ञ मनुसासति।
सुदन्तो बल दायेथ अञ्ञाहि किर कुद्दमो॥ धम्मापद १२। ३.
अत्ताहि अत्तनो माथो को हि नाथो परासियर।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभम्॥ धम्मपाद १२।४.
अत्तना च च कतं पायं अत्तना संकिलिस्संति।
अत्तना अकतं पापं अत्तना व विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्यतं नाञो अञ्ञं विसोधये॥ धम्मपाद १२। ६.

४. मनुस्मृति अध्याय २. श्लोक. १२१.
५. धम्मपाद " ८. वाक्य १०६.
६ मनुस्मृति " २. श्लोक १५६.

धम्मपाद में—

न तेन थेरो सीहोती येनस्स पलितं सिरो।

परिपक्को वयो तस्सं मोघजिण्णोति वुच्चति ॥ [७]

समाधि—महा परिनिब्बान सूत्त में समाधि का वर्णन प्राप्त होता है। "महात्मा बुद्ध जब राजगृह के गृद्ध श्रृङ्ग पर्वत पर तपस्या करते थे तब लोगों से उनकी शुद्ध व्यवहार, समाधि, बुद्धि आदि के सम्बन्ध में बात चीत हुई। उन्होंने कहा— जब समाधि शुद्ध धारणा के साथ की जाती है तब उसका बहुत बड़ा फल और लाभ प्राप्त होता है। बुद्धि से परिभावित हृदय वासना, स्वार्थ, भ्रम और अविद्या आदि से परिभूत नहीं होता।[१]

पुनर्जन्म—इस से पूर्व हम आत्मा की सत्ता के पक्ष में महात्मा बुद्ध का प्रमाण उद्धृत कर चुके हैं। आत्मा की सत्ता के साथ वह पुनर्जन्म का सिलसिला भी स्वीकार करते थे। इस प्रकार उन के इस सिद्धान्त तथा इसी सम्बन्ध के वैदिक सिद्धान्तों में कोई भेद नहीं है। उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा— "इन चार महान सत्यों (अज्ञान के चार कारण) को न समझने और मनन न करने के कारण ही हमें इतने अधिक जन्म लेने पड़े हैं। इसी कारण, तुम और मैं इस पुनर्जन्म के कष्टमय मार्ग में बहुत लम्बे काल में चले आरहे हैं।"[२]

महात्मा बुद्ध के इस वाक्य से यह भी स्पष्ट रूप से विदित होजाता है कि वह अपने को अन्य मनुष्यों की तरह से प्राकृतिक नियमों के आधीन एक साधारण मनुष्य ही समझते थे, अपने को पैगम्बर या असाधारण आत्मा नहीं मानते थे।

एक और स्थान पर उन्होंने पुनर्जन्म का जो वर्णन किया है, उससे प्रतीत होता है कि उन के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य अपने कर्मों के प्रभाव से अगले जन्म को कोई पशु या रोग का कृमि आदि भी बन सकता है। उनका कथन

---

७. धम्मपाद " ६ वाक्य १२०.

१. महा परिनिब्बान सूत्त अध्याय १ वाक्य १२.

२. " " " " २ " २.

है—"आनन्द ! यही मार्ग है, यही सत्य का दर्पण है। यदि कोई मनुष्य इस मार्ग का अनुसरण करता है तो वह निश्चित रूप से अपने लिये भविष्यवाणी कर सकता है कि मेरे लिये अब नरक नष्ट हो गया। अब मेरी आत्मा भूत बनकर किसी कष्टमय स्थान में न जावेगी। मैं अब कभी किसी कष्ट-जनक दशा में पैदा नहीं हो सकता। मुझे अब निश्चय ही मुक्ति प्राप्त होगी।"[१]

एक और स्थान पर कहा है—" हे गृहस्थो, श्रेष्ठाचारी पुरुष अपने सत्य व्यवहार से पांच प्रकार के लाभ प्राप्त करता है— i अपने अध्यवसायी स्वभाव से वह खूब धन प्राप्त करता है, ii उसका यश बढ़ता है, iii जिस समाज में वह प्रवेश करता है— चाहे वह समाज, कुलीन, ब्राह्मण, गृहपति या राजवंश वालों का ही क्यों न हो—वह विश्वास और स्वाभिमान के साथ प्रवेश पाता है, iv मृत्यु शान्ति से होती है, v मृत्यु के अनन्तर वह किसी उच्च योनी में जन्म लेता है।"[२]

इस उद्धरण में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठाचारी पुरुष के लिये ही उपर्युक्त पांचों लाभों का वर्णन किया गया है। पुनर्जन्म के ये लाभ उसी आत्मा को होते हैं, उस के कर्मों को नहीं।

मोक्ष का स्वरूप— न्याय दर्शन में दुःख के अत्यन्त अभाव को ही मोक्ष माना गया है।[3] उस के अनुसार सुख भी दुख के अभाव का नाम ही है। महापरिनिब्बान सुत्त में जन्म बन्धन से सदैव के लिए मुक्ति पाने के उद्देश्य से जो चार साधन लिखे हैं, उनमें दुःख और उस के कारणों को जान कर उनके अत्यन्त विमोक्ष का प्रयत्न ही मुख्य है।[४]

इस जन्म बन्धन से सदा के लिये छूट कर मुक्त हो जाने का वर्णन बौद्ध साहित्य में स्थान २ पर मिलता है, अतः इस के प्रमाण यहां देने की आवश्यकता

१. महा परिनिब्बान सुत्त, अध्याय २ वाक्य १०.
२. ,, ,, ,, ,, १ ,, २४.
३. तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः। न्याय १. १. २२
४. महापरिनिब्बान सुत्त अध्याय २ वाक्य २

नहीं है। इतना ही नहीं, अपितु मोक्ष का स्वरूप भी पूरी तरह से वैदिक ही है। वैदिक-साहित्य में मोक्ष-काल की अवधि बहुत ही अधिक लम्बी होने के कारण उसका समय बतलाने के लिए अनन्त काल का उल्लेख किया गया है।[1] इसी प्रकार महापरिनिब्बान सुत्त में लिखा है—"आनन्द, बहिन नन्दा उन पांचों बन्धनों को जिनके द्वारा संसार के ये निवासी बंधे हुए हैं, पूर्ण रूप से तोड़ देने के कारण श्रेष्ठतम स्वर्ग में चली गई है। वहां वह सदा के लिये गई है, अब वह कभी नहीं लौटेगी।"[2]

"जिस मनुष्य की कोई अभिलाषा नहीं है, जो अपने ज्ञान से सन्देह रहित है और जिस ने मोक्ष द्वारा अमरता की उच्चतम सीमा प्राप्त कर ली है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।"[3]

सेल सुत्त में अपना वर्णन करते हुए बुद्ध ने कहा है— मार (वासना) की सेना का मैं ध्वन्स कर चुका हूं, मैं ब्रह्मभूत हूं, अतुलनीय हूं, सब शत्रु (काम क्रोध आदि) मेरे अधीन हैं, मैं आनन्दमय हो गया हूं।"[4] इस से प्रतीत होता है कि ब्रह्मभूत होना या निर्वाण का तात्पर्य समाप्त हो जाना, या बुझ जाना बुद्ध को अभीष्ट नहीं है।

संसार की उत्पत्ति—जगत् और मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैदिक सिद्धान्त है—प्रकृति की सूक्ष्म अवस्था से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधी, औषधि से अन्न और अन्न से वीर्य उत्पन्न हुआ।"[1] महात्मा बुद्ध ने एक स्थान पर

---

१. ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे। मुण्डक ३ २. ६।
२. महापरि निब्बान सुत्त अध्याय २ वाक्य ७.
३. सुत्तनिपात, महावाग्ग वासेट्ठ सूत्त, वाक्य ६३५
४. ब्रह्मभुतो अतितुलो मारसेनाप्पमद्दनो।
सया भित्तेव सीकत्वा मोदामि अकुतोभयो। महावग्ग सेल सुत्त ५६१
५. एतस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्यो अन्नम्, अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः। (तैत्तिरीयोपनिषत्, ब्रह्मानन्दवल्ली, प्रथमोऽनुवाकः)

प्रसङ्ग वश जगत की उत्पत्ति का कारण अपने शिष्यों से कहा है । वह कारण भी यद्यपि स्वयं इतना स्पष्ट नहीं, तथापि उपर्युक्त सिद्धान्त पर ही आश्रित प्रतीत होता है। महात्मा बुद्ध ने कहा—"हे आनन्द! भूकम्प के आठ परोक्ष कारण हैं। ये आठ निम्न लिखित हैं। यह महान पृथिवी पानी पर आश्रित है, पानी वायु पर आश्रित है और वायु आकाश पर आश्रित है।......"[1]

तेंतीस देवता—वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर तेंतीस देवताओं का वर्णन है। छान्दोग्य उपनिषद् में ये तेंतीस देवता १२ सूर्य, ११ रुद्र ८ वसु, इन्द्र, प्रजापति गिनाए गए हैं।[2] पीछे से इन तेंतीस देवताओं को भौतिक देवता समझ कर इन की उपासना की जाने लगी। महात्मा बुद्ध के समय भी प्रतीत होता है कि इनका रूप परिवर्तित हो चुका था। महात्मा बुद्ध ने एक स्थान पर इन तेंतीस देवताओं की उपासना दी है—"भाइयो, जिन लोगों ने तेंतीस (तावतिम्स) देवताओं को नहीं देखा वे लिच्छवियों को देखलें। लिच्छवियों का यह समूह ठीक तेंतीस देवताओंके समान प्रतीत होरहा है।"[3]

वर्ण व्यवस्था—महात्मा बुद्ध के समय भारतवर्ष में वर्णव्यवस्था विद्यमान थी। बौद्ध साहित्य में इस के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। "जब वैशाली के लिच्छवी लोगों को यह ज्ञात हुवा कि महात्मा बुद्ध वैशाली आए हैं, और अम्बपाली के उद्यान में ठहरे हैं, तब वे सुन्दर यानों पर सवार होकर पंक्ति में उन के पास गए। कुछ उनमें काले थे, उनका रंग काला था और कपड़े और आभूषण भी काले थे। कुछ उन में सुन्दर थे, उन का रंग सुन्दर था, कपड़े और आभूषण भी सुन्दर थे। कुछ उन में लाल थे, इन के कपड़े और भूषण भी लाल थे, चेहरे

---

१. महा परिनिब्बान सुत्त. अध्याय. ३ वाक्य १२

२. एते त्रयस्त्रिंशद्देवा इति कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशा इति ।
बृहदारण्यक अध्याय ५, ब्राह्मण ६, मंत्र ६,

३. महा परिनिब्बान सुत्त अध्याय २ वाक्य २०

पर लालिमा थी । कुछ उन में सफेद थे, जिनका रंग पीला था और आभूषण तथा वस्त्र सफेद थे ।"[१]

यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन में से काले रंग के कपड़े पहने हुए लोग शूद्र, सुन्दर रंग के वैश्य, लाल रंग के क्षत्रिय और सफेद रंग के कपड़े पहनने वाले ब्राह्मण थे । महात्मा बुद्ध ने अपने समय की बढ़ी हुई अप्राकृतिक विषमता का तथा जन्म की जातपात का प्रबल विरोध किया, परन्तु वह वैदिक वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे । उन्होंने कहीं पर इसका विरोध नहीं किया । समाज के सब अंगों को पूरी महत्ता देने का उन्होंने प्रचार किया था, यह बात वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध नहीं ।

इतना ही नहीं । महात्मा बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में गुण और कर्म से वर्ण मानने का आदेश दिया है । उनका कथन है—"जन्म के सम्बन्ध में मत पूछो परन्तु आचरण के सम्बन्ध में पूछो । यह एक तथ्य है कि लकड़ी से आग उत्पन्न होजाती है, (इसी प्रकार) एक नीच कुल में उत्पन्न हुवा दृढ़ निश्चय मुनि भी पाप छोड़ कर कुलीन बन सकता है ।"[२]

"कोई केवल जन्म से ब्राह्मण नहीं हो सकता, और न कोई ब्राह्मण कुल में जन्म न लेने से अब्राह्मण होता है । अपने कर्मों से ही कोई ब्राह्मण या अब्राह्मण बनता है ।"[३]

"कोई मनुष्य अपने सफेद बालों या कुल अथवा जन्म से ही ब्राह्मण नहीं बन सकता । जो मनुष्य सच्चा है और धर्म पूर्वक आचरण करता है वही ब्राह्मण है ।"[४]

---

१. महा परिनिव्बान सुत्त अध्याय २. वाक्य १८

२. सुत्तनिपात, सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त वाक्य ६.

३. " वासेट्ठ सुत्त वाक्य ५७.

४ न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सूची सो च ब्राह्मणो ॥ धम्मपद २६ । ११

"जन्म से कोई नीच नहीं होता न जन्म से ब्राह्मण होता है। कर्म से ही कोई नीच होता है और कर्म से ही ब्राह्मण होता है।"[1]

इस से तुलना के लिये वैदिक साहित्य के निम्न वचन विचारणीय हैं[2]

सच्चा ब्राह्मण कौन है— उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध जन्म से नहीं अपितु गुण कर्म से ही ब्राह्मण आदि वर्णों की सत्ता स्वीकार करते थे। इसके साथ ही उन्हों ने अपने विभिन्न स्थानों पर दिये उपदेशों में ब्राह्मण के गुणों और कार्यों पर विस्तृत विचार किया है। इस में उन्होंने स्पष्ट रूप से यज्ञ करना, वेद पढ़ना आदि भी उनके कार्य बताये हैं। अतः उन के उपदेशों में से इस सम्बन्ध के बहुत से उद्धरण देना यहां अप्रासंगिक न होगा।

जिस समय एक ब्राह्मण अपने चित्त का संयम और ज्ञान उपार्जन इन दोनों बातों में सफलता प्राप्त कर लेता है तो ज्ञानोपलब्धि के अनन्तर उसके सब बन्धन नष्ट होजाते हैं। जिस व्यक्ति के लिये यह लोक और परलोक अथवा दोनों लोक कुछ सत्ता नहीं रखते, जो भय रहित और स्थिर है वही ब्राह्मण है। जो विचार शील है, दोषरहित, स्थित प्रज्ञ, कर्मनिष्ट और वासना रहित है तथा जिस ने उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है वही वास्तव में ब्राह्मण है। दिन सूर्य से शोभा पाता है, रात चन्द्रमा से शोभित होती है, क्षत्रिय अपने कवच में सजता है, ब्राह्मण अपने ध्यान से प्रकाशित होता है और बुद्ध भगवान दिन रात दीप्त रहते हैं।

---

१ सुत्त निपात उरग वग्ग वसल सुत्त २१.

२. ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ यजु० ३१.११.।
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ मनु० १० ६५.
स्वाध्यायेन जपैर्होमैः त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० २. २८.
धर्मचर्यया जघन्यो वर्णो पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।
अधर्मचर्यया पर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥

किसी व्यक्ति को ब्राह्मण पर आक्रमण नहीं करना चाहिये, परन्तु यदि किसी ब्राह्मण पर प्रहार किया जाय तो ब्राह्मण को चाहिये कि प्रहारकर्ता पर वह हाथ न उठाए । ब्राह्मण को मारने वाला धिक्कारे के योग्य है, परन्तु उस से भी अधिक धिक्कार उस पर प्रहार करने वाले ब्राह्मण को है। जो किसी पर भी अपने शरीर, वाणी, या विचार द्वारा प्रहार नहीं करता और जिस ने इन तीनों को वश में किया हुआ है वह ब्राह्मण है। जिस प्रकार ब्राह्मण यज्ञ में अग्नि की पूजा करता है उसी प्रकार मनुष्य को अपने उपदेष्टा गुरु (बुद्ध) की पूजा करनी चाहिये। कोई अपने सफेद बाल, जटा या कुल से ब्राह्मण नहीं होता ; जो मनुष्य सत्याचरण और धर्माचरण करता है वही ब्राह्मण है। हे मूर्ख ! केवल जटा और मृगचर्म को धारण करने से क्या होगा ? तेरे अन्दर ही जब तृष्णा भरी पड़ी है और तू बाह्य शरीर को पवित्र कर के ही पवित्र बन जाना चाहता है ? अपने कुल या माता के कारण कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता, कुल के कारण धन ही मिल सकता है ; परन्तु मैं तो उसे ब्राह्मण कहता हूं जो चाहे कितना ही ग़रीब हो परन्तु रागद्वेष से रहित है। कुल से अपने को ब्राह्मण मानने वाला तो केवल 'भोः भोः' करने वाला ब्राह्मण ही है । ब्राह्मण वह है जो किसी प्राणी को नहीं मारता, न मरवाता है चाहे वह प्राणी सबल हो या दुर्बल । मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जो असहिष्णुओं पर सहिष्णु है, हिंसकों पर दयालु है और व्यसनियों में निर्व्यसनी बन कर रहता है । वास्तविक ब्राह्मण वह है जो किसी की छोटी बड़ी, सूक्ष्म या स्थूल वस्तु को उसके दिये बिना स्वयं नहीं लेता। जिसे इस लोक या परलोक में आसक्ति नहीं वही ब्राह्मण है।"[1]

---

१. यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।
अथस्स सब्बसंयोगा अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ २ ॥
यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।
वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ३ ॥
झायी विरजमासिनं कतकिच्चं अनासवं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ४ ॥
दिवा तपति आदिच्चो रत्तिमाभाति चन्दिमा ।

सुन्दरिक भारद्वाज सूत्त—सुत्तनिपात में भारद्वाज सूत्त नामक एक वर्ग है। इस सूत्त में महात्मा बुद्ध से सुन्दरिक भारद्वाज नामक एक याज्ञिक ब्राह्मण की बातचीत संगृहीत है। इस बातचीत में वेद, गायत्री, यज्ञ, वर्णव्यवस्था आदि बहुत से आवश्यक विषयों पर प्रसंगवश महात्मा बुद्ध ने अपने विचार प्रगट किये हैं, अतः इस सूत्त का संक्षेप यहां दे देना उचित होगा—

"एक समय बुद्ध भगवान कोशल देश में सुन्दरिक नदी के किनारे रहते थे। इन्हीं दिनों एक दिन सुन्दरिक भारद्वाज नाम के एक ब्राह्मण नदी के किनारे

सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ॥ ५ ॥
न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नहस्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥
यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुत्तं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ ९ ॥
यह्मा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो ॥ १० ॥
न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मोच सो सूची सो च ब्राह्मणो ॥ ११ ॥
किं ते जटाहि दुमेध किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं वाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥
न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवम्।
भोवादी नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो।
अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥ १४ ॥
निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २३ ॥
अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निबुतं।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २४ ॥
आशा यस्य न विज्जति अस्मि लोके परस्मि च।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥

धम्मपद वर्ग २६.

यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर उन्होंने खड़े होकर चारों दिशाओं में देख कर कहा—कोई यज्ञशेष ग्रहण करने का अभिलाषी है ?" इसी समय भारद्वाज ने महात्मा बुद्ध को कुछ दूरी पर एक पेड़ के नीचे सिर ढांक कर बैठे हुए देखा। उन्हें देख कर भारद्वाज यज्ञशेष को बांये हाथ में और जलपात्र को दायें हाथ में लेकर उसी ओर चले। भारद्वाज के पैरों की आवाज़ सुन कर महात्मा बुद्ध ने अपने सिर से कपड़ा उतार दिया। तब भारद्वाज ने यह सोचा कि इस मनुष्य ने सिर के बालों का मुण्डन करवाया हुवा है अतः यह शैव है। यह सोच कर वह लौट ही रहा था कि उसे ध्यान आया कि कुछ ब्राह्मण भी सिर का मुण्डन करवाया करते हैं अतः इस व्यक्ति से पूछना चाहिये कि यह किस वंश का है। सुन्दरिक भारद्वाज ने लौटकर उन से पूछा—"तुम किस परिवार के हो ?"

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया—"मैं न ब्राह्मण हूं, न किसी राजा का पुत्र, और न वैश्य ही हूं। मैं संसार में कुछ भी न रखते हुए इधर उधर घूमता फिरता हूं।"

बिना घर के मैं इधर उधर घूमता फिरता हूं, शान्त रहता हूं, संसार के लोगों में रमता नहीं हूं और तुम हे ब्राह्मण, मुझ से मेरे कुल के सम्बन्ध में प्रश्न करते हो ?"

सुन्दरिक भरद्वाज ने कहा—'क्या तुम ब्राह्मण हो ?"

भगवान ने उत्तर दिया—'यदि तुम अपने को ब्राह्मण और मुझे अब्राह्मण कहते हो तो मैं तुम से उस सावित्री के सम्बन्ध में पूछता हूं, जिस में तीन पाद और चौबीस अक्षर हैं।'

सुन्दरिक भारद्वाज ने कहा—'मैं तुम से पूछता हूं कि इस संसार में मनुष्य, ब्राह्मण और क्षत्रिय देवताओं की पूजा क्यों करते हैं ?"

बुद्ध उत्तर दिया—"जो व्यक्ति पूजा के समय पूर्ण और सर्व साधन-सम्पन्न होकर किसी देवता की श्रवण शक्ति प्राप्त कर लेता है वह सफल हो जाता है।"

सुन्दरिक भारद्वाज ने कहा— सचमुच उसी की पूजा सफल होती है। क्योंकि मुझे तुम्हारे जैसे पूर्ण और वेदज्ञ के दर्शन हो गए हैं। आप जैसे व्यक्ति के न मिलने से यज्ञशेष किसी और को देना पड़ता।

बुद्ध ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुम यहां कुछ पूछने आए हो, अतः मुझ से पूछो। सम्भवतः तुम्हें यहां शान्त, अक्रोधी, कष्ट रहित, कामना शून्य, सुबुद्ध की प्राप्ति हो जाय।

सुन्दरिक भारद्वाज ने पूछा—हे गौतम ! मुझे पूजा में प्रसन्नता ती है। हो मैं एक भेंट देना चाहता हूं परन्तु मुझे भेंट समझ नहीं आती। मुझे शिक्षा दो, मुझे बताओ कि किस दशा में भेंट सफल होती है।

बुद्ध ने उत्तर दिया— हे ब्राह्मण, मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं तुम्हें धर्म की शिक्षा दूंगा। वंश के सम्बन्ध में न पूछो, व्यवहार के सम्बन्ध में पूछो। जिस प्रकार लकड़ी से आग उत्पन्न हो सकती है, उसी प्रकार एक नीच कुल का व्यक्ति भी अपने दृढ़ निश्चय से पाप भावनाएं छोड़ कर कुलीन बन सकता है।

'जो सत्य से नम्र है, वासना रहित है, पूर्ण है, धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऐसे व्यक्ति को, उचित समय के अनन्तर लोग यज्ञ-शेष देते हैं। जो अच्छे कार्य करना चाहता हो, उसे उसी को यज्ञ-शेष देना चाहिए।'

'जिन्होंने वासना-जन्य आनन्द का त्याग कर दिया है, जो गृह रहित होकर घूमते फिरते हैं, जो संयमी हैं, उन को एक अवधि के बाद लोग यज्ञशेष देते हैं। जो ब्राह्मण के अच्छे कार्य करना चाहता हो, उसे उसी को यज्ञ-शेष देना चाहिये।

'जिस में धोखे के भाव नहीं, बदला लेने की इच्छा नहीं, जो ईर्ष्या से रहित है, स्वार्थ से शून्य है, जिस ने क्रोध का नाश कर दिया है, जो शान्त है, जिस ने अपने पर से दुःख की छाया हटा दी है, ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण है। बुद्ध ऐसा ब्राह्मण होने से यज्ञशेष के योग्य है।

'जिस ने अपने हृदय की दुर्बलताओं को नष्ट कर दिया है, जिस के लिये कुछ भी बन्धन नहीं है, जो इस जगत में किसी वस्तु की कामना नहीं करता ऐसा तथागत यज्ञशेष के योग्य है।

'जो शान्त है, जिस ने संसार-नदी को पार कर लिया है, जो धर्म के उच्चतम स्वरूप का ज्ञाता है, जिस के विकार नष्ट हो गए हैं—ऐसा तथागत यज्ञ-शेष के योग्य है ।

जो इच्छाओं के आधीन नहीं, जिस ने निर्वाण देख लिया है, साधारण लोगों के लिये जो ज्ञातव्य है उसे जो जान चुका है, जिसके लिये बुद्धि का कोई विषय शेष नहीं रहा—ऐसा तथागत यज्ञशेष के योग्य है ।

'जो अपना माप स्वयं अपने से नहीं करता, जो शान्त है, श्रेष्ठ है, दृढ़ है, कामना रहित है, कठोरता से दूर है, सन्देह रहित है— ऐसा तथागत यज्ञशेष के योग्य है ।'

यह सब सुनकर सुन्दरिक भारद्वाज ने कहा—मेरी भेंट एक सच्ची भेंट हो, क्योंकि मैं एक ऐसे पूर्ण व्यक्ति से मिला हूं । बुद्ध ब्राह्मण मेरे साक्षी हैं । क्या भगवान् इसे स्वीकार करेंगे ! क्या भगवान् मेरे यज्ञ-शेष को स्वीकार करेंगे ?''

इस के बाद महात्मा बुद्ध और सुन्दरिक भारद्वाज में कुछ और वार्तालाप होने के अनन्तर भारद्वाज परिव्राजक बन गया ।[1]

इस सम्पूर्ण प्रकरण पर टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है । यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध वेद और वर्ण-व्यवस्था आदि प्राचीन मूल वैदिक सिद्धान्तों के विरोधी नहीं थे ।

एक वार तीनों वेद ज्ञाता भारद्वाज और वसिष्ठ में विवाद हुआ । भारद्वाज की सम्मति थी कि जो सात पीढ़ी तक ब्राह्मण माता पिता से उत्पन्न हुआ हो वही ब्राह्मण होता है, पर वसिष्ठ गुणी पवित्र कर्म वाले को ही ब्राह्मण मानता था । वे तीनों

---

१. सुत्त निपात सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त.

बुद्ध से इस प्रश्न का ज्ञान लेने आये। बुद्ध ने कहा पशु पक्षि आदि विभिन्न जातियों के समान मनुष्य मनुष्य के अंगों में भेद नहीं है। मोह, द्वेष, और अज्ञान रहित, अपमान से न दुःखी होने वाला पीड़ा न देने वाला, विरोधियों को भस्म करने वाला, सत्यवादी, निर्द्वन्द्व पुरुष कर्मों से ही ब्राह्मण होता है।

इसी प्रकार वसल सुत्त में महात्मा बुद्ध भिक्षा मांगते हुए एक ब्राह्मण के यहां पहुंचे। उसने उन्हें वृषलक कहकर दूर रहने को कहा। तब बुद्ध ने समझाया कि वृषल, नीच वर्ण के वे हैं जो क्रोधी, हिंसक, ऋण न चुकाने वाले धन से झूठी साक्षी देने वाला, स्त्रियों पर बलात्कार करने वाला, माता पिता की सेवा न करने वाला, ब्राह्मण को दम्भ कर ठगने वाला, पाप में बेशर्म हो। एक चाण्डाल वंश में उत्पन्न मातंग था जो वासना रहित हो ऊंचे काम करता हुआ ब्राह्मण बना। बहुत से ब्राह्मण क्षत्रिय आदि उस की सेवा करते थे। अतः कर्म से ही आदमी ब्राह्मण या पतित बनता है।[1]

निष्काम कर्म—प्राचीन वैदिक साहित्य के निष्काम-कर्म के सिद्धान्त का महात्मा बुद्ध ने स्थान स्थान पर प्रतिपादन किया है।[2] उपर्युक्त 'सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त' में भी उन्होंने अपने सम्बन्ध का जो वर्णन किया है उस में अपने निष्काम हो जाने पर भी बहुत बल दिया गया है। इस के अतिरिक्त अन्य बौद्ध साहित्य में भी बीसियों स्थानों पर भारतीय सभ्यता के इस महान् सिद्धान्त का उल्लेख प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये कुछ प्रकरण यहां दिये जाते हैं—

माता पिता, दो क्षत्रिय राजा अथवा अनुचरों सहित राष्ट्र को भी नष्टकर वास्तविक ब्राह्मण निर्लेप रहता है।[3]

---

१. सुत्तनिपात, महावग्ग-वासेट्ठ सुत्त तथा उरग वग्ग-वसल सुत्त

२. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु० ४०२।
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि। गीता २४७

३. मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो॥
धम्मपद २१।५।

प्रो० मैक्स मूलर ने इस श्लोक का अभिप्राय यह बताया है कि ब्राह्मण के सर्वथा निष्काम हो जाने से उसे किसी वस्तु से आसक्ति नहीं रहती। वह निर्लेप हो जाता है। गीता में निष्काम मनुष्य के लिये कहा है—"नायं हन्ति न च हन्यते"। अर्थात् युद्ध में निष्काम भाव से कर्तव्य समझ कर लड़ता हुआ मनुष्य अपने प्रतिपक्षियों का वध करता है, सम्भव है कि वह स्वयं भी मर जाय; परन्तु निष्काम होने के प्रभाव से वह वास्तव में न किसी को मारता है और न स्वयं ही मरता है। धम्मपद के उपर्युक्त श्लोक का भी यही अभिप्राय है। मैक्स मूलर के इस कथन से बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान् मि० चिल्डर्स भी सहमत हैं।[1]

धम्मपद में कहा है— "मैं उसे वास्तविक ब्राह्मण कहता हूं जो किसी वस्तु को भी चाहे वह सामने, पीछे, या बीच में हो अपना नहीं कहता; जो निर्धन है; जो संसार के राग से रहित है।"[2]

"मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जिसका हृदय पानी में कमल के फूल की तरह और सूई की नोक पर राई के दाने की तरह पाप से आसक्त नहीं होता।"[3]

"मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जिस ने पाप और पुण्य दोनों का त्याग कर दिया है और विषयानुरागी तृष्णा का भी नाश कर दिया है।[4]

---

१. Sacred Books of the East Vol. x.
Dhumma pad. Edited by F. Max Muller.

२. धम्मपद अध्याय २६ श्लोक ३६

३. वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्॥ १६॥
धम्मपद। अध्याय २६।

४. योध पुञ्ञं च पापं च उभो संकं उपच्चगा
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्॥ ३०॥
धम्मपद अध्याय २६।

इसी प्रकार एक और स्थान पर लिखा है—"जिस प्रकार कमल का पत्ता पानी में रहने पर भी जल के प्रभाव से सर्वथा मुक्त होता है अथवा जिस प्रकार सूई की नोक पर सरसों रक्खा जाता है उसी प्रकार ब्राह्मण संसार में रहते हुए भी सांसारिक विषयों में आसक्त नहीं होता।"[1]

सभीय सुत्त में महात्मा बुद्ध सभीय को उपदेश देते हैं— "जिस प्रकार सुन्दर कमल पानी में रहते हुए भी उस से संसक्त नहीं होता उसी प्रकार, हे सभीय, तुम भी बुराई या अच्छाई दोनों से निर्लिप्त रहो।"[2]

ब्रह्मचर्य—वैदिक सभ्यता में ब्रह्मचर्य का स्थान बहुत ऊंचा है। महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं में भी ब्रह्मचर्य की महत्ता उसी प्रकार वर्णन की गई है— "असावधानी से किये हुए काम, खण्डित प्रतिज्ञा और ब्रह्मचर्य का नाश इन सब का परिणाम बुरा होता है।"[3]

चूलवग्ग में लिखा है—"धर्म से रक्षित ब्राह्मण दुर्दम्य तेज युक्त होते थे। जब वे किसी के दरवाज़ों के सामने जाकर खड़े होते थे तो यह किसी की शक्ति नहीं थी कि उन का विरोध कर सके। इस का कारण यही था कि वे ४८ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते थे, इस अवधि में वे विद्या और श्रेष्ठाचार का अभ्यास किया करते थे।'

'ब्राह्मण अन्य वर्णों की कन्या से विवाह नहीं करते थे, उनके विवाह में कन्या खरीदी नहीं जाती थी, विवाह के बाद वे परस्पर प्रेम से रहते थे। सन्तान की इच्छा से ही वे ऋतुगामी होते थे, उन का जीवन पवित्र, वासना रहित और ब्रह्मचर्यमय होता था।'

---

१. वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गेरिव सासपो
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्। धम्मपद २६। १९।

२ सुत्तनिपात महावग्ग सभीय सुत्त ३८।

३. यं किंचि सिथिलं कम्मं संकिलिट्ठं च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं॥ धम्मपद २२। ७।

'श्रेष्ठ ब्राह्मण की कभी स्वप्न में भी संभोग की इच्छा न होती थी ।"[१]

महात्मा बुद्ध और वेद— सुन्दरिक भारद्वाज सूत्त में यह दिखाया जा चुका है कि महात्मा बुद्ध स्वयं अपने को ब्राह्मण मानते थे । उन्होंने भारद्वाज से गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में प्रश्न भी किया था । भारद्वाज एक वैदिक ब्राह्मण था । उसे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि महात्मा बुद्ध अपने गुण, कर्म, स्वभाव से एक उच्च कोटि के ब्राह्मण हैं । अतः उसने उन्हें अपना यज्ञशेष, जिसे वह किसी श्रेष्ठतम ब्राह्मण को ही देना चाहता था, देने का अधिकारी समझा । इस प्रकरण के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के अन्य उपदेशों में भी वेद और वेदज्ञों के सम्बन्ध में कुछ वक्तव्य प्राप्त होते हैं । सभीय सूत्त में सभीय उनसे यह प्रश्न करता है "किसी मनुष्य को वेदज्ञ बनने के लिये क्या करना चाहिये ?"[२]

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया—"हे सभीय, जो मनुष्य श्रवण और ब्राह्मणों को जान कर सम्पूर्ण वासनाओं का विजय कर लेता है, जो मूल ज्ञान द्वारा सब कामनाओं से छुटकारा प्राप्त कर लेता है वह वेदज्ञ है ।

सभीय ने फिर पूछा—"किसी मनुष्य को श्रोत्रिय बनने के लिये क्या करना चाहिए ?"

महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया—"हे सभीय, जो व्यक्ति धर्म का एक एक शब्द समझ कर मिथ्या और तथ्य का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह सन्देह रहित बन्धन रहित और कष्ट रहित श्रोतृय कहलाता है । वह ईश्वरीय ज्ञान का पण्डित होता है ।*

सावित्री छन्द और यज्ञ— महात्मा बुद्ध ने सम्पूर्ण वैदिक छन्दों में सावित्री-छन्द को सर्वश्रेष्ठ कहा है । स्वयं वैदिक साहित्य में भी सावित्री छन्द

---

१. सुत्तनिपात चूल वग्ग, ब्राह्मण धम्मिक सुत्त । ५—१२ ।

२. सुत्तनिपात, महावग्ग, सभीय सुत्त वाक्य —५२८, ५२६

* मूल पाली में वेदज्ञ और श्रोतृय के लिए 'वेदगु' और 'सोत्तिय' शब्द आए हैं ।

को सर्वश्रेष्ठ छन्द माना गया है। इस के साथ ही उन्होंने सब प्रकार की यज्ञ की श्रेष्ठता भी मानी है। महावग्ग में कहा है— "यज्ञों में प्रधान अग्निहोत्र है, छन्दों में प्रधान छन्द सावित्री छन्द है।[3]

त्रयी विद्या ब्राह्मण को त्रयी विद्या में पारङ्गत होना चाहिये— "हे वासत्य। वही बुद्धिमान ब्राह्मण और असक्क (शाक्य) है जो त्रयी विद्या में निपुण है, शान्त है और पुनर्जन्म के बन्धन को नष्ट करने की योग्यता प्राप्त कर चुका है।"[4]

पृ० १८८ उदान वर्ग (धम्मपद का तिब्बती भाषा में अनुवाद) उस के अंग्रेजी अनुवाद में ३३ वें अध्याय में जो पाली धम्मपाद के २६ वें अध्याय का स्थानीय है, जिस में ब्राह्मण का लक्षण दिया गया है, के १५ वें श्लोक का यह अनुवाद है—"ब्राह्मण वह है जिस ने सम्पूर्ण पाप को दूर कर दिया है, जो फल रहित है, पवित्र आयु व्यतीत करता है, और जो वेदों में पूर्णता को पहुंच गया है, उसका जीवन ब्रह्मचर्यमय होता है और वह पवित्र भाषण करता है।"[5]

योगाभ्यास—महात्मा बुद्ध स्वयं योगाभ्यास किया करते थे। बोधि वृक्ष के नीचे भी उन्होंने योग-समाधि ही लगाई थी। इस के द्वारा उन्हें तत्वज्ञान की प्राप्ति में बहुत सहायता मिली। सैल सुत्त में महात्मा बुद्ध की योग-समाधि का

---

३. **सुत्तनिपात, महावग्ग, सेल सुत्त वाक्य ५७८**
(सावित्री छन्दसो मुक्खम्।)

४. **सुत्तनिपात, महावग्ग, वासत्य सुत्त वाक्य ६५५**

५. रौकहिल का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है:—

The Brahman who has cast off all sinfulness, who is without hypocracy, and who leads a pure life, has reached the purifiction (set forth in) the Vedas; his life is a life of holiness (brahmacharya), and when he does speak, his speech is holy.

वर्णन है। ब्राह्मण सैल को अपने योगाभ्यास का परिचय देने के लिये उन्होंने जो खेचरी मुद्रा धारण की, उसी का वर्णन इस सुत्त में है।[1]

योग दर्शन में पांच क्लेश बताए हैं।[2] योग मार्ग में प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति को इन पांच क्लेशों का परिहार करना चाहिये। धानीय सुत्त में महात्मा बुद्ध ने अपने भिक्षु शिष्यों से कहा है—"जो भिक्षु पांच क्लेशों का परिहार कर चुका है, दुःख रहित है, जिसे सन्देह नहीं रहे, ऐसा भिक्षु इस संसार के दोनों किनारों को इस प्रकार छोड़ देता है जिस प्रकार की सांप केंचुली को।"

पातञ्जलि ऋषि ने योगी को यम नियम का अभ्यास करने का आदेश दिया है। ये यम हैं—अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।[4] धम्मिक सुत्त के अन्त में इन्ही यमों का वर्णन है।

i धर्म्म के अभिलाषी पुरुष को हत्या नहीं करनी चाहिये, न किसी की हत्या में कारण बनना चाहिए, न किसी दूसरे से की हुई हत्या का पोषण करना चाहिये। किसी भी कमज़ोर या बलवान प्राणी को हानि नहीं पहुंचानी चाहिये।

ii उसे ऐसी कोई चीज़ स्वयं नहीं लेनी चाहिये जो उसे दी नहीं गई हो। न उसे किसी दूसरे को चोरी करने में मदद देनी चाहिये।' न चोरी का पोषण ही करना चाहिये,

iii उस को पूर्ण-रूप से ब्रह्मचारी रहना चाहिये। यदि उस से संयम न किया जा सके तो अपनी पत्नी को छोड़ कर किसी दूसरी स्त्री से भोग न करना चाहिये।

---

१. सुत्त निपात, महावग्ग, सैल सुत्त वाक्य ५४८
२. अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः॥ योग दर्शन
३. सुत्त निपात उरगवग्ग ध्यान सुत्त वाक्य १७
४. योग दर्शन.

iv एक दूसरे से कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये, चाहे वह न्याय सभा हो अथवा व्यवस्थापिका सभा। न उसे झूठ बोलने में मदद देनी चाहिये और न असत्य को पोषित ही करना चाहिये।

v जो गृहस्थ इस धर्म्म को स्वीकार करते हैं उन्हें शराब या इसी प्रकार के मादक द्रव्य नहीं पीने चाहियें, न दूसरों को इन के लिये प्रेरित ही करना चाहिये और न नशा पीने को पुष्ट करना चाहिये।"

निर्वाण—बौद्ध धर्म आधुनिक समय में जिस रूप में पाया जाता है, उसके अनुसार निर्वाण का अभिप्राय मनुष्य-जीवन की समाप्ति है। वैदिक धर्म में मोक्ष का जो स्थान है, बौद्ध धर्म में वही स्थान निर्वाण को प्राप्त है। वैदिक सिद्धान्तों में मोक्ष का अभिप्राय है—दुःखों से अत्यन्त विमोक्ष अर्थात् पूर्ण छुटकारा हो जाना। और बौद्ध लोग निर्वाण का यह स्वरूप मानते हैं कि जिस प्रकार दीया तेल या बत्ती की समाप्ति से बुझ जाता है, उसी प्रकार ज्ञान के प्रभाव से मनुष्य का जीवन भी बुझ जाता है। साधारण अवस्थाओं में जीवधारी प्राणियों के जीवन में जबतक एक निरन्तरता रहती है, तब तक उन्हें इस संसार के सुखदुख सहने पड़ते हैं। जिस तरह एक तरंग से दूसरी तरंग पैदा होती है, उसी तरह एक जीवन के संस्कारों से अगला जन्म होता है। परन्तु निर्वाण की अवस्था में यह तन्तु-सन्तान बन्द हो जाता है। और उस के बाद प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होता। उसकी कोई सत्ता ही नहीं रहती।

परन्तु वास्तव में महात्मा बुद्ध 'निर्वाण' का यह स्वरूप नहीं मानते थे। उन के मन्तव्यानुसार निर्वाण का वही स्वरूप है जो वैदिक-मोक्ष का है। निर्वाण दो शब्दों से बना है; एक निः और दूसरा वाण। निः का अर्थ है अभाव और वाण का अर्थ है इच्छा। इस तरह निर्वाण का शब्दार्थ, इच्छाओं का अभाव हुवा। यदि निर्वाण का वही स्वरूप स्वीकार किया जाय जो आजकल के बौद्ध लोग करते हैं तब वह निर्वाण मृत्यु के बाद ही हो सकेगा। उस अवस्था में मृत्यु से पूर्व कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैंने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। परन्तु स्वयं

महात्मा बुद्ध ने अपनी कठोर तपस्या के बाद काशी में भाषण देते हुए कहा था—"मैंने निर्वाण पद प्राप्त कर लिया है। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। यही मेरा अन्तिम जन्म है।" इस से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्ध निर्वाण का वह स्वरूप नहीं मानते थे जो उनके वर्तमान अनुयायी स्वीकार करते हैं।

महात्मा बुद्ध ने जिस निर्वाण का वर्णन अपने उपदेशों में किया है, वह निर्वाण वर्तमान बौद्धों का निर्वाण तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि वर्तमान बौद्ध तो आत्मा की सत्ता को भी स्वीकार नहीं करते। इस अवस्था में आत्मा का अभाव रहते हुए, प्राणी का, विशेष परिस्थितियों में निर्वाण पद प्राप्त कर लेने का अभिप्राय ही क्या है। इस सम्बन्ध में डा० कुमार स्वामी का कथन है—

"उपनिषदों के अनुसार मोक्ष का अभिप्राय किसी चीज का अवसान नहीं है। वहां मोक्ष का वास्तविक अभिप्राय पूर्ण आत्म-बोध से है। इस अवस्था में पूर्ण ज्ञान द्वारा अविद्या का अन्धकार दूर हो जाता है। तब ऐसी आत्माओं को स्थाई अनन्त और पूर्ण निर्वाण प्राप्त हो जाता है।[1] परन्तु बौद्ध लोग निर्वाण का अभिप्राय इस शब्द के प्रचलित अर्थ से निकालते हैं जिस का अभिप्राय है—नष्ट हो जाना। परन्तु यदि निर्वाण शब्द का यह अर्थ ही लिया जाय तब भी इस निर्वाण में आत्मा या व्यक्ति की सत्ता का विनाश तो माना ही नहीं जा सकता क्योंकि बौद्ध लोग तो आत्मा की सत्ता स्वीकार ही नहीं करते। अतः निर्वाणावस्था में केवल वृत्तियों का ही नाश होता है। इन्हीं वृत्तियों के नाश का नाम ही निर्वाण है। तब बचा क्या रहता है ? इस सम्बन्ध में प्राचीन बौद्ध चुप हैं।"

परन्तु हमारी सम्मति में— 'तब बचा क्या रहता है ?' इस प्रश्न का उत्तर भी महात्मा बुद्ध ने दे दिया है। प्राचीन बौद्ध धर्म इस सम्बन्ध में चुप नहीं है। महात्मा बुद्ध आत्मा की सत्ता स्वीकार करते थे— यह बात हम इसी

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ॥ ८ । १५ । १

अध्याय में अनेक युक्तियों और प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर चुके हैं, अतः वृत्तियों का निर्वाण हो जाने पर आत्मा का विशुद्ध स्वरूप बचा रहता है और यही वास्तविक निर्वाण है। महात्मा बुद्ध आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थे—इस स्थापना के प्रबल संस्थापक श्रीयुत राइस डेविड्स स्वयं इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

"शरीर, अनुभूति, विचार, संस्कार और चेतनता (अहंभाव) ये पांच खण्ड हैं। देह के शारीरिक तथा मानसिक भाग और शक्ति इन्हीं पांच खण्डों से बनी रहती है।[1] आत्मा की यदि सत्ता है तब वह अवश्य ही स्थायी और अविनाशी होना चाहिये। वह आत्मा इन पांचों खण्डों में स्पष्ट रूप से अविद्यमान है। ये पांचों खण्ड तो उत्पत्तिमान और विनाशवान हैं। महात्मा बुद्ध के इस उपदेश को, जिस में उन्होंने पांच खण्डों का वर्णन किया है 'अनत्ताल स्कन्द सूत्त' कहा जाता है जिस का अभिप्राय यह है कि जिस सूत्त में आत्मा की सत्ता का चिन्ह न हो। परन्तु इस सुत्त में तो केवल पांचों विनाशी खण्डों ही का वर्णन है, अविनाशी आत्मा का वर्णन नहीं। आत्मा है या नहीं, इस सम्बन्ध में इस सूत्त से कुछ भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।"[2]

इस से परोक्ष रूप में यह भी सिद्ध होता है कि महात्मा बुद्ध आत्मा की सत्ता स्वीकार करते थे, क्योंकि इस सूत्त में अनात्मा क्या है, यह बताया गया है।

बौद्ध निर्वाण का वास्तविक स्वरूप तो सत्तावान और आनन्दमय है। वह पूर्ण अभाव नहीं। डा० कुमार स्वामी के निम्नलिखित उद्धरणों से हमारी यह स्थापना पुष्ट होती है—

१. मिलिन्द पत्र में निर्वाण की तुलना एक ऐसे उत्तम नगर से की है जो नगर कालिमा रहित, अबाध्य, पवित्र, स्वच्छ, कालातीत, अजेय, सुरक्षित,

---

1. Buelhnism. R. Davids. Page 10.
2. S. B. E. Vol. xiii. Pages 100, Footnote.

शान्त और प्रसन्नता पूर्ण हो । तथापि इस नगर का चित्र स्वर्ग की कल्पना से सर्वथा भिन्न है ।

२. महात्मा बुद्ध का कथन है—हे सज्जन् ! पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर नीचे, ऊपर या दूर कहीं ऐसा कोई विशेष स्थान नहीं जहां निर्वाण स्थित हो । तथापि निर्वाण है । और जो व्यक्ति स्वच्छ, सत्यमय तथा तार्किक धारणा के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है, उसे निर्वाण प्राप्त होता है । चाहे वह व्यक्ति ग्रीस में रहता हो, चाहे चीन में, चाहे फारस में और चाहे कौशल में ।

साहित्य में निर्वाण शब्द का अर्थ आग का बुझना है । यह बात भी एक विशेष भाव की द्योतक है । महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों में जगह जगह अग्नि ज्वालाओं की तुलना का वर्णन किया है । गौतम का कथन है कि यह सारा संसार ज्वालामय है । फिर वह पूछते हैं— "यह किन ज्वालाओं से जल रहा है ?" उत्तर मिलता है—"यह राग, द्वेश और मोह की ज्वालाओं से जल रहा है । यह जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, पीड़ा, पश्चाताप, शोक, दुख और निराशा की ज्वालाओं से जल रहा है ।" पुनर्जन्म की कृपा द्वारा एक सत्ता इस ज्वाला में नैरन्तर्य बनाती हुई ज्वलनीय पदार्थों के एक ढेर से दूसरे ढेर में चली जाती है । अर्हत और सन्त के मोक्ष द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेने का यही अभिप्राय है कि उसमें से राग द्वेश और मोह की ज्वालाएं पूर्णतया शान्त हो जाती हैं— बुझ जाती हैं । निर्वाण केवल मात्र यही है । न इस से कम और न इस से अधिक ।

३, निर्वाण के लिये बौद्ध साहित्य में जो अन्य पर्यायवाची शब्द मिलते हैं, उन के अर्थों से भी यही द्योतित होता है कि निर्वाण का अर्थ सत्ता का पूर्ण विनाश नहीं है । निर्वाण के विशेषण और पर्यायवाची शब्द ये हैं— "दुख का विनाश" 'पाप की चिकित्सा', 'अविनाशी', 'स्थिर' अपने अकेले में ही पूर्णता, और 'स्थिर सुरक्षा ।'

४. महात्मा बुद्ध के मन्तव्यों के अनुसार जिसे निर्वाण प्राप्त हो गया है उस का कोई रूप नहीं रहता । इसीलिये लोगों की दृष्टि में उसकी सत्ता नहीं

रहती। उस अवस्था में सब बाधाएं और सब परिधियां नष्ट होजाती हैं। ये बाधाएं और सीमाएं उसी तरह नष्ट होजाती हैं, जैसे चूल्हे में से चिनगारी उड़ कर नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार पूर्ण मुक्ति या मोक्ष प्राप्त कर लेने का नाम ही निर्वाण है। वैदिक मोक्ष का भी तो ठीक यही स्वरूप है।

जो लोग इच्छाओं की बाढ़ को पार कर गए हैं और जिन्होंने शान्त प्रसन्नता में प्रवेश पालिया है उन का यहां कोई चिन्ह अवशिष्ट नहीं रहता।

महात्मा बुद्ध ने मालुक्य पुत्त को उपदेश देते हुए कहा है—"मैंने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा कि अर्हत मृत्यु के बाद नहीं रहता। मैंने यह भी नहीं कहा कि वह मृत्यु से पहले भी नहीं था और मृत्यु के बाद भी नहीं रहा।"

इन सब उद्धरणों से यह भली प्रकार सिद्ध होजाता है कि वैदिक मोक्ष और बौद्ध निर्वाण में कोई भेद नहीं है।

बौद्ध निर्वाण और वैदिक मोक्ष का स्वरूप एक ही है, यह बात सिद्ध करने के लिये मूल बौद्ध साहित्य में से अनेक प्रमाण हम यहां देते हैं। निर्वाण का स्वरूप महात्मा बुद्ध ने इस प्रकार बताया है—

"ध्यान शील, सात्विक और दृढ़ पराक्रमी विद्वान लोगों को ही मोह तृष्णादि से शून्य, अभय स्थान परमोत्तम निर्वाण प्राप्त होता है।"[1]

"जागरण शील, व्यसन में भय देखने वाले योगी धर्म भ्रष्ट नहीं हो सकते। उन को निर्वाण के समीप पहुंचा हुवा समझना चाहिये।"[2]

---

१. ते झायिनो साततिका निच्चं दल्हपरक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरम्॥ ३॥

धम्मपद अध्याय २

२ अप्पमादरतो भिक्खु पमाद भयदस्सी वा
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्से व सन्तिके॥ १२॥

धम्मपद अध्याय २

"एक मार्ग सांसारिक धन की ओर ले जाता है, दूसरा मार्ग निर्वाण की तरफ़ । यदि भगवान बुद्ध के शिष्यों ने यह बात समझ ली है तो वे सांसारिक यश के पीछे न जाकर विवेक ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे ।"[१]

"कुछ लोगों का पुनर्जन्म होता है—बुरा काम करने वाले नरक में जाते हैं । जिन लोगों ने संसार की सम्पूर्ण वासनाओं को छोड़ दिया है वे निर्वाण प्राप्त करते हैं ।"[२]

इस श्लोक से प्रतीत होता है कि पहले पद में तो पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है और दूसरे तथा तीसरे पद में पहले पद के पुनर्जन्म का श्रेणीकरण किया गया है । अर्थात् बुरा काम करने से नरक मिलता है और अच्छा काम करने से स्वर्ग । हमारी राय में इस का अभिप्राय यही नहीं है कि ये दोनों स्वर्ग और नरक इस दुनियां से पृथक् हैं । जो व्यक्ति पूर्णतया वासना रहित होजाता है उसे निर्वाण प्राप्ति होती है । यह निर्वाण की दशा मोक्ष की तरह भौतिक संसार से सर्वथा पृथक है । इसके बाद—

तितिक्षा परम धर्म है । निर्वाण सर्वोत्कृष्ट स्थिति है । जो दूसरों की हत्या करता है वह न परिव्राजक कहला सकता है और न भिक्षु ।[३]

---

१. अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान गमिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको ।
सक्कारं नाभिनन्देय विवेकमनुब्रूहये ॥ १२ ॥

धम्मपद अध्याय ५

२. गब्भमेके उपज्जन्ति निरियं पाप कम्मिनो ।
सुग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा ॥ १२ ॥

धम्मपद अध्याय ६

३. खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा ।
न हि पब्बजितो परूपघाती न समणो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

धम्मपद अध्याय १४

"क्षुधा सब से बुरी बीमारी है, संस्कार सब से बड़े दुख हैं। यह यथार्थ ज्ञान होजाने पर निर्वाण ही सब से बड़ा सुख है।"[1]

"शरीर का नीरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास परम सम्बन्ध है और निर्वाण परम सुख है।"[2]

"जिस में निर्वाण की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न होगई है, जिस का मन सन्तुष्ट है, प्रेम जिस के हृदय को विचलित नहीं कर सकता वह उर्ध्वरेता कहलाता है।"[3]

"जो धर्मात्मा लोग किसी की हिंसा नहीं करते, नित्य ही शरीर का संयम कर के पापों से बचे रहते हैं, वे महात्मा अच्युत स्थान निर्वाण को प्राप्त होते हैं; जहां शोक और संताप का नाम भी नहीं।"[4]

सदा जागरूक रहने वाले, दिन रात स्वाध्याय शील, तथा निर्वाण के लिये सतत प्रयत्न करने वाले मनुष्यों की वासनायें अवश्य समाप्त हो जावेंगी।"[5]

---

१. जिघच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा।
एवं अत्वा यथाभुतं निब्बानं परमं सुखम्॥ ७॥

धम्मपद अध्याय १५

२. आरोग्या परमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनम्।
विस्सासा परमा ञाति निब्बान परमं सुखम्॥ ८॥

धम्मपद अध्याय १५

३. छन्दजातो अनक्खाते मनसाच फुटा सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्ध चित्तो उद्धं सोतोति वुच्चति॥ १०॥

धम्मपद अध्याय १६।

४. अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुत्ता।
ते यंत्ति अच्युतं ठानं यत्थ गंत्वा न सोचरे॥ ५॥

धम्मपद अध्याय १७

५. सदा जागरमानानं अहो रत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा॥ ६॥

धम्मपद अध्याय १७॥

"आत्म-स्नेह को शरद ऋतु के कमल-फूल के समान तोड़ डालो! शान्ति के मार्ग का अवलम्बन करो। सुगत (बुद्ध) ने निर्वाण के मार्ग का उपदेश किया है।"[१]

"जिस की मृत्यु निकट आजाती है, उस के लिये उसके पुत्र, पिता और सम्बन्धी सब बेकाम हो जाते हैं। इस तरह एक दूसरे की नितान्त असमर्थता को देखकर बुद्धिमान लोगों को चाहिये कि वे निर्वाण की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्न करें।"[२]

'इन पालतू पशुओं पर सवार होकर निर्वाण में नहीं जाया जा सकता। वहां जाने के लिये तो अपने आत्मा को सुसंस्कृत कर के उस की सवारी करनी होती है।"[३]

"जो भिक्षु प्राणिमात्र को अपने ही समान देखता है और बुद्ध द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करता है वह शुभाशुभ संस्कारों से पृथक् होकर निर्वाण पद प्राप्त करता है।"[४]

---

१. उच्छिन्द सिनेह मत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना।
सन्ति मग्गमेव ब्रूहय निब्बाणं सुगतेन देसितम्॥ १३॥
धम्मपद अध्याय २०॥

२. न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बान्धवा।
अन्तकेनाधिपन्नस्त नत्थि ञातिसु ताणता॥ १६॥
एवमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सील संवुतो।
निब्बाणगमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये॥ १७॥
धम्मपद अध्याय २०॥

३. न हि एतेहि यानेहि गच्छेय अगतं दिसं।
यथात्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति॥ ४॥
धम्मपद अध्याय २३॥

४. मेत्ताविहारी यो भिक्खू पसन्नो बुद्ध सासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं संखा रूप समं सुखम्॥ ९॥
धम्मपद २५॥

"ज्ञान के बिना ध्यानावस्था सम्भव नहीं और ध्यानावस्था के बिना ज्ञान असम्भव है । जो इन दोनों को प्राप्त कर लेता है वह निर्वाण के निकट है । जब कोई व्यक्ति देह के रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पांच स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश पर विचार कर लेता है, वह निर्वाण द्वारा प्राप्त होने वाली असीम प्रसन्नता को पा जाता है ।"[1]

इसी तरह सुत्तनिपात में:—

"उद्योग शीलता मेरा बोझा ढोने वाला पशु है जो मुझे निर्वाण की तरफ ले जाता है और मार्ग में लौट कर फिर ऐसे स्थान पर नहीं जाता, जहां से वह मुझे लाया था ।"[2]

इस पद में गीता के "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" की ध्वनि है ।

"मैंने निर्वाण को पहुंचने के लिये सुदृढ़ नाव बनाई थी अब मैं वासनाओं के समुद्र को पार करके इस दूसरे किनारे पहुंच गया हूं, इस लिये यदि हे आकाश ! तुम बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो ।"[3]

"भागवत ने कहा— जिसने सन्देहावस्था को पार कर लिया है, जो दुःख रहित है, वह निर्वाण में प्रसन्नता प्राप्त करता है, वह लोभ से रहित है, वह मनुष्यों और देवताओं का नेता है वह मग्गजिन (मार्गजित) कहलाता है ।"[4]

---

१. नत्थिझानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो ।
यह्मि झानञ्च पञ्ञा च सवे निब्बानसन्तिके ॥ १३ ॥

धम्मपद अध्याय २५ ॥

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयव्वयं ।
लभति पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतम् ॥ १५ ॥

धम्मपद अध्याय २५ ॥

२. सुत्तनिपात English translation by V. Fausboll page 13.
Uragavagga. 4/4 verse. 4.
३. " " 2/4. Page 4 verse 4.
४. " " Page 16 verse 4.

इस से स्पष्ट रूप से निर्वाण आनन्द की एक विशेष अवस्था ही प्रतीत होती है।

"वह व्यक्ति जो श्रेष्ठ मार्ग का अन्वेषी है और जिसने निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, उसे चाहिये कि वह साधु, आत्मा की आवाज़ सुनने वाला, मधुर भाषी, सभ्य और अभिमान रहित हो।"[१]

"ऐसा भिक्षु जिसने इच्छा और लगाव से अपने को पृथक् कर लिया है, जिसमें इस संसार में पूरी समझ और सूझ है, उसे अभी से अमर शान्ति और अपरिवर्तनीय निर्वाण की दशा प्राप्त होगई है।"[२]

इन दोनों प्रमाणों से निर्वाण के उस अभाव स्वरूप का पूर्ण खण्डन हो जाता है जिसे वर्तमान बौद्ध लोग मानते हैं। यह निर्वाण तो जीवित दशा में भी प्राप्त किया जा सकता है। आगे कहा है—

"वह व्यक्ति यदि शरीर, मन या वचन से कोई पाप कार्य करता है तो वह उसे छिपा नहीं सकता क्योंकि जो निर्वाण की दशा में हैं, वे कुछ भी छिपा नहीं सकते।"[३]

"हे भागवत! तूने उस ब्राह्मण का नाम 'निग्रोध कप्प' रक्खा था। वह मुक्त होने के लिये तुम्हारी पूजा के उद्देश्य से तुम्हें, जिसने कि निर्वाण प्राप्त कर लिया है, ढूंढता था।"[४]

महात्मा बुद्ध शरीरावस्था में ही निर्वाण प्राप्त किये हुए थे क्योंकि उन का जीवन पूर्णतया पवित्र और पाप रहित था।

---

१. " " Page 24 verse 1.
२. " " " 33 " 12.
३. " " " 38 " 11.
४. " " " 56 " 2.

निर्वाण का स्वरूप इन प्रमाणों से और भी अधिक स्पष्ट हो जावेगा।

योगक्षेम ही निर्वाण है—"मैं नेरंजरा नदी के तट पर योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्ति के लिये तप कर रहा हूं।"[1]

एकान्तवास निर्वाण का साधन है— "वह जो अपने को इच्छाओं के अधीन न करके निर्वाण प्राप्ति के लिये एकान्तवास करता है, दूसरों के लिये जो बात सीखने की हैं, उसका जिसने विजय कर लिया है, जिस के लिये किसी प्रकार के विचार का कोई विषय नहीं रहा, वह तथागत पूजा के योग्य है।"[2]

"जिस के लिये सम्पूर्ण धर्मों और कर्तव्यों का नाश होगया है ; क्योंकि वह सब में से पार होगया है, जो शान्त है, जिसने लगाव का नाश करके अपने को आज़ाद कर लिया है—ऐसा तथागत पूजा के योग्य है।"[3]

गीता में इसी प्रकार कृष्ण ने कहा है—मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रहा है।"[4]

निर्वाण परम पवित्र है—यह राजकुमार पूर्ण बुद्धात्मा को प्राप्त कर लेगा। यह धर्म चक्र को चलायेगा। यह परम पवित्र निर्वाण को देख रहा है, यह करोड़ों मनुष्यों के भले की चिन्ता रखता है। इस का धर्म बहुत व्यापक होगा।"[5]

"निर्वाण अनश्वर है।"[6]

निर्वाणावस्था में व्यक्ति शान्त कहलाता है—"वह मुनि जो सत्य से ज़रा भी विचलित न होकर निर्वाण के स्थिर आधार पर खड़ा है वह ब्राह्मण है, उस ने सभी कुछ छोड़ दिया है वह वास्तव में शान्त कहलाये जाने के योग्य है।"[7]

---

1. Suttanipat translated in English by V. Fausboll. Page 68 verse 1.
2. " " " " 76 " 21.
3. " " " " 77 " 22.
४. न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन। गीता " 125 " 15.
5. Suttnipat " " 141 " 35.
6. " " " " 171 " 12.

"मेत्तगु ने कहा—"मैं महान इसि के इन शब्दों में बड़ी प्रसन्नता अनुभव करता हूं । हे गोतम ! उपाधि से छुटकारा निर्वाण है ।"[१]

तृष्णा का विनाश निर्वाण है—"भागवत ने कहा—हे उपशिव ! शून्य को दृष्टि में रख कर विचार पूर्ण होकर, किसी का प्रतिबिम्ब अपने पर डाले बिना तू इस नदी को पार करेगा । वासना जन्य सुखों को छोड़ कर, सन्देह रहित दशा नें दिन रात तृष्णा रहित होकर तू निर्वाण प्राप्त करेगा ।"[२]

"यह तुलना रहित द्वीप, जहां कुछ भी नहीं है, जिसे कुछ भी स्पृहणीय नहीं है, निर्वाण कहलाता है, यहां ह्रास और मृत्यु विनष्ट होजाती है ।"[३]

"बुद्ध ने कहा संसार खुशियों से बंधा हुवा है, दलील करना इस का अभ्यास है । इच्छाओं के त्याग से निर्वाण की प्राप्ति होती है ।"[४]

"मैं अवश्य निर्वाण को प्राप्त करुंगा, जो अविभाजनीय है, जिस की तुलना दूसरी नहीं, जहां जाकर सन्देहों का नाश होजाता है ।"[५]

---

१. Suttanipat translated in English by v. Fausboll. Page 186 " 9.
२. " " " " 189 " 2.
३. " " " " 193 " 3.
४. " " " " 196 " 5.
५. " " " " 202 " 26

चतुर्थ अध्याय

बुद्ध के वेद और ईश्वर सम्बन्धी विचार

महात्मा बुद्ध के वेद सम्बन्धी कुछ विचार हम पिछले अध्याय में उद्धृत कर चुके हैं। परन्तु उन विचारों की सत्ता होते हुए भी महात्मा बुद्ध को उस के अनुयायी वेद-विरोधी और ईश्वर की सत्ता से इन्कार करने वाला समझने लगे। इस का एक कारण है। महात्मा बुद्ध के जीवन काल के प्रारम्भिक दिनों में यज्ञों में पशुहिंसा की प्रथा पूरे ज़ोरों से प्रचलित थी। ये हिंसायें वेद के मन्त्रों के साथ की जाती थीं। वेद मन्त्रों के अर्थ इस प्रकार से तोड़ मोड़ करे लगाए जाते थे कि उन से इस पशु-बलि का अनुमोदन प्रतीत होता था। दूसरी ओर लोगों का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। अतः यज्ञों में की जाने वाली यह हिंसा भी ईश्वर के नाम पर ही की जाती थी। महात्मा बुद्ध ने इस मूर्खता पूर्ण हिंसा का तीव्र विरोध किया इस के लिये उन्होंने उन ब्राह्मणों का भी घोर विरोध किया जो पुरोहित बन कर यज्ञों में पशुवध किया करते थे। यह सब करते हुए भी उन्होंने वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि ये आजकल के ब्राह्मण वेदों के वास्तविक आदेशों से बहुत दूर पिछड़ गए हैं। ये यज्ञों में पशुबलि करने वाले ईश्वर की वास्तविक सत्ता और स्वरूप से सर्वथा अपरिचित रह कर भी उस के नाम का ढोंग करते हैं। सच्चा ब्राह्मण कौन होता है, इस प्रश्न पर उन्होंने बहुत विस्तार से प्रकाश डाला है। परन्तु पीछे से उन के इस ब्राह्मण-विरोध का उनके अनुयायियों ने यह अभिप्राय ले लिया कि वह वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता का भी विरोध करते थे।

इस अध्याय में हम महात्मा बुद्ध के उन विचारों का विस्तार से उल्लेख करेंगे जिन में उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मणों और उन के वेद ज्ञान का विरोध किया

हैं । पिछले अध्याय में यह दिखाया जा चुका है कि महात्मा बुद्ध स्वयं अपने को ब्राह्मण कहते थे और ब्राह्मण की परिभाषा उन्होंने स्वयं यह की है कि वह वेदज्ञ होना चाहिये । पाठक देखेंगे कि महात्मा बुद्ध ने जिस प्रकरण में तत्कालीन ब्राह्मणों की खबर ली है उस में भी उन्होंने वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं किया । अपितु उन्होंने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का दर्शन करते हुए यह बताया है कि वे रूढ़ी पूजक ब्राह्मण उस से बहुत दूर हैं ।

इस सम्बन्ध में हम यहां महात्मा बुद्ध के जिस 'सूत्त ग्रन्थ' के उद्धरण देंगे उस का नाम है 'तविग-वाच्छगोत्त सूत्त' । तविग महात्मा बुद्ध का ही नाम है । इस का अर्थ है—"वेदज्ञ ।"[1] इस का अभिप्राय यह हुआ कि महात्मा बुद्ध को वेदज्ञ भी कहा जाता था । इस ग्रन्थ में वासत्य नामक एक ब्राह्मण से महात्मा बुद्ध का वार्तालाप वर्णित है ।

"वासत्य ने कहा—हे गौतम, विभिन्न ब्राह्मणों के विभिन्न मार्ग हैं । ये ब्राह्मण अध्वर्यु, तैत्तिरीय, छन्दश, छान्दोग, ब्रह्मचारी आदि भागों में विभक्त हैं । परन्तु इन सब के उपाय भिन्न भिन्न होते हुए भी अन्त में इन सब के द्वारा फल एक ही होता है । वह यह कि मनुष्य ब्रह्म से मिल जाता है । जिस प्रकार किसी गांव के निकट अनेक मार्ग होते हैं परन्तु गांव में आकर वे सब एक हो जाते हैं उसी प्रकार अध्वर्यु, तैत्तरेय, छन्दश, छान्दोग, ब्रह्मचारी आदि ब्राह्मण भी अलग अलग मार्ग बताते हुए एक ही ब्रह्म की ओर ले जाते हैं ।"

गौतम ने पूछा—'क्या तुम्हारा विचार है कि ये सब मार्ग सत्यमार्ग हैं ?'

वासत्य ने कहा—'मेरा यही विचार है ।'

'परन्तु वासत्य ! क्या कोई त्रयी विद्या में निपुण ऐसा ब्राह्मण भी है जिस ने ईश्वर के सम्मुख खड़े होकर उस के दर्शन किये हों ?'

'सचमुच नहीं ।'

---

1. Sacred Books of the East. Vol. xi. by Rhys Davids. Introduction to the Tavigga Suta. Page—159.

'वासत्थ ! क्या इन ब्राह्मणों की सातवीं पीढ़ी तक के किसी गुरु ने ईश्वर के दर्शन अपनी आंखों से किये हैं ?'

'सचमुच नहीं।'

'अच्छा, क्या त्रयी विद्या के विद्वान प्राचीन ऋषियों ने जिन्हें छन्दज्ञान हुवा था या जिन्हों ने छन्दों की व्याख्या की थी ; जिन के द्वारा उच्चरित वाक्यों को आज तक के ब्राह्मण भी बिना समझे बूझे याद किये चले आते हैं ; इन अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वमित्र, जमदग्नि, अग्नि रस, भारद्वाज, वसिष्ट, कश्यप, भृगु आदि ऋषियों में से कभी किसी ने कहा है कि— "हमने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, हमने उसे देखा है वह अमुक स्थान पर रहता है ?"

'नहीं, ऐसा नहीं कहा।'

'तो क्या आज कल के त्रयी विद्या जानने वाले ब्राह्मणों का दावा यह न हुवा कि—"हम जिसे नहीं जानते, जिस का हमने साक्षात् नहीं किया, उससे मिलने का हम लोगों को मार्ग बता सकते हैं। जिस मार्ग का अनुसरण करने से ब्रह्म के साथ एकता हो सकती है।" इसका यह मतलब नहीं कि उनका यह दावा मूर्खतापूर्ण है ?

'हां इन ब्राह्मणों का यह दावा मूर्खता पूर्ण है।'

'वासत्थ ! जिस प्रकार एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चार अन्धे मार्ग प्राप्त कर लेना चाहते हों, परन्तु सब को दिखाई न देने के कारण मार्गप्राप्ति असम्भव हो, उसी प्रकार क्या इन ब्राह्मणों का हाल नहीं है जो स्वयं समझे बिना ही किसी अज्ञेय मार्ग का उपदेश किया करते हैं ?

'यही बात है।'

'अच्छा वासत्थ ! एक मनुष्य कहे कि इस पृथवी पर मैं बड़े दीर्घकाल से एक अत्यन्त सुन्दरी को प्रेम करता हूं।'

लोग उससे पूछेंगे— मित्र ! क्या तुम्हें मालूम है कि वह सुन्दरतम स्त्री किस देश की है ? वह किसी राजा या कुलीन की लड़की है, या किसी ब्राह्मण की कन्या है अथवा किसी व्यभिचारी की पुत्री या कोई शूद्रा है ?"

परन्तु वह उत्तर देवे—'नहीं।'

लोग उससे फिर पूछें— 'क्या तुम्हें यह ज्ञात है कि यह सुन्दर स्त्री किस कद की है, उस का शरीर कैसा है, उस का रंग कौन सा है, वह किस गांव में रहती है?'

वह उत्तर देता है—'नहीं।'

लोग उससे आश्चर्य से पूछें—'फिर भी तुम उसे प्यार करते हो?'

इस पर भी वह उत्तर देता है—'हां।'

'अब हे वासत्य! यह बताओ कि उस मनुष्य की यह बात मूर्खतापूर्ण है या नहीं?'

"है।"

'वासत्थ! कोई मनुष्य चौराहे में खड़ा होकर सीढ़ियां बनाने लगे, और कहे कि मैं इन्हें एक मकान पर लेजा रहा हूं।'

लोग उससे पूछेंगे—'मित्र! वह मकान कहां है? वह उत्तर दिशा में है या पूर्व में, पश्चिम में अथवा दक्षिण में? वह छोटा है या बड़ा?'

वह उत्तर दे—'मुझे मालूम नहीं।'

लोग पूछेंगे—'फिर भी तुम एक ऐसे मकान पर चढ़ने के लिये सीढ़ियां बना रहे हो, जिसे तुम जानते नहीं, जो तुम्हें दिखाई भी नहीं देरहा है।'

वह कहे—'हां।'

'तो क्या उसकी यह बात मूर्खता पूर्ण न होगी?' 'होगी।'

'वासत्थ, एक और उदाहरण लो। कल्पना करो कि. यह अचिरावती नदी किनारे तक भर कर वह रही है। इसके दूसरे किनारे पर एक मनुष्य आता है जिसे किसी जरूरी काम के लिये इस पारे आना है। वह मनुष्य उसी किनारे पर खड़ा होकर यह प्रार्थना करे या डांट कर कहे या आशा करे कि—"ओ दूसरे किनारे! इस पार आजाओ!" क्या उसके इस प्रकार डांटने,

खुशामद करने, स्तुति करने, आशा करने, अथवा चिल्लाने से यह किनारा उस की ओर चला जायगा ?"

"कभी नहीं।"

'हे वासत्थ! ठीक इसी प्रकार एक त्रयी-विद्या में निष्णात ब्राह्मण कार्य-रूप में यदि उन गुणों को अपने अन्दर नहीं लेता जो किसी मनुष्य को ब्राह्मण बनाते हैं और अब्राह्मणों का आचरण करता है ; और मुंह से कहता है— 'मैं इन्द्र को बुलाता हूं, वरुण को बुलाता हूं, प्रजापति को बुलाता हूं, ब्रह्मा को बुलाता हूं, महेश को बुलाता हूं, यम को बुलाता हूं।" क्या उस के पास वे आजायंगे ? ऐसे ब्राह्मण यदि धर्म देकर, प्रार्थना कर के या चिल्लाकर यह कहें कि 'मृत्यु के अनन्तर हम मुक्त होकर ईश्वर में मिल जांय, तो क्या उन की यह बात पूरी होगी ?

'अच्छा वासत्थ अचिरावती नदी के दूसरे पार खड़ा हुवा वह मनुष्य किसी मजबूत जंजीर से हाथ पैर पीठ आदि बांध कर यदि उसी किनारे पर डाल दिया जाय तो क्या वह इस पार पहुंच सकेगा ?

'कभी नहीं, भगवन्।'

'इसी प्रकार हे वासत्थ ! पांच वस्तुएं है जो लोभ की ओर लेजाती हैं, ये बांधने वाली जंजीरें हैं।

'ये पांच क्या हैं ?'

'आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा को पसन्द आने वाली, आकर्षक और अभीष्ट वस्तुएं जो लोभ के मार्ग की ओर ले जाती हैं। ये पांचों प्रकार के आनन्द मनुष्य को बन्धन में डालने वाले हैं। ये त्रयी-विद्या में निष्णात ब्राह्मण भी इन पांचों बन्धनों में बंधे हुए हैं, इन के खतरे से वाकिफ़ नहीं, इन में लिप्त हैं, इन से मुक्त होने का उपाय नहीं जानते। हे वासत्थ ! ये ब्राह्मण कहलाये जाने वाले परन्तु ब्राह्मणों के वास्तविक कर्तव्यों से पराङ्मुख व्यक्ति जो अब्राह्मणों का

आचरण करते हैं— इन पांचों बन्धनों में बंधे हुए हैं। क्या कभी यह सम्भव है कि ये लोग भी मृत्यु के अनन्तर मोक्ष द्वारा ईश्वर में मिल कर एकत्व को प्राप्त कर लें ?'

'वासत्य, क्या यह कभी सम्भव है कि अचिरावती के उस पार बैठा हुवा व्यक्ति इस पार आने की इच्छा से अपना सिर लपेट कर नदी के उसी किनारे पर ही सो जाय, परन्तु फिर भी वह स्वयं ही पहुच जाय ?'

'कभी नहीं भगवन् !'

'इसी प्रकार मनुष्य के मार्ग में पांच बाधाएं हैं। ये बाधाएं काम, ईर्षा आलस्य, अहंकार और सन्देह हैं। ये त्रयी विद्या के पण्डित ब्राह्मण भी इन पांचों बाधाओं में जकड़े और उलझे हुए हैं। ये ब्राह्मण के कर्तव्य न कर के अब्राह्मणों का कार्य करने वाले ब्राह्मण इन पांचों बाधाओं के रहते हुए भी कभी ईश्वर में मिल कर एक हो सकते हैं ?'

'हे वासत्य ! तुम्हें वृद्ध और विद्वान ब्राह्मणों ने क्या शिक्षाएं दी हैं, क्या ईश्वर के पास धन और स्त्रियां हैं ?'

'नहीं।'

'वह क्रोध पूर्ण है या क्रोध रहित ?'

'वह क्रोध रहित है'

'उसका अन्तःकरण मलिन है या पवित्र ?'

'पवित्र।'

'वह स्वयं अपना स्वामी है या नहीं ?'

'है।'

'अच्छा वासत्य ! क्या इन ब्राह्मणों के पास धन और स्त्रियां नहीं ?'

'हैं।'

'क्रोधी हैं या क्रोध रहित ?'

क्रोधी।'

'वे ईर्ष्यालु हैं या ईर्ष्या रहित ?'

'ईर्ष्यालु।'

'उन का अन्तः करण क्या पवित्र है ?'

'नहीं, अपवित्र है।'

'वे स्वयं अपने स्वामी हैं या नहीं ?'

'नहीं।'

'हे वासत्थ ! तुम स्वयं ही ब्रह्मा और ब्राह्मणों में इतना स्वभाव-वैषम्य बतला रहे हो। अब बताओ कि इन दोनों में परस्पर कोई एकता और साम्य भी हो सकता है ?'

'कभी नहीं, भगवन् !'

'इसका अभिप्राय यह हुवा कि ये ब्राह्मण मलिन हृदय के हैं; वासनाओं से शून्य नहीं और वह ब्रह्मा पवित्र और वासना रहित है अतः ये ब्राह्मण अपनी मृत्यु के अनन्तर उस में मिल नहीं सकते।'

'अर्थात् अब ये आचार हीन ब्राह्मण बैठकर वेद का पाठ करते हैं, या तदनुसार कोई कर्मकाण्ड करते हैं, तब उन के हृदय में तो यह होता है कि इसके द्वारा हमें मोक्ष प्राप्ति हो जायगी, परन्तु वे धोखे में होते हैं। अतः उन त्रयी-विद्या के पण्डितों की विद्या वास्तव में जल रहित मरुभूमि के समान है, मार्ग रहित बीहड़ जंगल के समान है और नाश कारिणी है।

महात्मा बुद्ध के यह सब कह लेने के उपरान्त वह नौजवान ब्राह्मण बोलाः—मुझे बताया गया है कि श्रमण गौतम ही ईश्वर से साम्य प्राप्त करने के साधन जानता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा—'मानसाकत नगर यहां से निकट है न ?'

'जी हां, निकट है।'

'अच्छा वासत्थ, एक मनुष्य का जन्म मानसकत में ही हुआ और वह वहीं रहता हो। उस से कोई पूछे कि मानसाकत का कौन सा मार्ग है तो क्या उसे उत्तर देने में कुछ विलम्ब या कष्ट होगा ?'

'कभी नहीं श्रीमन् ! जब वह मनुष्य वहीं उत्पन्न हुवा और वहीं बढ़ा है तो वह अवश्य ही मानसाकत के आसपास की सब सड़कों से परिचित होगा।'

'हे वासत्थ ! यह सम्भव है कि वह मानसाकत में उत्पन्न हुआ और पला हुआ मनुष्य मानसाकत का मार्ग पूछे जाने पर सन्देह में पड़ जाय परन्तु यह सम्भव नहीं है कि तथागत से यह प्रश्न पूछे जाने पर कि ईश्वर में एक हो जाने का मार्ग कौन सा है, तथागत सन्देह में पड़ जाय। उसे इस में न कोई सन्देह है और न कोई कठिनाई। हे वासत्थ ! मैं ब्रह्म को जानता हूं, ब्रह्म के जगत को जानता हूं और उस मार्ग को भी जानता हूं, जिस का अनुसरण करके ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। इसे मैं उसी प्रकार से जानता हूं जिस प्रकार कि एक ब्रह्म में साम्य प्राप्त किया हुआ और उसके जगत में उत्पन्न हुआ मनुष्य ब्रह्म को जानता है।'

महात्मा बुद्ध की उपर्युक्त बात सुन कर वासत्थ ने कहा—'यह सुना है कि श्रवण गौतम ब्रह्म से साम्य प्राप्त करने का उपाय जानता है। अतः हे गौतम, मुझे ब्रह्म में मिल जाने का मार्ग बतलाओ और इस प्रकार हे पूजनीय गौतम ! ब्राह्मण जाति की विनाश से रक्षा करो।''[१]

इस के अनन्तर महात्मा बुद्ध ने वासत्थ को ब्राह्म प्राप्ति के साधनों पर उपदेश दिया है।

यहां यह अध्याय समाप्त हो जाता है। इस प्रकरण पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। यह स्वयं ही स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध ब्रह्म अर्थात् ईश्वर और वेद के विरोधी नहीं अपितु तत्कालीन ब्राह्मण कहलाये जाने वाले जनसमुदाय के पाखण्ड के विरोधी थे। वह स्वयं अपने को ब्राह्मण और ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का जानकार कहते हैं। इस अवस्था में उन्हें नास्तिक या अवैदिक मत का संस्थापक कहना सरासर अन्याय होगा।

---

१. बौद्ध सूत्र ग्रन्थ. तविज्जा सूत्त. अध्याय १.

पंचम अध्याय

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएं

महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन काल में जो सैकड़ों धार्मिक उपदेश दिये थे उन में से कुछ स्थलों को छांट कर हम यहां उद्धृत करते हैं । इन उपदेशों द्वारा महात्मा बुद्ध के वास्तविक विचारों का ठीक ठीक अन्दाज़ा लगाया जा सकेगा । इन उद्धरणों से महात्मा बुद्ध के प्रचार का ढंग तथा उन की युक्तियों की शैली का भी नमूना पाठक ले सकेंगे—

वासत्थ सूत्त— एक समय भगवान बुद्ध ज्ञानमकाल के जंगलों में रहते थे । उन दिनों इसी जंगल में बहुत से धनी और प्रतिष्ठित ब्राह्मण भी रहा करते थे । इन ब्राह्मणों में से कुछ के नाम हैं— कांस्किन तारुक्ख, पोक्खार शती, खानुशोगी, तोदेय्य आदि ।

एक दिन इसी वन में नवयुवक वासत्थ (वसिष्ट) और भारद्वाज में इस विषय पर विवाद उत्पन्न हुवा कि कोई व्यक्ति ब्राह्मण किस तरह वनता है । नवयुवक भारद्वाज ने कहा—"जो व्यक्ति जन्म के दोनों पहलुओं से कुलीन है, अर्थात् जिसके माता और पिता दोनों अपनी अपनी सात पीढ़ियों तक विशुद्ध वंश के रहे हैं, वह ब्राह्मण है ।"

नवयुवक वासत्थ ने कहा—"जो मनुष्य सत्यमय और पुण्यात्मा है तथा अच्छे काम करता है, वह ब्राह्मण है ।"

इस वात पर दोनों में खूब वाद-विवाद हुवा परन्तु वे दोनों किसी एक परिणाम पर न पहुंच सके । तव वासत्थ ने भारद्वाज से कहा कि हे भारद्वाज ! यह शाक्य वंशीय श्रमण गौतम, जो शाक्य वंश को छोड़ आया है इसी जंगल में

रहता है । हमें चाहिये कि हम उसके पास जावें और अपना यह विवाद उसके सम्मुख रख प्रार्थना करें कि वह हमें इस का उत्तर दे । वह जो कुछ कहेगा, उसे हम दोनों स्वीकार कर लेंगे ।

इस बात को भारद्वाज ने भी स्वीकार कर लिया । तब वे दोनों भगवान बुद्ध के पास गए । वहां बुद्ध को नमस्कार करके तथा कुछ इधर उधर की मनोरंजक बातें कर के वे दोनों तीनों उसके निकट बैठ गए । तब वासत्य ने कहा—"हम दोनों तीनों वेदों के निष्णात और प्रामाणिक पण्डित माने जाते हैं । मैं प्रसिद्ध विद्वान पेच्चर शती का शिष्य हूं और यह नवयुवक तारुच्च का शिष्य है । तीनों वेदों के पण्डित जो कुछ जानते हैं, वह हमें भी ज्ञात है । अपने आचार्यों के समान हम दोनों भी यह रचना, व्याकरण और मन्त्रपाठ में पारंगत हैं । गौतम, हम दोनों में जन्म के सम्बन्ध में एक वाद-विवाद उठ खड़ा हुवा है । हे क्रान्त-द्रष्टा ! भारद्वाज कहता है कि कोई व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण बनता है और मेरा मत है कि ब्राह्मण कर्म से होता है । हम दोनों एक दूसरे को अपनी बात मनवा नहीं सके । इसी से हम आप की सेवा में अपनी शंका की निवृत्ति के लिये आये हैं । हम उस गौतम से जो चक्षु के रूप में संसार में आया है, पूछते हैं कि क्या कोई व्यक्ति अपने कर्मों से ब्राह्मण बनता है या जन्म से ?

बुद्ध ने कहा—"हे वासत्य ! मैं तुम्हें इस बात का जवाब देता हूं । तुम जानते हो कि जानकार जन्तुओं में परस्पर बहुत विचित्रताएं है और उन में नाना-प्रकार की श्रेणियां है । तुम जानते हो कि वृक्षों और फलों में भी नानाप्रकार के स्पष्ट भेद हैं, और उनकी श्रेणियां भी विभिन्न प्रकार की हैं । तुम्हें ज्ञात है कि कीड़ियों, भिड़ों और कीड़ों आदि में नाना प्रकार के स्पष्ट भेद होने कारण उन की विभिन्न जातियां हैं । यह भी तुम जानते हो कि चौपाये जानवरों में अनेक प्रकार के छोटे बड़े विभेद हैं, जो उन में स्थिर भिन्नता लाये हुए हैं ; इसी तरह सांपों में भी उड़ने वाले, रेंगने वाले आदि के रूप में अनेकों विविध श्रेणियां हैं । जल में रहने वाली मछलियों और हवा में उड़ने वाले पक्षियों में भी इसी प्रकार सैंकड़ों विभिन्न प्रकार के स्थिर भेद हैं जिन के कारण उनकी जातियां स्थिर रूप में भिन्न भिन्न हैं ।

इन प्राणियों में तो विभिन्न जातियां बनाने वाले भेद स्थिर हैं और बहुत अधिक हैं, परन्तु मनुष्यों में विभिन्न श्रेणियां बनाने वाले भेद उतने विविध और स्थिर नहीं। उनके बाल, सिर, कान, आंख, मुंह, नाक, ओंठ, भवें, गर्दन, कन्धा, पेट, पीठ, रीढ़, छाती, स्त्रियों के गुह्य अंग, सम्भोग, हाथ, पैर, हथेली, नाखून, घुटना, रंग आवाज़ आदि में इतनी स्थिर और गहरी विभिन्नताएं नहीं, जितनी अन्य जीवों की विभिन्न श्रेणियों में। अन्य प्राणियों के शरीर की रचना में ही भारी भेद होता है परन्तु मनुष्य के सम्बन्ध में वह बात नहीं। मनुष्यों के पारस्परिक शारीरिक भेद भी बहुत सामान्य हैं।

हे वासत्य! मनुष्यों में जो मनुष्य गौएं चराता है, उसे हम चरवाहा कहेंगे; वह 'ब्राह्मण' नहीं कहा जा सकता। जो मनुष्य कला सम्बन्धी बातों से अपनी आजीविका करता है, उसे हम 'कलाजीवी' कहेंगे 'ब्राह्मण' नहीं। जो आदमी व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहा जायेगा, 'ब्राह्मण' नहीं। जो आदमी दूसरों की सेवा करके अपना निर्वाह कराता है, वह 'अनुचर' ही कहा जायगा, वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता। जो चोरी करता है, वह चोर ही होगा, उसे 'ब्राह्मण' कहना अनुचित है। जो आदमी शास्त्रों पर निर्वाह करता है उसे सैनिक ही कहना चाहिये, 'ब्राह्मण' नहीं। जो लोग गृहस्थों के पारिवारिक त्यौहारों को कराते हैं उन्हें 'त्यौहारिक' ही कहना चाहिये, 'ब्राह्मण' नहीं कहना चाहिये। मनुष्यों में जिस का भूमि और प्रजा पर स्वत्व है वह राजा ही कहलायेगा, उसे 'ब्राह्मण' कैसे कहा जा सकता है?

किसी विशेष माता के पेट से जन्म लेने के कारण मैं किसी को 'ब्राह्मण' नहीं कहूंगा, चाहे वह कितना ही धनी क्यों न हो। उसे 'भोवादी' ही कहा जा सकता है। वह व्यक्ति जिसके पास कुछ भी नहीं है और जो किसी वस्तु पर अपना ममत्व कायम नहीं करता—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहूंगा।

जिसने अपने सब बन्धन काट दिए हैं; अपने को सब लगावों से पृथक कर के भी जो कम्पयमान नहीं हुवा, जिसने अपने को स्वाधीन कर लिया है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहूंगा।

वह व्यक्ति जो विद्वेश, लगाव और सन्देह से दूर होगया है जिसने अज्ञान की सब बाधाएं दूर कर दी हैं, जो प्रबुद्ध और जागृत होगया है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहूंगा ।

जो कोई भी निष्पाप रहते हुए घुड़की, प्रहार और अत्याचारमय बन्धनों को सहता है ; जिसकी सहन शक्ति बहुत बढ़ी हुई है ; जो अपने अनुयाइयों के लिये इसी शक्ति को आदर्श रखता है— मेरी राय में तो वही ब्राह्मण है ।

जो व्यक्ति क्रोध से रहित है, अच्छे काम करता है, सत्याभिलाषी है, जिसने अपनी इच्छाओं का दमन कर दिया है, नम्र है, उसका यही जन्म अन्तिम जन्म है (फिर वह मुक्त हो जायगा)—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं ।

जो मनुष्य संसार में, पानी में कमल के फूल के समान निर्लिप्त होकर अथवा सूई की नोक पर राई के दाने के समान रहता है, जिसे सम्भोग की इच्छा अपनी ओर आकर्षित नहीं करती, मेरी राय में वही ब्राह्मण है ।

वह व्यक्ति जो इस संसार में रहते हुए ही दुःख निवृत्ति के उपाय जान गया है, जिस ने अपने बन्धनों को काट गिराया है, जो आज़ाद हो गया है—उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

वह आदमी जिस में गम्भीर विचार शक्ति है, जो बुद्धिमान है, जो सत्य और असत्य के मार्ग में भेद कर सकता है, जिसने सर्वश्रेष्ठ भलाई को प्राप्त कर लिया है—मैं उसे ब्राह्मण मानता हूं ।

जिस व्यक्ति ने प्राणीमात्र के साथ अहिंसा का व्यवहार करने का व्रत लेलिया है, जो कमज़ोर और ताकतवर दोनों के प्रति अहिंसा का भाव रखता है, जो न किसी को मारता है और न किसी को मारने में कारण बनता है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं

वह व्यक्ति जो आततताइयों के प्रति भी आततायी नहीं बनता, जो हिंसकों में भी शान्त है, जो अधिकारलोलुपों के प्रति भी विद्वेश का भाव नहीं रखता—मेरी राय में तो वही ब्राह्मण है ।

वह व्यक्ति जिस की वासनाएं, अधिकार लोलुपता और फल के भाव उसी तरह नष्ट होगए हैं जिस तरह सूई की नोक पर से राई का दाना गिर पड़ता है— वह मेरी समझ में ब्राह्मण है।

वह व्यक्ति जो सत्य बोलता है, जिस की वाणी भाव मय होती है, जिस में कठोरता नहीं होती, जो किसी को आघात नहीं पहुंचाता—मेरी राय में वही ब्राह्मण है।

जो कोई व्यक्ति अनधिकार पूर्वक किसी छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी अथवा अच्छी या बुरी वस्तु को भी हथियाने का प्रयत्न नहीं करता—वह ब्राह्मण है।

जिस व्यक्ति के हृदय में इस जन्म या भविष्य के जन्म के सम्बन्ध में कोई कामना नहीं रही, जो इच्छा रहित और स्वतन्त्र है— वही वास्तविक ब्राह्मण है।

जिस व्यक्ति में इच्छाएं नहीं रहीं, जिस ने अपने ज्ञान के प्रभाव से अपने को सन्देह मुक्त कर लिया है, जो मोक्ष का अधिकारी बन गया है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जो कोई व्यक्ति भी इस संसार में रहते हुए अच्छे या बुरे— दोनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त होगया है, जो दुःख और दुर्गति से बच गया है, जो पवित्र है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जो व्यक्ति चन्द्रमा की तरह कलंक रहित है, शुद्ध है, पवित्र है, स्थिर है, जिसने प्रसन्नता के बन्धन को भी नष्ट कर दिया है— मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जिस व्यक्ति ने इस दुर्गम कीचड़ को लांघ लिया है, जिसने संकल्प और मूर्खताओं को जीत लिया है, जो पार निकल गया है, जो दूसरे किनारे पर पहुंच गया है, जो समाधिमय है, जो इच्छा और सन्देह से परे है, जो शान्त है, जो आग्रह रहित है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जो कोई भी व्यक्ति कामजन्य आल्हाद को छोड़ कर गृहरहित दशा में इधर उधर घूमता फिरता है, जो अपने हृदय में काम जन्य वासनाओं को पैदा ही नहीं होने देता—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जो कोई भी व्यक्ति तृष्णा को छोड़ कर गृहरहित दशा में इधर उधर घूमता फिरता है, तृष्णाजन्य वासनाओं को पैदा ही नहीं होने देता—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जो कोई भी व्यक्ति मानवीय आकर्षण या लगाव (योग) को छोड़ कर दैवीय लगाव का भी त्याग कर देता है, जिसने अपने को सम्पूर्ण लगावों से आज़ाद कर लिया है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जिस मनुष्य ने राग और द्वेश को छोड़ कर अपने को शान्त और उपाधि रहित कर लिया है—अपनी सत्ता को ही भुला दिया है—जो वीर है, जिस ने सम्पूर्ण संसार का विजय कर लिया है—बुद्ध तो उसी को ब्राह्मण कहता है।

जो कोई भी व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के विनाश और उनकी पुनरुत्पत्ति को समझ गया है, जिसे किसी चीज़ से आकर्षण नहीं रहा, जो प्रसन्न है, जो प्रबुद्ध है—ज्ञानमय है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

जिस मनुष्य के मार्गों को न देव जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य; जिसकी वासनाएं नष्ट होगई हैं, जो सन्त बन चुका है—मैं तो उसी को ब्राह्मण कहता हूं।

वह व्यक्ति जिस के लिये यहां कुछ भी नहीं है जिसके लिये न किसी चीज़ का प्रारम्भ है, न मध्य है और न अन्त है; जिसके पास कुछ भी नहीं; जो किसी चीज़ से आकर्षित नहीं होता—मेरी राय में वही ब्राह्मण है।

वह, जो बैल की तरह निर्भीक है, जो सुप्रसिद्ध है, जो वीर है, जो महर्षि है, जो इच्छारहित है, पवित्र है, प्रबुद्ध है, मेरी राय में वही ब्राह्मण है।

वह व्यक्ति जो अपने पूर्वजन्मों को जानता है जिसे स्वर्ग और नरक दोनों का साक्षात्कार होगया है, वह जो पूर्वजन्म के बन्धन की अन्तिम सीमा पर पहुंच गया है—मेरी राय में ब्राह्मण है।

क्योंकि इस संसार में "नाम" और "परिवार" से जो कुछ ध्वनित होता है, वह केवल एक संज्ञा मात्र है। यहां वहां जो वस्तुएं किसी भी नाम से अंकित की जाती हैं, वह एक सर्व सम्मत स्वीकृति पर ही आश्रित हैं।

बहुत समय से अज्ञानियों के भाव ही स्वीकार किये चले आरहे हैं। अज्ञानी लोग हमें कहते हैं कि एक व्यक्ति अपने जन्म से ही ब्राह्मण होता है।

वास्तव में न कोई ब्राह्मण के घर में जन्म लेने से ब्राह्मण बनता है, और न कोई ब्राह्मण के घर में जन्म न लेने से अब्राह्मण होता है; अपने कामों से ही एक आदमी ब्राह्मण बन जाता है, और दूसरा अब्राह्मण।

अपने काम से ही कोई किसान है, कोई शिल्पी है, कोई व्यापारी है और कोई सेवक कहाता है। अपने कर्म से ही कोई चोर बनता है, कोई सैनिक बनता है और कोई व्यौहारिक कहाता है और कोई राजा। बुद्धिमान, जो वस्तुओं के कारण को जानता है और कर्म के परिणाम को समझता है— इस कर्म की वास्तविकता को भी जानता है।

कर्म से ही यह संसार स्थित है, कर्म से ही यह मानव जाति स्थित है। प्राणिमात्र कर्म से इस तरह निरन्तर बंधे हुए हैं जिस तरह चलती हुई गाड़ी के पहिये की धुरी का कील। (जिस तरह चलती हुई गाड़ी में उस कील का निरन्तर घूमना आवश्यक है, उसी तरह प्राणिमात्र के लिये काम करना आवश्यक है।)

तपस्या से, आत्म संयम से और समतामय जीवन से कोई व्यक्ति ब्राह्मण बनता है। ऐसे ही व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण कहा जाता है।

वह व्यक्ति, जिसे त्रयी विद्या अर्थात् वेदों का ज्ञान है, जो शान्त है, जिस ने पुनर्जन्म का नाश कर दिया है, हे वासत्य! याद रक्खो, वही वास्तव में बुद्धिमान, ब्राह्मण और शक्य है।

भागवत बुद्ध के इतना कह चुकने पर नवयुवक वासत्य और भारद्वाज ने उस से कहा—"हे पूजनीय गौतम! यह सर्व श्रेष्ठ है। जिस तरह कोई फेंकी हुई

चीज़ को उठा देता है, या छिपी हुई चीज़ को पुनः प्रकट कर देता, या ऐसे व्यक्ति को जो अशुद्ध मार्ग पर चला जा रहा हो—ठीक मार्ग बता देता है; या अन्धकार में तेल का लैम्प प्रकाशित कर देता है—जिस से जिन की आंखें है, वे वस्तुओं को देख सकें—उसी तरह हे माननीय गौतम! आप ने अनेक प्रकार से धर्म्म का प्रकाश कर दिया है। हे पूजनीय! हम दोनों को अपने 'धर्म' और अपने भिक्षु-संघ में दीक्षित करो। हम आप की शरण में आये हैं।

साभीय सत्त—"मैंने सुना है कि एक समय भागवत बुद्ध राजगृह के निकट वेलुवन[1] में रहते थे। उन्हीं दिनों साभीय नाम के एक विद्वान परिव्राजक को कुछ शंकाएं और जिज्ञासाएं थीं। उस ने निश्चय किया था कि जो कोई ब्राह्मण या श्रमण मेरे इन प्रश्नों का सन्तोष जनक उत्तर देगा उस का शिष्य बन कर मैं अपना जीवन व्यतीत कर दूंगा। यह सोच कर साभीय परिव्राजक अपने समय के बहुत से सुप्रसिद्ध ब्राह्मणों और श्रमणों—जिन के अनेक संघ और सहस्रों अनुयाई थे—के पास गया। इन में से कुछ के नाम हैं— पूर्ण कश्यप, मुक्खली गोशाल, अजित, केशकम्बली, बहुधा काच्चायन सांग्य वेलात्पुत्त और निगन्ध नाम पुत्त। साभीय के प्रश्नों का ये लोग उत्तर न देसके, इतना ही नहीं इन में से अनेक तो खिज कर साभीय पर ही अपना गुस्सा निकालने लगे। कुछ ने साभीय के प्रश्नों का उत्तर न देकर स्वयं उसी से प्रश्न करने शुरू कर दिये।

यह देख कर साभीय के दिल में यह विचार पैदा हुवा कि मैंने सब प्रसिद्ध २ श्रमण और ब्राह्मणों से अपने प्रश्न कर लिये। ये लोग देशभर में प्रसिद्ध हैं, इनके अनेकों संघ और सहस्रों चेले चपाटे हैं। ये लोग मेरे प्रश्नों का उत्तर तो दे नहीं सके उलटा मुझ ही पर अपना गुस्सा निकालने लगे; मेरे प्रति घृणा दिखाते हुए मुझ ही से प्रश्न करने लगे। अतः अब मेरे लिये यही उचित है कि मैं इस व्यर्थ के झंझट में न पडूं, और मौज में सांसारिक भोग का जीवन व्यतीत करूं।

---

१. वेलुवन का वर्णन महात्मा बुद्ध के जीवन में किया जा चुका है।

फिर साभीय के दिल में आया कि अभी मैं श्रमण गौतम के पास अपने प्रश्न लेकर नहीं गया। यह भी तो एक प्रसिद्ध श्रमण है, उसके भी तो अनेक संघ और हजारों शिष्य हैं। एक वार चल कर उस से भी अपने प्रश्न कर देखूं। वैसे पूर्ण कश्यप जैसे बड़ी बड़ी उम्र के अनन्त ख्याति वाले, पुराने और अनुभवी ब्राह्मण और श्रमणों के पास तो मैं हो ही आया हूं, और वे लोग मेरे प्रश्नों का जवाब नहीं दे सके, उल्टा मुझी पर गुस्सा करने लगे। यह श्रमण गौतम तो अभी उम्र में उन की अपेक्षा बहुत छोटा है, और अभी नया नया ही श्रमण बना है। फिर भी एक वार यह देख लेना चाहिये कि वह मेरे प्रश्न सुन कर क्या जवाब देता है।

साभीय का यह विचार क्रमशः और भी दृढ़ होगया। उसने सोचा कि केवल आयु में छोटा होने के कारण ही श्रमण गौतम यद्यपि अभी नवयुवक है तथापि वह शक्ति सम्पन्न और प्रभाव शाली है; मैं उसके पास अवश्य जाऊंगा।"

यह सोच कर परिव्राजक साभीय राजगृह की तरफ चल पड़ा। नियत समय की मात्रा के बाद वह वेलुवन पहुंचा। भागवत बुद्ध ने उस से बड़ी प्रसन्नता से बातें की। इधर उधर की बातों के बाद, अवसर देख कर साभीय ने कहना शुरू किया—

"मैं बड़ी सन्देह युक्त और जिज्ञासु की दशा में आप के पास आया हूं बहुत दिनों से मेरी कुछ शंकाएं हैं। क्या आप उन सन्देहों को दूर करने की कृपा करेंगे?"

भगवत ने कहा—हे साभीय! तुम बहुत दूर से चलकर मेरे पास आये हो। अपने प्रश्न मेरे सामने रक्खो। मैं अवश्य उन का समुचित उत्तर दूंगा और तुम्हारी सन्देहावस्था को दूर करूंगा।"

यह सुन कर साभीय के हृदय में आया कि अन्य सम्पूर्ण ब्राह्मणों और श्रमणों की अपेक्षा गौतम ने मेरे साथ बहुत ही भद्रता और सहानुभूति का व्यवहार किया हैं। यह देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा—

"मनुष्य को क्या चीज़ प्राप्त कर लेनी चाहिये, जिस के बाद उसे 'भिक्षु' कहा जा सके। किसी को दयालु या नम्र कब कहा जा सकता है?"

भगवत ने कहा—"हे साभीय ! जो व्यक्ति अपने बनाए हुए मार्ग द्वारा पूर्ण प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है, जो सन्देहों का जय कर लेता है, जो अपने सौभाग्य और अभाग्य-दोनों को 'अहं' से पृथक् कर के भी जीवित रहता है, जिस ने पुनर्जन्म को नष्ट कर दिया है— वह भिक्षु है ।

"वह श्रमण जो पूर्ण त्यागी और ध्यानस्थ है; जो संसार भर में कभी किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाता, जिस ने सत्ता की धारा को पार कर लिया है, जो स्वयं भी कभी पीड़ित नहीं होता, जिस के लिये कुछ भी स्पृहणीय नहीं रहा—वह दयालु है ।

"वह, जिसकी संसार भर के सम्बन्ध की आन्तरिक और बाह्य भावनाएं नियन्त्रित हो चुकी हैं; जो स्वयं पीड़ित होकर इस तथा दूसरे लोकों को भेद कर के मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है—वह नम्र है ।

"जो कोई काल का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है, नष्ट होने और पुनः प्रकट होने को नष्ट कर देता है, जिसे गन्दा नहीं किया जा सकता, जो पाप रहित है, जिसने पुनर्जन्म के बन्धन को तोड़ डाला है—उसे वे बुद्ध कहते हैं ।"

भगवत के उत्तरों को सुन कर साभीय बहुत प्रसन्न और आल्हादित हुआ । इन उत्तरों से पूर्ण सन्तुष्ट होकर उसने निम्नलिखित प्रश्न किये हैं ।"

मनुष्य के कर लेने बाद लोगों को उसे 'ब्राह्मण' कहना चाहिये, उसे श्रमण कब कहा जायगा ? वह न्हातक (स्नातक) कैसे कहलाता है ?"
हे भागवत् ! मुझे बताओ— लोग उसे नाम कब कहेंगे ।

बुद्ध ने कहा—"हे साभीय ! वह जिसने सब पापों का नाश कर दिया है; जो निष्कलंक है, स्थितप्रज्ञ है, दृढ़ संकल्प है, संसार यात्रा को पार करके पूर्ण बन गया है, स्वाधीन है— उसे ब्राह्मण कहा जाता है ।

"जो शान्त है, अच्छे और बुरे दोनों से रहित है, जिसे कलंकित नहीं किया जा सकता, जिस ने इस और दूसरे संसार को समझ लिया है, जन्म और मृत्यु को जीत लिया है—ऐसा व्यक्ति श्रमण कहलाता है ।

"जिस ने अपने आन्तरिक और बाह्य पापों को धो डाला है, मनुष्य और देव जिस काल के अधीन हैं वह काल जिसे अधीन नहीं कर सकता— वह स्नातक कहा जाता है।

"जो जगत में कोई पाप नहीं करता, जिस ने अपने सम्पूर्ण बन्धनों और पाशों का भेद कर दिया है, जो किसी के प्रति आसक्त नहीं, स्वाधीन है, वह व्यक्ति नाग (पाप रहित) कहलाता है।"

भगवत के उत्तरों से पूर्ण सन्तुष्ट होकर साभीय ने पुनः पूछा—"खेन-जित (क्षेत्रज्ञ) कौन कहाता है ? कौन 'कुशल' है ? मनुष्य 'पण्डित' कैसे बनता है; उसे 'मुनि' कब कहा जायगा ?"

बुद्ध ने कहा—"हे साभीय ! जो व्यक्ति देव लोक, मनुष्य लोक, और ब्रह्म लोक—इन तीनों लोकों की पूर्ण परीक्षा करके इन के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है— ऐसे व्यक्ति को खेतजित (क्षेत्रज्ञ) कहा जाता है।

जो व्यक्ति देव, मनुष्य और ब्रह्म इन तीनों कोशों की पूर्ण परीक्षा कर के इन के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है—वह कुशल कहलाता है।

"जो व्यक्ति आन्तरिक और बाह्य चेतनाओं की पूर्ण परीक्षा कर के निष्कल बुद्धि को प्राप्त कर लेता है, अच्छे और बुरे का विजय कर लेता है—वह पण्डित है।

"जो ठीक और अशुद्ध धम्म (धर्म) का आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों में साक्षात् कर लेता है, जो मनुष्य और देव— दोनों के लिये पूजनीय बन जाता है; जो बन्धनों के जाल को तोड़ देता है—वह मुनि है।

परिव्राजक साभीय ने बहुत अधिक प्रसन्न होकर फिर पूछा— "मनुष्य 'वेदगु' (वेदज्ञ) किस दशा में कहलाये जाने योग्य होता है ? वह 'अनुविदित' कब बनता है ? 'वीर्यवत्' कब होता है ? वह 'प्रजानीय' कैसे कहलाता है ?

बुद्ध ने कहा—"हे साभीय ! जो व्यक्ति श्रमण और ब्राह्मणों से ज्ञात सम्पूर्ण अनुभूतियों का विजय कर लेता है, जो काम और अनुभूति से आज़ाद है, वह वेदज्ञ कहे जाने योग्य है।

"जो व्यक्ति नाम और रूप के भ्रम मय जालों को-जो आन्तरिक और बाह्य बीमारी के कारण हैं—जान लेता है, जो रोग के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो गया है—ऐसा व्यक्ति अनुविदित कहाता है ।

"जो व्यक्ति इस संसार के सम्पूर्ण पापों से खिन्न हो गया है, जो नरक की पीड़ा का जय कर के बली बन गया है, जो शक्तिशाली और बली है—वह धीर या वीर्यवत् है ।

"जिस के आन्तरिक और बाह्य बन्धन कट गये हैं, जिस के बन्धनों की जड़ जाती रही है, जिस ने बन्धनों का सर्वथा समूल नाश कर दिया है—वह अजानीय है ।"

साभीय ने पुनः पूछा—"हे भगवत! सोत्तिय (श्रोतृय), आरिय (आर्य) करणवत, और परिव्याजक (परिव्राजक) बनने के लिये क्या क्या बातें आवश्यक हैं ?"

बुद्ध ने कहा—"जो कोई व्यक्ति इस संसार के पूर्ण धर्मों का अध्ययन कर के बुराई क्या है और बुरेपन से रहित क्या है—यह समझ जाता है, जो विजयी है, सन्देह रहित है, आज़ाद है, सब तरह के कष्टों से बचा हुआ है—वह श्रोतृय कहलाता है ।

"जिस व्यक्ति ने अपनी इच्छाओं और वासनाओं को नष्ट कर दिया है, जो बुद्धिमान है और पुनः गर्भ में प्रवेश नहीं करता, जिस ने त्रिगुणात्मक चिन्ह को अपने से पृथक कर दिया है, लोभ के कीचड़ को धो दिया है, जो पुनः काल के बन्धन में नहीं पड़ता— वह आर्य है ।

"जिस ने इस संसार के कारणों को जान लिया है, जो चतुर है, सर्वत्र धम्म को समझे रहता है, किसी के प्रति आसक्त नहीं होता, आज़ाद है; जिस के लिये यहां कोई वासना नहीं—वह करणवत् है ।

'जिस ने ऐसे सम्पूर्ण कार्यों का त्याग कर दिया है, जिन का परिणाम दुख है, जो ऊपर, नीचे, इधर उधर, और मध्य में पूर्ण सूझ के साथ घूमता है, जिसने धोका, अधिकार लोलुपता काम, क्रोध और नाम, रूप का पूर्ण अन्त कर दिया है, जिस ने उच्चतम लाभ प्राप्त कर लिया है वह परिव्राजक कहलाता है ।"

भगवत के ये सम्पूर्ण उत्तर सुन कर परिव्राजक साभीय बहुत अधिक अल्हादित और पूर्ण सन्तुष्ट हुआ। वह अपने स्थान पर खड़ा हो गया, उस ने अपना उतरीय एक कन्धे पर डाल लिया और हाथ जोड़ कर बुद्ध के सन्मुख इन उचित वाक्यों में उनकी स्तुति करने लगा—

"श्रमणों के लिये विवादग्रस्त ६३ दार्शनिक विचारों को पूर्ण विजय कर के तुमने संसार-धारा को पार कर लिया है।

"तूने दुख के अन्त को पार कर लिया है, तू महात्मा है, पूर्ण बुद्ध है, मैं तुझे वह व्यक्ति समझता हूं जिसने वासनाओं को नष्ट कर दिया है, महिमामय है, विचार पूर्ण है, बड़ी बूझ वाला है। हे दुखातीत महात्मा! तूने मुझे भी संसार सागर के पार कर दिया।

"तूने मेरी अभिलाषा को समझा और मुझे सन्देह रहित कर दिया, हे मुनि! तूने ज्ञान का सर्वोतम लाभ प्राप्त कर लिया है, तू दयालू है। तेरे लिये यहां कोई बाधा नहीं। तूने दुखों का छेद कर दिया है, तू शान्त, नम्र, दृढ़ और सत्यमय है। सब देवता तुझ पर प्रसन्न हैं। हे भद्र पुरुष! तेरी जय हो। हे सर्व-श्रेष्ठ पुरुष! संसार में तेरे समान कोई अन्य व्यक्ति नहीं। तू बुद्ध है, तू स्वामी है, तू मुनि है, तूने मार (काम) का विजय कर लिया है, जन्म बन्धन को तूने पार कर लिया है। तूने उपाधि पर विजय प्राप्त कर ली है, वासनाओं को मार दिया है, तू एक शेर है, तू कामना रहित है, तेरे लिए भय की सता नहीं रही। पानी में एक सुन्दर कमल फूल की तरह तेरी सत्ता है, तू बुरे या अच्छे दोनों के प्रति आकृष्ट नहीं होता। हे वीर! तू अपना पैर आगे बढ़ा। साभीय तेरी पूजा करना चाहता है।"

तब साभीय ने भगवत के पैरों पर सिर रख कर कहा—हे पूजनीय! यह ठीक है। जिस तरह कोई फैंकी हुई चीज को उठा देता है, या किसी छिपी हुई चीज को पुनः प्रकट कर देता है, या किसी ऐसे व्यक्ति को जो अशुद्ध मार्ग पर चलता जा रहा हो—ठीक मार्ग बता देता है, या अन्धकार में तेल का लैम्प प्रकाशित कर देता है—जिस से जिन की आंखें हैं वे वस्तुओं को देख सकें उसी

तरह से हे माननीय गौतम ! आप ने अनेक प्रकार से धर्म का प्रकाश कर दिया है । हे पूजनीय ! मुझे अपने धर्म और भिक्षु संघ में दीक्षित करो । मैं भगवत से पोशक और आदेश प्राप्त करना चाहता हूं ।"

बुद्ध ने कहा—"हे साभीय ! जो व्यक्ति पहले किसी दूसरे पन्थ का अनुयाई रहा हो और इस 'धम्म विनय' को स्वीकार कर के इस की पोशाक और आदेशों को प्राप्त करना चाहता हो उसे चार महीनों तक सेवा करनी होती है । चार महीनों के बाद भिक्षु लोग अपने विचारों को सन्तुष्ट करके उसे भिक्षु बनने की पोशाक और आदेश देते हैं । इस सम्बन्ध में मैं स्वयं व्यक्तियों का भेद स्वीकार करता हूं ।"

साभीय ने नम्रता से कहा— दूसरे मतों से आप के धम्म-विनय को स्वीकार करने वालों के लिये यदि ४ मास तक सेवा करने का नियम है तो मैं ४ वर्षों तक सेवा करने को तैयार हूं । ४ वर्षों के बाद भिक्षु लोग अपने विचारों को सन्तुष्ट करके मुझे भी भिक्षुओं की पोशाक और अनुशासन दें ।"

भागवत ने साभीय को स्वयं भिक्षुओं की पोशाक देदी । पीछे से पूजनीय साभीय उप सामया को प्राप्त कर के एकान्त, वैराग्य पूर्ण, उदय शील, सत्यमय तथा शक्ति शाली जीवन व्यतीत करने लगा । थोड़े ही समय के बाद उसने धर्म का वह पूर्ण रूप प्राप्त कर लिया जिस के लिये अच्छे परिवारों के व्यक्ति अपने घरों से गृहरहित दशा को स्वीकार कर लेते हैं । एक दिन पूजनीय साभीय ने अनुभव किया कि "जन्म बन्धन नष्ट होगया है, धार्मिक जीवन व्यतीत हुवा है, जो कुछ करने योग्य था, वह कर लिया गया है । इस सत्ता के लिये अब कोई भी इति-कर्तव्यता बाकी नहीं रही ।"—और वह सचमुच एक महात्मा बन गया ।

चुलवग्ग पृ० ४६—

छठा अध्याय

आजीवक सम्प्रदाय

भारतीय इतिहास में महात्मा बुद्ध का समय एक महत्वपूर्ण धार्मिक सुधारणा का काल है। इस समय में अनेक नवीन धार्मिक सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध और जैन धर्मों के नाम तो सब लोग जानते हैं, पर आजीवक सम्प्रदाय के विषय में बहुत कम लोगों को परिचय है। कारण यह है कि आजीवक सम्प्रदाय का इस समय में सर्वथा लोप हो चुका है। भारतवर्ष या अन्य किसी देश में कोई भी ऐसे लोग नहीं हैं, जो इस सम्प्रदाय के अनुगामी हों। इस का कोई मान्य धार्मिक ग्रन्थ भी वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं होता है। इस दशा में इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकना तो सम्भव नहीं रहा है। पर बौद्ध और जैन साहित्य से न केवल इस की सत्ता सूचित होती है, अपितु इस के प्रवर्त्तक तथा विविध सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें भी ज्ञात होती हैं। आजीवक सम्प्रदाय की सत्ता तो अनेक शिलालेखों द्वारा भी सूचित होती है। प्रसिद्ध मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा 'बराबर' पहाड़ी की गुफाओं में उत्कीर्ण कराये गये लेखों में आजीवकों को दिये गये दान का उल्लेख है—

"राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद यह न्यग्रोध गुहा आजीवकों को दी।"

"राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद खलतिक पर्वत पर यह गुहा आजीवकों को दी।"

"राजा प्रियदर्शी ने राज्याभिषेक के उन्नीस वर्ष बाद खलतिक पर्वत पर यह गुहा आजीवकों को दी।"

गया के पास 'बराबर' पहाड़ी की गुफाओं में उत्कीर्ण कराये गये इन लेखों से सूचित होता है, कि सम्राट् अशोक के समय में आजीवक सम्प्रदाय अच्छा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका था, इसी लिये अशोक की दान शीलता से लाभ उठाने का अवसर आजीवक भिक्षुओं को भी प्राप्त हुआ था। अशोक के पौत्र सम्राट् दशरथ ने भी गया के समीप नागार्जुनी पहाड़ियों में अनेक गुफायें आजीवक सम्प्रदाय के भिक्षुओं को दान की थीं और इस दान का उल्लेख करने वाले शिलालेख अब तक उपलब्ध होते हैं। सम्राट् अशोक ने विविध धार्मिक सम्प्रदायों में अविरोध उत्पन्न करने तथा धर्म के वास्तविक तत्त्व पर जोर देने के लिये जो 'धर्म महामात्र' नियत किये थे, उनको बौद्ध, ब्राह्मण तथा निर्ग्रन्थ (जैन) सम्प्रदायों के मामलों पर दृष्टि रखने का जहां आदेश किया गया है, वहां इन सुप्रसिद्ध सम्प्रदायों के साथ में ही आजीवक-सम्प्रदाय को भी गिना गया है; (स्तम्भ लेख सं० ७)। इस बात से यह भली भांति समझा जा सकता है कि आजीवक सम्प्रदाय प्राचीन समय में कितना महत्व प्राप्त कर चुका है। बौद्ध ग्रन्थ सुत्तपिटक के 'निद्देश' में जहां अन्य विविध सम्प्रदायों का परिगणन किया गया है, वहां आजीवक सम्प्रदाय को सब से प्रथम स्थान दिया गया है। यह बात भी आजीवक सम्प्रदाय के प्राचीन महत्व को सूचित करती है। मौर्य काल के बाद तेरहवीं शताब्दि तक हमें आजीवक सम्प्रदाय की सत्ता के प्रमाण मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे धीरे यह धर्म नष्ट होता गया और हिन्दू व जैन धर्म में विलीन हो गया। महात्मा बुद्ध के समय में भारतवर्ष में जो महत्वपूर्ण धार्मिक सुधारणा चल रही थी, उस पर अच्छी तरह प्रकाश डालने के लिये यह आवश्यक है, कि इस आजीवक सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भी कुछ परिचय दिया जावे।

मंक्खलिपुत्त गोसाल—आजीविक साम्राज्य का प्रवर्त्तक मंक्खलिपुत्त गोसाल था। गोसाल के वैयक्तिक जीवन के सम्बन्ध में हमें जो कुछ ज्ञात होता हैं, उसका आधार उसके विरोधी सम्प्रदायों के ग्रन्थ ही हैं। साम्प्रदायिक क्षेत्र में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि लोग अपने धर्म के प्रवर्त्तक को मनुष्य-कोटि से उठा कर अलौकिक देवता बना देने का प्रयत्न करते हैं और अपने से विरोधी

धर्म के प्रवर्त्तक की निन्दा करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करते। इस लिये जब जैन व बौद्ध ग्रन्थों से हमें गोसाल के वैयक्तिक जीवन अथवा उसके मन्तव्यों के सम्बन्ध में परिज्ञान प्राप्त करना हो, तो हमें बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये। जैन धार्मिक साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवती सूत्र में गोसाल के जीवन चरित्र का विस्तार से वर्णन मिलता है। उसके अनुसार गोसाल का पिता एक मंख था। मंख उस समय में भिखारी को कहते थे। गोसाल के पिता का अपना नाम मंक्खलि था। इसीलिये गोसाल को मंक्खलि-पुत्त कहते थे। मंक्खलि अपनी धर्मपत्नी सहित इधर उधर भीख मांगता फिरता था और जहां भी सांझ हो गई वहीं ठहर कर रात काट देता था। एक बार रात के समय वह किसी गोशाला में ठहरे गया। वहीं उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चल कर आजीवक सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक बना। गोशाला में उत्पन्न होने के कारण उसका नाम गोसाल पड़ा। बड़ा होकर गोसाल भी अपने पिता के समान भिक्षा मांगने लगा और भीख मांगने के लिये इधर उधर फिरते हुवे वह जैन धर्म के संस्थापक प्रसिद्ध महात्मा वर्धमान महावीर के संसर्ग में आया। महावीर ने भी इसी समय भिक्षु बन कर घूमना फिरना प्रारम्भ किया था। लोगों में महावीर की बहुत प्रतिष्ठा थी। लोग उसे बहुत मानते थे। गोसाल ने जब उसकी कीर्ति सुनी, तो उसके साथ रहने लगा और उसका शिष्य बन गया। पर महावीर और गोसाल— दोनों अपनी तबीयत, और स्वभाव, आचार विचार तथा चरित्र में एक दूसरे से इतने अधिक भिन्न थे कि ६ साल के बाद उनका साथीपन टूट गया और गोसाल ने महावीर से अलग होकर अपने पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना की, जो आगे चल कर 'आजीवक' नाम से विख्यात हुआ। गोसाल ने अपना निवास स्थान सावत्थी (श्रावस्ती) नगरी के बाहर एक कुम्भकार स्त्री के गृह को निश्चित किया और वहीं पर अपने शिष्यों के साथ निवास करने लगा। धीरे धीरे श्रावस्ती में गोसाल का प्रभाव बहुत बढ़ गया। लोग बड़ी संख्या में उसके शिष्य तथा भक्त बन गये। आस पास सर्वत्र उसका सिक्का माना जाने लगा। सोलह वर्ष बाद वर्धमान महावीर विचरण करते हुवे श्रावस्ती पहुंचे। वहां उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका

पुराना शिष्य गोसाल एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना कर अपने प्रभाव का विस्तार कर रहा है और श्रावस्ती के निवासी उसके बड़े भक्त हैं । वर्धमान महावीर गोसाल के दुश्चरित्र तथा विचारों से भलीभांति परिचित थे । उन्होंने उस पर आक्षेप करने प्रारम्भ किये । परिणाम यह हुआ कि दोनों आचार्यों में परस्पर शास्त्रार्थ हुवे । गोसाल ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि मैं आपका पुराना शिष्य गोसाल नहीं हूं । पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सका । महावीर के आक्षेपों तथा युक्तियों के सम्मुख उस की एक न चली । आखिर उसके शिष्य शास्त्र व तर्कना एक तरफ रख शस्त्रों पर उतर आये । दोनों सम्प्रदायों में संघर्ष हुआ । महावीर के दो शिष्य घायल भी होगये । पर इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि गोसाल बदनाम होगया । श्रावस्ती के निवासी उसकी वास्तविकता को समझ गये । उन्होंने गोसाल की भक्ति छोड़ महावीर का अनुसरण प्रारम्भ किया । गोसाल का अन्तिम जीवन बहुत दुरवस्था में व्यतीत हुआ । ऐसा प्रतीत होता है, कि महावीर द्वारा परास्त तथा अपमानित होकर उसका दिमाग़ कुछ खराब होगया था । साधु को किस प्रकार से जीवन व्यतीत करना चाहिये, इस बात का जरा भी ख्याल न कर वह नाचने, गाने, शराब पीने तथा अपनी आश्रय-दायिनी कुम्हार स्त्री से अनाचार करने में ही अपने जीवन को खराब करने लग गया था । छः मास तक वह इसी प्रकार रहता रहा । अन्त में, उसे फिर सुध आई । उसने अपनी गल्ती को अनुभव किया और यह उद्घोषित किया कि महावीर जो कहता है, ठीक है ।

गोसाल के सम्बन्ध में भगवती सूत्र का यह विवरण कहां तक सत्य तथा प्रामाणिक है— यह निर्णय कर सकना बहुत कठिन है । इतना तो निश्चित है कि यह एक विरोधी सम्प्रदाय के लेखक द्वारा लिखा गया है और इस में स्वाभाविक रूप से गोसाल को तुच्छ तथा महावीर को महान प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है । पर गोसाल के जीवन के सम्बन्ध में अन्य कोई प्रामाणिक आधार प्राप्त होने तक इस से भी हम उसके विषय में कुछ न कुछ परिचय अवश्य प्राप्त कर सकते हैं ।

गोसाल के धार्मिक सिद्धान्त—आजीवक सम्प्रदाय का अपना कोई ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हो सका है, इसलिये इस महत्व पूर्ण सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में भी हमें इस के विरोधी धर्मों के ग्रन्थों पर आश्रित होना पड़ता है। "मज्झिम निकाय" में महात्मा बुद्ध ने अपने से भिन्न सम्प्रदायों को आठ भागों में विभक्त किया है। इन आठ विभागों में से चार को उसने 'अनस्सासिक' व असन्तोषजनक कहा है और शेष चार को 'अब्रह्मचर्यवास' व 'जो लोग ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले हों। अनस्सासिक सम्प्रदायों में उसने जैन लोगों को गिना है और 'अब्रह्मचर्यवास' सम्प्रदायों में आजीवकों को। महात्मा बुद्ध आजीवक सम्प्रदाय को नैतिक दृष्टि से हेय समझते थे। जैन धर्म का विरोध उन्होंने इस आधार पर किया है, कि उन के सिद्धान्त असन्तोषजनक हैं पर आजीवकों को वह नैतिक दृष्टि से पतित समझते थे। गोसाल के अपने जीवन को भी महात्मा बुद्ध ने नीची दृष्टि से देखा है और उस के विषय में लिखा है कि जिस प्रकार मछियारा मछलियों को लोभ में फंसाकर नष्ट कर देता है, इसी प्रकार गोसाल मनुष्यों को अपनी तरफ आसक्त कर उन्हें नष्ट कर रहा है।

गोसाल के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'उवासगदसाओ' में इस प्रकार प्रकाश डाला है— "हे कुण्डकोलिया ! मंखलिपुत्त गोसाल का सिद्धान्त बड़ा सुन्दर है, वह मानता है कि दुनिया में न उत्थान है, न कर्म है, न बल है, न वीर्य है, न पुरुषकार है, न पराक्रम है ; सब बातें पहले से ही नियत हैं।"[1]

उवासगदसाओ का टीकाकार इस संदर्भ को स्पष्ट करता हुआ लिखता है कि गोसाल के मतानुसार दुनिया में जो कुछ होता है, वह पहले से ही निश्चित

---

१. "हंभो कुण्डकोलिया समणोवासया, सुन्दरीणं, देवाणुप्पिया, गोसालस्स मङ्खलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती, नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार परक्कमे इ वा, नियया सव्वभावा।"
(उवासगदसाणं छट्ठं अज्झयणं १६६)

है। पुरुषकार, कर्म उत्थान आदि से कुछ नहीं बन सकता। हम देखते हैं, लोग मेहनत करते हैं, पर फिर भी कुछ फल नहीं होता। इससे यही सूचित होता है कि मनुष्य का पौरुष करना निरर्थक है। इस मत के प्रतिपादक दो श्लोक भी टीकाकार ने उद्धृत किये हैं, जो बड़े उत्तम हैं।[1]

गोसाल के इसी सिद्धान्त की बौद्ध ग्रन्थ दीघ निकाय में निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या की गई है— "वस्तुओं में जो विकार हमें दृष्टिगोचर होता है उनका कोई भी कारण नहीं है। तात्कालिक या दूरवर्ती किसी भी प्रकार के कारण के बिना वस्तुओं में विकार उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार जो वस्तुयें विकार रहित शुद्ध रूप में हैं, उनकी शुद्धता का भी कोई कारण— तात्कालिक या दूरवर्ती नहीं है। उनकी शुद्धता बिना किसी कारण के ही है। कोई भी बात मनुष्य के अपने व दूसरे के किये हुवे प्रयत्न पर आश्रित नहीं है। दुनिया में पौरुष बल वीर्य व प्रयत्न कोई सत्ता ही नहीं रखते। प्रत्येक विद्यमान सत्ता चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो— पौरुष, प्रयत्न व बल से शून्य है। विविध समयों में विविध सत्ताओं में जो भेद हमें नज़र आता है, वह भाग्य के कारण है। परिस्थिति, भाग्य तथा प्रकृति के कारण हमें भेद प्रतीत होता है।[2]"

पौरुष व मानवीय प्रयत्न का जितना प्रबल विरोध मंखलिपुत्त गोसाल ने किया है, उतना भारतीय विचारकों में अत्यन्त कठिनता से ही कहीं मिलेगा। प्रयत्न, पौरुष आदि यह विश्वास न करने का परिणाम यह था, कि गोसाल अपने जीवन को उन्नत करने के लिये कोशिश को सर्वथा निरर्थक मानता था।

---

१. प्राप्तव्यो नियति बला श्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः॥
तथा—
नहि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य तु भवितव्यता नास्ति॥

२. Dialogues of the Buddha by T. W. Rhys Davids P. 71

यह सिद्धान्त यदि क्रियात्मक जीवन में भी परिणत किया जावे तो इसका परिणाम कितना खतरनाक हो जाता है, इसकी कल्पना सुगमता से की जा सकती है। गोसाल का अपना जीवन इस बात का उत्तम उदाहरण है। बौद्ध और जैन दोनों साहित्य उसके नैतिक अधः पतन का समानरूप से वर्णन करते हैं। महात्मा बुद्ध ने तो उसके सम्प्रदाय को ही 'अब्रह्मचर्यवास' श्रेणी के अन्तर्गत किया है।[2] महावीर ने लिखा है कि गोसाल के मतानुसार 'यदि कोई भिक्षु स्त्री के साथ सहवास करे, तो उसे पाप नहीं होता।[3] महावीर ने गोसाल के अनुयायियों पर 'स्त्रियों का गुलाम' होने का दोष लगाया है। उसके अनुसार आजीविक लोग नैतिक पवित्रता का ध्यान नहीं रखते। गोसाल के जीवन के अन्तिम दिन इस बात को भली भांति स्पष्ट कर देते हैं।

जैन और आजीवक सम्प्रदायों में भेद—गोसाल प्रारम्भ में महावीर का शिष्य था। पीछे से अनेक विषयों में मतभेद होजाने से वह पृथक् होगया था और उसने अपने नवीन सम्प्रदाय का निर्माण किया था। गोसाल और महावीर बहुत समय तक एक साथ रहे थे। इसलिये अनेक मन्तव्यों में समता का होना स्वभाविक है। सृष्टि के विस्तार के सम्बन्ध में दोनों आचार्यों के मत एक से हैं। पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्तों में दोनों धर्मों में बहुत सी समतायें हैं। जैन और आजीवक धर्मों में किन विषयों में भिन्नता है, इस बात को समझने के लिये प्रसिद्ध जैन धर्म ग्रन्थ सूत्र कृतांग में वर्णित आचार्य आर्द्रक और गोसाल के परस्पर सम्वाद का उल्लेख करना बहुत उपयोगी है। आर्द्रक जैन धर्म का अनुयायी है और अपने विरोधी सम्प्रदायों के आचार्य से सम्वाद कर रहा है। इसी सम्बन्ध में गोसाल के साथ उसकी जो बात चीत हुई, उसे हम उद्धृत करते हैं:—

गोसाल—सुनो, आर्द्रक! महावीर ने क्या किया है? पहले वह अकेले फिरने वाले भिक्षु की तरह अपना जीवन व्यतीत करता था। परन्तु अब वह बहुत

---

2. Majjhima Nikaya (i, 514)

3. Jaina Sutras by H. Jacobi. Part II. P 411.

से भिक्षुओं से घिरा रहता है और उन्हें धर्म का विस्तार से उपदेश करता है। क्या महावीर के जीवन में यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? अब वह भिक्षुओं से घिरा हुआ लोगों की भीड़ के बीच में खड़ा होता है और उन्हें उपदेश देता है। पहले वह अकेला रहता था। इन दोनों प्रकार के जीवनों में भारी भेद है। या तो पहले उसका अकेले भिक्षु के रूप में रहना ठीक था या उसका वर्तमान जीवन ठीक है। दोनों ठीक किस प्रकार हो सकते हैं?

आर्द्रक—महावीर के भूत, वर्तमान व भविष्य जीवन में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। वस्तुतः वह अब भी हमेशा अकेला तथा एकान्त में रहता है, चाहे वह मनुष्यों की भीड़ से घिरा हुआ भी क्यों न रहता हो। यदि कोई श्रमण या ब्राह्मण मनुष्यों में शान्ति और सुरक्षितता की स्थापना के लिये, सब जड़ और चेतन वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर मनुष्यों में उनका उपदेश करता है, तो उससे उसके कैवल्य में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचती। धर्म का श्रवण कराना कोई पाप नहीं है, बशर्ते कि धर्म प्रचारक स्वयं धीर तथा इन्द्रियजयी हो, वह अपशब्दों का प्रयोग न करता हो, सदा सत्य तथा प्रसाद युक्त वर्णन का प्रयोग करता हो, जो व्यक्ति भिक्षुओं के महाव्रतों तथा सर्व साधारण जनता के अनुव्रतों का आदेश करता हो, जो यह बताता हो कि आश्रव क्या हैं और उनसे कैसे बचा जा सकता है, जो कर्म से बचा रहता है, मैं तो उसे ही श्रमण कहता हूं।

गोसाल— जिस प्रकार तुम्हारे धर्म के अनुसार महावीर के लिये यह कोई पाप नहीं है कि वह शिष्यमण्डली से घिरा रहे, इसी प्रकार हमारे धर्म के अनुसार भिक्षु के लिये यह भी पाप नहीं है कि वह अकेला रहता हुआ शीतल जल का उपयोग करे, अन्न भक्षण करे, उसी के लिये विशेष रूप से तैयार की हुई वस्तुओं को ग्रहण करे तथा स्त्रियों के साथ सहवास करे।

आर्द्रक—इस बात पर ध्यान दो कि जो भिक्षु शीतल जल का उपयोग करते हैं, अन्न भक्षण करते हैं, अपने लिए ही विशेष रूप से तैयार की हुई

वस्तुओं को ग्रहण करते हैं तथा स्त्रियों के साथ सहवास करते हैं, वे सर्वसाधारण गृहस्थों से किसी भी प्रकार अच्छे नहीं हैं। वे श्रमण कहा सकते हैं, तो गृहस्थ भी श्रमण हैं, क्योंकि गृहस्थ भी तो यही सब करते हैं। जो भिक्षु अन्न ग्रहण करते हैं तथा शीतल जल का प्रयोग करते हैं और जिन्होंने भिक्षा मांगना अपना पेशा बनाया हुआ है, वे अनन्त काल तक जन्म ग्रहण करते रहेंगे। वे इस जीवन को समाप्त नहीं कर सकेंगे।

गोसाल—इस प्रकार का वक्तव्य करते हुवे तुम सब विचारकों पर एक समान रूप से आक्षेप कर रहे हो।

आर्द्रक—प्रत्येक विचारक अपने सिद्धान्तों की सराहना करता है, तथा उन का प्रचार करता है। श्रमण और ब्राह्मण भी जब अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे होते हैं, तो एक दूसरे पर दोषारोप करते हैं। वे कहते हैं, सब सत्य हमारे पक्ष में है, विरोधी के पक्ष में सत्य का लेश भी नहीं। पर हम लोग ऐसा नहीं करते। हम केवल असत्य-सिद्धान्त पर ही आक्षेप करते हैं।

गोसाल— जिस प्रकार कोई व्यापारी लाभ की इच्छा से अपने माल को बाज़ार में दिखाता है और बिक्री के लिये लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है, उसी प्रकार श्रमण ज्ञानपुत्त (महावीर) भी करता है।

आर्द्रक—महावीर किसी नवीन कर्म का संचय नहीं कर रहा है। वह तो पुराणे कर्मों को नष्ट मात्र कर रहा है। व्यापारी लोग जीव हिंसा करके अपनी सम्पत्ति का संचय करते हैं। वे अपने सम्बन्धियों तक की परवाह नहीं करते हैं। वे अपने कारोबार के लिये लोगों को आकृष्ट करते हैं। सम्पत्ति की अकांक्षा तथा भोग में लिप्त हुवे व्यापारी लोग कमाई के लिये इतस्ततः परिभ्रमण करते रहते हैं। वे लोग कामुकता के वशवर्त्ती होकर मौज के पीछे भागते हैं। वे हिंसा से बचने की कोशिश नहीं करते। वे सम्पत्ति के लिये मारे मारे फिरते हैं। उनके कर्मों का यह फल होगा कि वे अनन्तकाल तक जन्म मरण के चक्र में फंसे रहेंगे। उन्हें अपने व्यापार में हमेशा मुनाफा ही होता हो—यह बात भी नहीं है। उन्हें लाभ

और हानि दोनों होते हैं। परन्तु इस के विपरीत आचार्य महावीर का जो लाभ है—उसका प्रारम्भ तो है, पर अन्त कहीं नहीं है। जो किसी जीवित प्राणी की हिंसा नहीं करता, जो भूत मात्र के प्रति दया का भाव रखता है, जो धर्म में पूर्णतया आश्रित है, जो धर्म के सत्य का सर्वत्र प्रकाश करता है, उस महान आचार्य का मुकाबला क्या तुम इन नीच व्यापारियों के साथ में करोगे ? यह तुम्हारी बेवकूफी के सिवाय और कुछ नहीं है।[1]

इस सम्वाद से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है, कि गोसाल और महावीर के अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मतभेद थे। सब से अधिक भेद इन चार बातों पर था:—

(१) शीतल जल का उपयोग करना।

(२) अन्न ग्रहण करना।

(३) अपने लिये विशेष रूप से तैयार की गई वस्तु का स्वीकार करना।

(४) स्त्रियों के साथ सहवास करना।

महावीर भिक्षुओं के लिये इन चारों बातों को परित्याज्य समझते थे। पर गोसाल के मन में भिक्षु के लिये ये निषिद्ध नहीं थी। स्त्रियों के साथ-सहवास करना अपने आप में एक बहुत गम्भीर प्रश्न है। गोसाल इस में कोई हर्ज नहीं समझता था। यही कारण है कि बुद्ध ने उसके सम्प्रदाय को 'अब्रह्मचर्यवास' कहा है और महावीर ने नैतिक दृष्टि से उसका विरोध किया है। इसके अतिरिक्त अन्य तीन बातें बहुत महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होती हैं। पर भिक्षु को अपने जीवन को जिस ढंग से व्यतीत करना चाहिये, इस बात पर विचार करने से उनका महत्व कम नहीं रह जाता। भिक्षु को कोई ऐसी चीज़ नहीं ग्रहण करनी चाहिये, जो विशेषतया उसी के लिये बनाई गई हो। उसे शीतल जल तथा अन्न का परित्याग भी उसके जीवन को तपस्यामय बनाने की दृष्टि से विहित किया गया है। गोसाल इन प्रश्नों पर महावीर से मतभेद रखता था और उस के पृथक् सम्प्रदाय बनाने में

1. Jaina Sutras by H. Jacobi part II P. 409-414

ये भी महत्वपूर्ण कारण हुवे । इन चार बातों के अतिरिक्त गोसाल का महावीर पर यह भी आक्षेप था कि उसने बाकायदा संघ का निर्माण कर लिया है, जिसमें वह मनुष्यों को उसी ढंग से फंसाता है, जिस प्रकार कि व्यापारी लोग ग्राहकों को फंसाते हैं ।

आजीवक लोगों का जीवन—गोसाल के अनुगामी आजीवक लोग अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करते थे, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय में एक बड़ा उत्तम संदर्भ प्राप्त होता है । सच्चक नाम का एक भिक्षु महात्मा बुद्ध के सम्मुख आजीवक सम्प्रदाय के लोगों का वर्णन इस प्रकार से करता है—

"वे किसी भी प्रकार का वस्त्र धारण नहीं करते । सब उत्तम आचार विचार से वे लोग परे हैं । वे अपने भोजन को हाथों पर रख कर—उसे चाटते हैं । जब उन्हें कोई भोजन के लिये बुलाता है, या प्रतीक्षा करने को कहता है, तो वे उस पर कोई ध्यान नहीं देते । वे अपने लिये कोई भोजन खास तौर पर नहीं बनाने देते ।...............यदि कोई दम्पती साथ भोजन कर रहे हों, यदि किसी स्त्री के पास छोटा बच्चा हो, यदि कोई स्त्री बच्चे को दूध पिलाती हो; तो उस से ये लोग भोजन ग्रहण नहीं करते । यदि कोई कुत्ता पास में खड़ा हो, या मक्खियां बहुत भिनभिना रही हों, तो भी ये लोग भोजन नहीं ग्रहण करते । ये लोग मांस व मच्छी का सेवन नहीं करते । मदिरा पान भी इन में त्याज्य है । इन में से बहुत से लोग केवल एक घर से भीख मांगते हैं और केवल एक मुट्ठी भोजन स्वीकार करते हैं । बहुत से लोग केवल दो घरों से भीख मांगते हैं और केवल दो मुट्ठी भोजन ग्रहण करते हैं । अनेक लोग ऐसे भी हैं, जो सात घरों से भिक्षा मांगते हैं और सात मुट्ठी भोजन स्वीकार करते हैं ।.........इनमें से अनेक लोग दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं । अनेक लोग दो दिन में एक बार; अनेक सप्ताह में एक बार और अनेक एक पक्ष में केवल एक बार भोजन करते हैं । इस प्रकार उनमें उपवास के भिन्न भिन्न प्रकार प्रचलित हैं ।"

जब सच्चक अपनी तरफ से आजीवकों के जीवन का वर्णन कर चुका, तो महात्मा बुद्ध ने उस से प्रश्न किया कि यदि आजीवक लोग सचमुच इस प्रकार से अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो वे जीते किस प्रकार से हैं ? इस पर सच्चक ने घृणा के साथ उत्तर दिया— दूसरे समयों में वे खूब मौज कर लेते हैं। अच्छा और प्रभूत भोजन खाकर उस कमी को पूरा कर लेते हैं, जो उन्हें पहले हुई होती है। बौद्ध साहित्य के इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजीवक सम्प्रदाय के भिक्षु लोग अनेक प्रकार की तपस्याओं में लगे रहते थे और अनेक नियमों के पालन में दत्तचित्त रहते थे। पर कठोर तपस्या पर ज़ोर देने वाले सम्प्रदायों में जिस कमी की प्रायः सम्भावना रहती है, वह उन में भी पाई जाती थी और वे समय समय पर अपनी लालसा को तृप्त कर लेते थे। उनके अपने सिद्धान्तों के अनुसार स्त्रियों के साथ सहवास, उत्तम भोजन तथा भोग को पाप माना ही नहीं जाता था, अतः उनमें नैतिक पतन की बहुत गुञ्जाइश रहती थी।

आजीवक सम्प्रदाय का विस्तार—बौद्ध साहित्य में स्थान स्थान पर आजीवक सम्प्रदाय तथा उसके प्रवर्तक आचार्य मंखलिपुत्त गोसाल का जिक्र आता है। विनय पिटक और मज्झिम निकाय के अनुसार जिस समय महात्मा बुद्ध ने बुद्ध पद प्राप्त किया, उसी समय उन्हें उपक नामक एक आजीवक से भेंट हुई।[1] आजीवक उपक ने बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति की बात पर विश्वास नहीं किया और बुद्ध के आध्यात्मिक अनुभवों को घृणा की दृष्टि से देखा। मज्झिम निकाय में पण्डुपुत्त नाम के एक अन्य आजीवक का जिक्र आता है, जिसे कि महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म से दीक्षित किया।[2] विनय पिटक के अनुसार जिस भिक्षु ने आचार्य कस्यप को महात्मा बुद्ध के निर्वाण की पहले पहल खबर दी, वह आजीवक सम्प्रदाय का अनुयायी था।[3] इसी प्रकार अन्यत्र भी अनेक स्थलों

1. Vinaya Pitak (in the Sacred Books of the East) xiii, 90.
2. Majjhima Nikaya i, 31
3. Vinaya Pitak (in the Sacred Books of the East) xx, 370.

पर आजीवकों का उल्लेख है। इन से यह भलीभांति सूचित होता है कि महात्मा बुद्ध के समय में इस सम्प्रदाय का भी अच्छा प्रचार था और अनेक अन्य सम्प्रदायों की भांति आजीवक सम्प्रदाय भी इस धार्मिक सुधारणा के काल में अच्छी उन्नति कर रहे थे।

बौद्ध और जैन सम्प्रदायों की तरह आजीवक सम्प्रदाय भी प्राचीन भारत वर्ष में महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है, यह बात जहां अशोक और दशरथ द्वारा आजीवक भिक्षुओं के लिये दान की गई गुफाओं से सूचित होता है, वहां एक अन्य साधन द्वारा भी इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। चीन और जापान के पुरातन विद्वानों ने जहां भारतीय दर्शनों का उल्लेख किया है, वहां षड्दर्शनों के अतिरिक्त निकेन्द्वत्र और आसीविक—इन दो दर्शनों का भी जिक्र किया है।[4] निकेन्द्वत्र 'निग्गन्थ' या 'निर्ग्रन्थ' दर्शन के लिये है। और आसीविक आजीवक दर्शन के लिए। चीन और जापान के पुरातन ग्रन्थों में आजीवक सम्प्रदाय का जिक्र होना सूचित करता है, कि किसी समय भारतवर्ष में यह सम्प्रदाय अच्छा विस्तृत हो चुका था और लोग इसे बहुत महत्व देते थे।

महात्मा बुद्ध के समय में भारतवर्ष में जो महान् धार्मिक सुधारणा चल रही थी, उसमें अनेक प्रकार के सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ था। आजीवक सम्प्रदाय उनमें से एक 'प्रकार' को सूचित करता है। प्राचीन भारत के बार्हस्पत्य चार्वाक तथा प्राचीन ग्रीस के 'एपिक्यूरियन' सम्प्रदाय भी इसी 'प्रकार' के थे। बौद्ध काल में भी मंखलिपुत्त गोसाल के अतिरिक्त अन्य भी अनेक आचार्य हुवे, जो कि गोसाल के से ही विचार रखते थे और जिन्होंने कि उसी ढंग के सम्प्रदायों की भी स्थापना की थी। इन में किस्स संकिच्छ तथा नन्द वच्छ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

---

4. Hindu Logic as prescribed in China and Japan by Sadajiro Sugiura (Introduction, P. 16)

——:o:——

सातवाँ अध्याय

जैन धर्म का प्रादुर्भाव

महात्मा बुद्ध के समय में भारत वर्ष में जो महान् धार्मिक सुधरणा हो रही थी, उस में जैन धर्म का विकास अत्यन्त महत्त्व पूर्ण स्थान रखता है। आजीवक सम्प्रदाय की तरह जैन धर्म इस समय संसार से नष्ट नहीं होगया है। भारतवर्ष में उसका अनुसरण करने वाले लाखों महानुभाव अब तक विराजमान हैं। पुराणे समयों में जैन धर्म का प्रचार बहुत अधिक रह चुका है। बहुत से बड़े बड़े सम्राट् इसके अनुयायी थे। अनेकों ने अपनी राजनीतिक शक्ति तक का प्रयोग इसके प्रचार के लिये किया था। जैन धर्म के विशाल मन्दिर इसके प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाने के लिये काफ़ी हैं। इस सम्प्रदाय के साथ सम्बन्ध रखने वाले हज़ारों ग्रन्थ तथा हज़ारों शिल लेख इस समय में उपलब्ध होते हैं। इन सब के अध्ययन से हम जैन धर्म के प्रारम्भिक इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कुछ परिज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जैन लोगों के अनुसार उनके धर्म का प्रारम्भ बौद्धकाल में महावीर स्वामी द्वारा नहीं किया गया था। वे अपने धर्म को सृष्टि की तरह अनादि मानते हैं। उनके मतानुसार समय-समय पर विविध तीर्थङ्कर आकर उनके धर्म का सुधार करते हैं, और जनता को अपने उपदेशामृत से तृप्त करते हैं। महावीर स्वामी जैन धर्म का अन्तिम तीर्थङ्कर हुआ है। उससे पहले २३ तीर्थङ्कर और हो चुके थे। पहला तीर्थङ्कर राजा ऋषभ था। यह जम्बुद्वीप का प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् था और वृद्धावस्था में अपने लड़के भरत को राज्य देकर तीर्थङ्कर बन गया था। जैन लोगों के अनुसार इसकी ऊंचाई दो मील थी और यह करोड़ों वर्ष तक जीवित रहा था। शुरू शुरू में लोगों का आकार तथा आयु अत्यन्त विशाल

होते थे। आगे चल कर निरन्तर क्षीणता आती गई। यहां सब तीर्थङ्करों का उल्लेख करना व्यर्थ है। यद्यपि जैन ग्रन्थों में उनके सम्बन्ध में बहुत सी कथायें उल्लिखित हैं, तथापि ऐतिहासिक दृष्टि से उनका कोई विशेष लाभ नहीं है।[१] तेईसवां तीर्थङ्कर पार्श्व था। इसके सम्बन्ध में कुछ महत्व पूर्ण बातें निर्दिष्ट करनी आवश्यक हैं, क्योंकि इसके अनुयायी महात्मा बुद्ध के समय की धार्मिक सुधारणा में विद्यमान थे और जैन धर्म के विकास में तीर्थङ्कर पार्श्व का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

तीर्थङ्कर पार्श्व—महावीर स्वामी के प्रादुर्भाव से २५० वर्ष पूर्व तीर्थङ्कर पार्श्व का समय है। वह बनारस के राजा अश्वसेन का पुत्र था। उसका प्रारम्भिक जीवन एक राजकुमार के रूप में व्यतीत हुआ। युवावस्था में उसका विवाह कुशस्थल देश की राजकुमारी प्रभावती के साथ में हुआ। तीस वर्ष की आयु में राजा पार्श्वनाथ को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने राजपाट छोड़ कर तापस का जीवन स्वीकृत किया। ८३ दिन तक वह घोर तपस्या करता रहा। घोर तपस्या के अनन्तर ८४ वें दिन उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और पार्श्वनाथ ने अपने ज्ञान का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उसकी माता और धर्मपत्नी सब से पहले उसके धर्म में दीक्षित हुवे। ७० वर्ष तक पार्श्वनाथ निरन्तर अपने धर्म का प्रचार करता रहा। अन्त में पूरे १०० साल की आयु में एक पर्वत की चोटी पर जो कि अब पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है, उसने मोक्ष पद को प्राप्त किया। पार्श्वनाथ के जीवन की ये ही थोड़ी सी बातें हैं, जो जैन ग्रन्थों के अनुशीलन से एकत्रित की जा सकती हैं।

---

१. जैन तीर्थङ्करों के नाम निम्नलिखित हैं:—

(१) ऋषभ (२) अजित (३) सम्भव (४) अभिनन्दन (५) सुमति (६) पद्मप्रभ (७) सुपार्श्व (८) चन्द्रप्रभ (९) सुविधि (१०) शीतल (११) श्रेयांस (१२) वासुपूज्य (१३) विमल (१४) अनन्त (१५) धर्म (१६) शान्ति (१७) कुन्थ (१८) अर (१९) मल्लि (२०) मुनिसुव्रत (२१) नमि (२२) नेमि (२३) पार्श्व (२४) महावीर स्वामी

तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी बौद्धकाल की धार्मिक सुधारणा में विद्यमान थे। उसकी तथा महावीर स्वामी की शिक्षाओं में क्या भेद था, इसका परिचय जैन धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ उत्तराध्ययन सूत्र के एक सम्वाद द्वारा प्राप्त हो सकता है। हम इस सम्वाद को यहां उद्धृत करते हैं—

पार्श्वनाथ का एक शिष्य था, जिस का नाम था केशी। इसी प्रकार महावीर स्वामी का एक शिष्य था, जिस का नाम था गौतम। दोनों अपने अपने गुरू की शिक्षाओं के पूर्ण विद्वान पण्डित थे, और सैंकड़ों शिष्यों के साथ परिभ्रमण करते हुए श्रावस्ती नगरी में आये हुये थे।

"दोनों आचार्यों के शिष्य, जो कि विविध तप तथा गुणों से सम्पन्न थे इस प्रकार विचार करने लगे— क्या हमारा धर्म सत्य है या दूसरे आचार्य का? क्या हमारे आचार विचार और सिद्धान्त सत्य हैं या दूसरे आचार्य के? तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने जिस धर्म का उपदेश दिया था, जिस में कि चार व्रत लेने होते हैं, वह सत्य है या वर्धमान महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्म जिस में कि पांच व्रत लेने होते हैं?

क्या वह धर्म सत्य है, जिस में कि भिक्षु के लिये वस्त्रों का सर्वथा निषेध है, या वह धर्म सत्य है जिसमें कि निचले और उपरले दोनों वस्त्रों का विधान है? जब दोनों आचार्यों का एक ही उद्देश्य था, तो उन में मतभेद क्यों है?

अपने शिष्यों के विचारों का पता लगने पर केशी और गौतम दोनों ने परस्पर भेंट करने का निश्चय किया।"

गौतम अपने शिष्यों के साथ तिन्दुक उद्यान में (जहां केशी ठहरा हुआ था) गया और केशी ने उसका बड़े आदर के साथ स्वागत किया। दोनों आचार्य पास पास बैठ गये। उत्सुकतावश बहुत से नास्तिक तथा सर्वसाधारण लोग भी वहां एकत्रित हो गये।

"केशी ने गौतम से कहा—'भगवन् ! मैं आप से कुछ पूछना चाहता हूं ।' केशी के इन शब्दों का उत्तर गौतम ने इस प्रकार दिया—श्रीमन्, आप जो चाहें, पूछिये ।' तब गौतम की अनुमति से केशी ने इस प्रकार कहा—

'तीर्थङ्कर पार्श्व ने जिस धर्म का उपदेश दिया था, उस में केवल चार व्रत हैं पर वर्धमान द्वारा उपदिष्ट धर्म में पांच व्रत हैं । जब दोनों धर्मों का उद्देश्य एक ही है, तो उन में भेद का क्या कारण है ? हे भगवन् ! आपका इस मामले में क्या विचार है ?

केशी के इन शब्दों का गौतम ने इस प्रकार उत्तर दिया—'प्रारम्भ में जो भिक्षु लोग थे, वे सीधे साधे तथा सामान्य बुद्धि के होते थे । अब के भिक्षु सामान्य बुद्धि के तथा सत्य से बचने की प्रवृत्ति रखते हैं । पर बीच के भिक्षु ऐसे नहीं थे । वे बहुत सीधे तथा बुद्धिमान थे । धर्म में भेद का यही कारण है । प्रारम्भ के भिक्षु धर्म के सिद्धान्तों को कठिनता से समझ सकते थे । अब के भिक्षु धर्म का पालन बड़ी कठिनता से करते हैं । पर बीच के भिक्षु धर्म को समझते भी सुगमता से थे और उस का पालन भी आसानी से करते थे ।'

'गौतम ! तुम बुद्धिमान हो, तुमने मेरे सन्देह को निवृत्त कर दिया है । पर मुझे एक अन्य सन्देह है, जिसे तुम्हें दूर करना चाहिये । वर्धमान महावीर ने जिस धर्म का उपदेश किया है, उसके अनुसार वस्त्रधारण निषिद्ध है, पर पार्श्व के धर्मानुसार निचले तथा उपरले वस्त्र का विधान किया गया है, जब कि दोनों के धर्मों का उद्देश्य एक ही है, तो यह भेद क्यों है ?'

इन शब्दों का केशी ने निम्नलिखित उत्तर दिया—'अपने उच्च ज्ञान से प्रत्येक पदार्थ का निश्चय करते हुवे तीर्थङ्करों ने यह निर्णय किया है कि धर्मपालन के लिये क्या कुछ आवश्यक है । धार्मिक पुरुषों के जो विविध बाह्य लिङ्ग निश्चित किये गये हैं उनका उद्देश्य यह है कि लोग उन्हें सुगमता से पहचान सकें और जो खास बाह्य चिन्ह निश्चित किये हैं, उन्हें निश्चित करने का कारण उनका धार्मिक जीवन के लिये उपयोगी होना है । तीर्थङ्करों की अपनी सम्मति यह है कि

मोक्ष के साधन ये बाह्य लिंग नहीं हैं, अपितु ज्ञान, श्रद्धा और सदाचार ही मोक्ष के वास्तविक हेतु हैं।,

'गौतम ! तुम बुद्धिमान हो, तुमने मेरे सन्देह को दूर कर दिया है।'

आचार्य केशी और गौतम का यह सम्वाद दो दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। प्रथम इस से यह स्पष्ट होता है कि पार्श्व के अनुयायी जो कि महावीर द्वारा किये गये सुधारों को नहीं मानते थे, वे महावीर के बाद भी विद्यमान थे और उनमें अपने मतभेदों पर बहस होती रहती थी। दूसरी बात हमें इस सम्वाद से यह ज्ञात होती है कि महावीर ने पार्श्व द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म में कौन २ से मुख्य सुधार किये थे। पार्श्व के अनुसार जैन भिक्षु के लिये निम्नलिखित चार व्रत लेने आवश्यक थे—

(१) मैं जीवित प्राणिओं की हिंसा नहीं करूंगा।
(२) मैं सदा सत्य भाषण करूंगा।
(३) मैं चोरी नहीं करूंगा।
(४) मैं कोई सम्पत्ति नहीं रखूंगा।

पार्श्व द्वारा प्रतिपादित इन चार व्रतों के साथ महावीर ने एक और व्रत बढ़ा दिया और वह था—मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। इस के अतिरिक्त महावीर ने भिक्षुओं के लिये यह व्यवस्था की कि वे कोई वस्त्र धारण न करें, जब कि पार्श्व के अनुसार भिक्षु लोग वस्त्र धारण कर सकते थे।

आचार्य पार्श्व के जीवन चरित्र व उसकी शिक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक लिख सकना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है, कि भारतवर्ष के अनेक अन्य प्राचीन धर्मों की तरह जैन धर्म भी बहुत पुराणा है। भारतवर्ष बहुत विस्तृत देश है। पुराणे समयों में यह अनेक राज्यों में भी विभक्त था। कोई आश्चर्य नहीं, कि उस प्रदेश में जहां कि पीछे महावीर का प्रादुर्भाव हुआ, जैन धर्म पहले से ही विद्यमान हो और जैसा कि जैन लोगों का विश्वास है, महावीर पहले से ही

विद्यमान धर्म में एक सुधारक के रूप में उत्पन्न हुआ हो । इस में कोई सन्देह नहीं कि महावीर के साथ जैन धर्म का वास्तविक उत्कर्ष प्रारम्भ होता है । उससे पूर्व यह कितना महत्व प्राप्त कर चुका था, यह लिख सकना बहुत कठिन है। पर महावीर के समय से हम जैन धर्म के सम्बन्ध में अधिक निश्चित रूप से लिख सकते हैं ।

वर्धमान महावीर—उत्तरीय विहार में पुराणे समयों में एक शक्तिशाली गणतन्त्र (रिपब्लिकन) राज्यसंघ विद्यमान था जिसका नाम था वज्जि संघ। इसकी राजधानी वैशाली नगरी थी। वैशाली के इस वज्जि संघ में आठ गणतन्त्र राज्य सम्मिलित थे। इन राज्यों में से एक कुण्ड ग्राम के ज्ञात्रिक लोगों का राज्य था, जो कि वैशाली के बहुत समीप विद्यमान था। ज्ञात्रिक लोगों के प्रमुख सरदार का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ का विवाह वैशालिक राजकुमारी त्रिशला के साथ हुआ था । त्रिशला लिच्छवी राजकुमारी थी और लिच्छवियों के प्रमुख राजा (सरदार) चेटक की बहन थी। इसी चेटक की कन्या का मगध के प्रसिद्ध सम्राट् बिम्बिसार के साथ विवाह हुआ था, जिस से कि अजात शत्रु उत्पन्न हुआ था। ज्ञात्रिक सरदार सिद्धार्थ और लिच्छवी कुमारी त्रिशला के तीन सन्तानें हुयीं, एक कन्या और दो पुत्र। छोटे लड़के का नाम वर्धमान रखा गया। यही आगे चल कर महावीर बना ।

इतिहास में हम देखते हैं कि महापुरुषों के जन्म के साथ बहुत सी अद्‌भुत तथा असम्भव गाथायें जोड़ दी जाती हैं। महापुरुषों के अल्पशक्ति शिष्य अपने गुरु के माहात्म्य को बढ़ाने का सब से सरल उपाय यही समझते हैं कि उसे दैवीय व अलौकिक प्रदर्शित किया जावे । श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा आदि सभी महापुरुषों के जन्म के सम्बन्ध में बहुत सी अद्‌भुत गाथायें पाई जाती हैं। महावीर के साथ भी उसके शिष्यों ने यही किया है। कल्पसूत्र व सूत्रकृदङ्ग में वर्धमान की उत्पत्ति के प्रकरण में अनेक अद्‌भुत बातें लिखी गई हैं। उनके अनुसार जब महावीर अपने पूर्वजन्म के निवास स्थान पुष्पोत्तर प्रासाद से उतर कर इस संसार में आने लगे, तो पहिले उनकी आत्मा ने ब्राह्मण ऋषभदत्त की धर्म

पत्नी देवानन्दा के गर्भ में प्रवेश किया। परन्तु क्योंकि पहले कोई तीर्थङ्कर किसी ब्राह्मण के घर में उत्पन्न नहीं हुआ था, इसलिये शक्र (इन्द्र) ने देवानन्दा के गर्भ को त्रिशला में प्रविष्ट करा दिया। जिस समय त्रिशला को गर्भ हुआ, तो उसे बड़े विचित्र स्वप्न आये। इन स्वप्नों को सुन कर देवज्ञ लोगों ने बतलाया कि या तो लड़का चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा या सर्वज्ञ महात्मा। जिस समय वर्धमान महावीर, त्रिशला के गर्भ में थे, उस समय स्वर्ग की देवियां उस की निरन्तर सेवा तथा रक्षा करती रहीं।[1] आखिर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन महावीर का जन्म हुआ। बालक का जन्म नाम वर्धमान रखा गया। वीर, महावीर, जिन, अर्हत, भगवत आदि भी उसके नाम के रूप में जैन ग्रन्थों में आते हैं, पर ये उसके विशेषण मात्र हैं।

वर्धमान का बाल्य जीवन राजकुमारों की तरह व्यतीत हुआ। वह एक समृद्ध क्षत्रिय सरदार का पुत्र था। बज्जि राज्यसंघ में कोई वंशक्रमानुगत राजा नहीं होता था, वहां गणतन्त्र शासन प्रचलित था। परन्तु विविध क्षत्रिय घरानों के बड़े बड़े कुलीन सरदारों का—जो कि 'राजा' कहलाते थे— स्वाभाविक रूप से इस गण राज्य में प्रभुत्व था। वर्धमान का पिता सिद्धार्थ भी इन्हीं 'राजाओं' में से एक था। वर्धमान को छोटी आयु से ही शिक्षा देनी प्रारम्भ हुई। शीघ्र ही वह सब विद्याओं और शिल्पों में निपुण होगया। अपने पूर्वजन्म के संस्कारों की प्रबलता के कारण उसे विद्या प्राप्ति में जरा भी परिश्रम न करना पड़ा। वर्धमान की बाल्यवस्था के सम्बन्ध में बहुत सी कथायें जैन ग्रन्थों में लिखी हैं। इनमें से अनेक श्रीकृष्ण के बाल्य जीवन सम्बन्धी कथाओं से मिलती जुलती हैं। हम इन्हें यहां उद्धृत करना आवश्यक नहीं समझते। ये कथायें उसके अद्भुत पराक्रम, बुद्धि तथा बल को सूचित करती हैं। उचित आयु में वर्धमान का विवाह यशोदा नामक कन्या से किया गया। उनके एक कन्या भी उत्पन्न हुई। आगे चलकर

---

1. Kalpa sutra in Sacred Books of the East-Vol. xxii–Jain Sutra by Jacobi.

जमालि नामक क्षत्रिय के साथ इसका विवाह हुआ, जो कि वर्धमान महावीर के प्रधान शिष्यों में से एक था।

यद्यपि वर्धमान का प्रारम्भिक जीवन साधारण गृहस्थ के समान व्यतीत हुआ, पर उसकी प्रवृत्ति सांसारिक जीवन की तरफ नहीं थी। वह 'प्रेय' मार्ग को छोड़ कर 'श्रेय' मार्ग की ओर जाना चाहता था। जब वर्धमान ३० वर्ष की आयु के थे, तो उन के पिता की मृत्यु होगई। ज्ञातृक लोगों का सरदार अब सिद्धार्थ का ज्येष्ठ पुत्र नन्दिवर्धन बना। वर्धमान की प्रवृत्ति पहले ही वैराग्य की तरफ थी। अब पिता की मृत्यु के अनन्तर उन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग कर भिक्षु बनना निश्चित किया। नन्दिवर्धन तथा अन्य निकट सम्बन्धियों से अनुमति ले वर्धमान ने घर का परित्याग कर दिया। उसके परिवार के लोग पहले से ही पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के अनुयायी थे, अतः वर्धमान स्वाभाविक रूप से जैन भिक्षु बना। जैन भिक्षुओं की तरह उसने अपने केशश्मश्रु का परित्याग कर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। आचारांग सूत्र में इस तपस्या का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। हम उसमें से कुछ बातें यहां उद्धृत करेंगे—

वर्धमान ने भिक्षु बनते हुवे जो कपड़े पहने हुवे थे, वे १३ मास में बिलकुल जर्जरित होगये और फट कर स्वयं शरीर से उतर गये। उसके बाद उसने फिर वस्त्रों को धारण नहीं किया। वह छोटे बच्चे के समान नग्न ही विचरण करने लगा। जब वह समाधि लगा कर बैठा हुआ था, तो नानाविध जीव जन्तु उसके शरीर पर चलने फिरने लगे। उन्होंने उसे अनेक प्रकार से काट दिया, परन्तु वर्धमान ने इसकी जरा भी परवाह नहीं की। जब वह ध्यान मग्न हुआ इधर उधर परिभ्रमण करता था, तो लोग उसे चारों ओर से घेर लेते थे। वे उसको मारते थे, शोर मचाते थे, पर वर्धमान इस का जरा भी ख्याल नहीं करता था। जब कोई उससे पूछता था, तो वह जबाब नहीं देता था। जब उसे लोग प्रणाम करते थे, तब वह प्रणाम का भी उत्तर नहीं देता था। बहुत से दुष्ट लोग उसे डण्डों से पीटते थे, परन्तु उसे इसकी ज़रा भी परवाह नहीं थी।[2]

2. Ibid. Acharang Sutra p 78-80.

आचारांग सूत्र की तरह कल्पसूत्र नें भी वर्धमान की कठोर तपस्याओं का वर्णन उपलब्ध होता है। वहां लिखा है—

"भिक्षु महावीर ने एक वर्ष और एक मास तक वस्त्र धारण किये, पर उसके बाद वह सर्वथा नग्न होगया। वह भोजन भी हथेली पर ही ग्रहण करने लगा। बारह वर्ष तक वह निरन्तर अपने शरीर की सर्वथा उपेक्षा कर सब प्रकार के कष्टों का सहन करता रहा।........उसने संसार के सब बन्धनों का उच्छेद कर दिया था। संसार से वह सर्वथा निर्लिप्त था। आकाश की तरह उसे किसी आश्रय की आवश्यकता न थी। वायु के समान उसके सम्मुख कोई बाधा नहीं रह गई थी। शरद काल के जल के समान उसका हृदय शुद्ध था। कमल पत्र के समान वह किसी में लिप्त नहीं होता था। कछुवे की तरह उसने अपनी इन्द्रियों को वश में किया हुआ था। गेंडे के सींग के समान वह एकाकी होगया था। पक्षी के समान वह स्वतन्त्र था।"[1]

इस प्रकार बारह वर्ष तक घोर तपस्या कर अन्त में तेरहवें वर्ष में वर्धमान महावीर को अपनी तपस्या का फल प्राप्त हुआ। उन्हें पूर्ण सत्यज्ञान की उपलब्धि हुई। उन्होंने 'केवलिन्' पद प्राप्त किया। जैन धर्म के अनुसार यह बहुत ही महत्त्व पूर्ण है, इसीलिये उनके धर्म ग्रन्थों में इसका बड़े ही महत्त्व के साथ वर्णन किया है। कल्पसूत्र में लिखा है—

"तेरहवें वर्ष में, वसन्त ऋतु के द्वितीय मास में, वसन्त ऋतु के चौथे पक्ष में, वैशाख मास में, वैसाखमास के दशवें दिन, जब कि वस्तुओं की छाया पूर्व की तरफ पड़नी प्रारम्भ होगई थी (अर्थात् अपराह्न काल में), सुव्रत नामक वार को और विजय नामक मुहूर्त में, जृम्भिका ग्राम के बाहर, ऋजुपालिक नामी नदी के तट पर, सामाग नामी गृहस्थ की जमीन में स्थित एक पुराणे मन्दिर के सीमीप शालवृक्ष के नीचे ....वर्धमान महावीर ने 'केवलिन्' पद को प्राप्त किया।"[2]

---

1. Kalpa Sutra (in Sacred Books of the East, Vol. xxii) P. 260-261.
2. Ibid P. 263

जिस समय मनुष्य संसार के संसर्ग से सर्वथा मुक्त हो जाता है, सुख दुःख के अनुभव से वह ऊपर उठ जाता है, वह अपने को अन्य सब वस्तुओं से पृथक् 'केवल रूप' समझने लगता है, तब यह 'केवलिन्' की दशा आती है। वर्धमान महावीर ने इस दशा को पहुंच कर बारह वर्ष के तपस्या काल में जो सत्यज्ञान प्राप्त किया था, उसका प्रचार करना प्रारम्भ किया। महावीर की ख्याति शीघ्र ही दूर दूर तक पहुंच गई। अनेक लोग उनके शिष्य होने लगे। महावीर ने इस समय जिस नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की, उसे 'निर्ग्रन्थ' नाम से कहा जाता है, जिसका अभिप्राय 'बन्धनों से मुक्त' लोगों के सम्प्रदाय से है। महावीर के शिष्य भिक्षु लोग 'निर्ग्रन्थ' या 'निगन्थ' कहलाते थे। इन्हें 'जैन' भी कहा जाता था, क्योंकि ये 'जिन' (वर्धमान को केवलिपद प्राप्त करने के पश्चात् वीर, महावीर, जिन, अर्हत आदि सम्मान सूचक शब्दों से कहा जाता था) के अनुयायी होते थे। निगन्थ महावीर के विरोधी इन्हें प्रायः 'निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र' (निगन्थ नाटपुत्त) के नाम से पुकारते थे। ज्ञातृपुत्र उन्हें इसलिये कहा जाता था, क्योंकि वे ज्ञातृक जाति के क्षत्रिय थे।

वर्धमान महावीर ने किस प्रकार अपने धर्म का प्रचार किया, इस सम्बन्ध में भी अनेक बातें प्राचीन जैन ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं। महावीर का शिष्य गौतम इन्द्रभूति था। जैन धर्म के इतिहास में इस गौतम इन्द्रभूति का भी बड़ा महत्त्व है। आगे चल कर इसने भी 'केवलिन्' पद को प्राप्त किया। महावीर का यह ढंग था, कि वह किसी एक स्थान को केन्द्र बना कर अपना कार्य नहीं करता था, पर अपनी शिष्य मण्डली के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करता हुआ अपने धर्म सन्देश को जनता तक पहुंचाने का उद्योग करता था। स्वाभाविक रूप से सब से पूर्व उसने अपनी जाति के लोगों—ज्ञातृक क्षत्रियों में ही अपनी शिक्षाओं का प्रसार किया। वे शीघ्र ही उसके अनुयायी होगये। उसके बाद लिच्छवि तथा विदेह राज्यों में प्रचार कर महावीर ने राजगृह (मगध की राजधानी) की ओर प्रस्थान किया। वहां उस समय प्रसिद्ध सम्राट् श्रेणिक राज्य करता था। जैनग्रन्थों के अनुसार श्रेणिक महावीर के उपदेशों से

बहुत प्रभावित हुआ और उसने अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ महावीर का बड़े समारोह से स्वागत किया ।

अपनी आयु के ७२ वें वर्ष में महावीर स्वामी की मृत्यु हुई । मृत्यु के समय महावीर राजगृह के समीप पावा नामक नगर में विराजमान थे । यह स्थान इस समय भी जैन लोगों का बड़ा तीर्थ है । वर्तमान समय में इसका दूसरा नाम पोखरपुर है और यह विहार स्टेशन से ६ मील की दूरी पर स्थित है ।

जैनों का धार्मिक साहित्य—जैन लोगों के धार्मिक साहित्य को हम प्रधानतया ६ भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) द्वादश अङ्ग

(२) द्वादश उपाङ्ग

(३) दस प्रकीर्ण

(४) षट् छेद सूत्र

(५) चार मूलसूत्र

(६) विविध

(१) द्वादश अङ्ग—१. आयारङ्ग सुत्त (आचाराङ्ग सूत्र) है । इसमें उन नियमों का वर्णन है, जिन्हें कि जैन भिक्षुओं को अनुसरण करना चाहिये । जैन भिक्षु को किस प्रकार तपस्या करनी चाहिये । किस प्रकार जीवरक्षा के लिये तत्पर रहना चाहिये— इत्यादि विविध बातों का इस में विशद रूप से उल्लेख है ।

२. दूसरा अङ्ग सूत्रकृदङ्ग है । इस में जैन भिन्न मतों की समीक्षा की गई है, और जैनधर्म पर जो आक्षेप किये जासकते हैं, उनका उत्थान कर उनका उत्तर दिया गया है, ताकि जैनभिक्षु अपने मत का भलीभांति पक्षपोषण कर सकें ।

३. स्थानाङ्ग—इस में जैनधर्म के सिद्धान्तों का वर्णन है ।

४. समवायाङ्ग—इसमें भी जैन धर्म के सिद्धान्तों का ही वर्णन है ।

५. भगवती सूत्र—यह जैनधर्म के अत्यन्त महत्व पूर्णग्रन्थों में से एक है । इसमें जैनधर्म के सिद्धान्तों के अतिरिक्त स्वर्ग और नरक का विशद रूप से

वर्णन किया गया है। जैन लोग स्वर्ग और नरक की कल्पना किस ढंगसे करते हैं, नरक में मनुष्य को किस प्रकार भयंकर रूप से कष्ट उठाने पड़ते हैं और स्वर्ग में क्या आनन्द हैं— इनका बहुत ही सुन्दर तथा आकर्षक वर्णन भगवती सूत्र में मिलता है। इसके अतिरिक्त महावीर तथा उस के समकालीन अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी इस में बहुत सी महत्व पूर्ण गाथायें संकलित की गई हैं।

६. ज्ञानधर्म कथा—इस में कथा, आख्यायिका, पहेली आदि द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्तों का उपदेश किया गया है।

७. उवासगदसाओ—इस में दस समृद्ध व्यापारियों का वर्णन है, जिन्होंने कि जैनधर्म को स्वीकार कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

८. अन्तकृद्दशाः—इस में उन जैन भिक्षुओं का वर्णन है, जिन्होंने कि विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा अपने शरीर का अन्त कर दिया और इस प्रकार मोक्ष पद प्राप्त किया।

६. अनुत्तरौपपातिक दशाः— इस में भी तपस्या द्वारा अपने शरीर का अन्त कर मोक्ष करने वाले जैन भिक्षुओं का वर्णन है।

१० प्रश्न व्याकरण— इस में जैन धर्म की दश शिक्षाओं, दस निषेध आदि का वर्णन है।

११. विपाक श्रुतम्—इस जन्म में किये गये अच्छे व बुरे कर्मों का मृत्यु के बाद किस प्रकार फल मिलता है, इस बात को इस अंग में कथाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

१२. दृष्टिवाद—यह अंग इस समय उपलब्ध नहीं होता है। जैन लोग दृष्टि वाद में १४ 'पूर्वाः' का परिगणन करते हैं। ये संस्कृत के 'पुराणों' की तरह बहुत प्राचीन समय से— पहले तीर्थङ्कर के समय से ही विकसित हो रहे थे। इन चौदह 'पूर्वाः' से मिल कर जैन लोगों का बारहवां अङ्ग बनता था। ये 'पूर्वाः' महावीर स्वामी के बाद आठवें आचार्य 'स्थूल भद्र' तक ज्ञात थे। उसके बाद ये नष्ट होगये।

(२) द्वादश उपांग—प्रत्येक अंग का एक एक उपांग है । इनके नाम निम्न लिखित हैं—

१. औपपातिक
२. राजप्रश्नीय
३. जीवाभिगम
४. प्रज्ञापना
५. जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति
६. चन्द्रप्रज्ञप्ति
७. सूर्य प्रज्ञप्ति
८. निरयावली
९. कल्पावतंसिका
१०. पुष्पिका
११. पुष्पचूलिका
१२. वृष्णिदशाः

(३) दस प्रकीर्ण – इनमें जैनधर्म सम्बन्धी विविध विषयों का वर्णन है इनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. चतुः शरण
२. संस्तारक
३. आतुरप्रत्याख्यानम्
४. भक्तापरिज्ञा
५. तन्दुलवैचारिका
६. चन्द्रवैध्यक
७. गणिविद्या
८. देवेन्द्रस्तव
९. वीरस्तव
१०. महाप्रत्याख्यान

(४) षट् छेदसूत्र—इन सूत्रों में जैन भिक्षु और भिक्षुणियों के लिये विविध नियमों का वर्णन कर उन्हें दृष्टान्तों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। छेद सूत्रों के नाम निम्नलिखित हैं—

१. व्यवहारसूत्र
२. वृहत्कल्प सूत्र
३. दशाश्रुत स्कन्धसूत्र
४. निशीयसूत्र
५. महानिशीथसूत्र
६. जितकल्पसूत्र

(५) चार मूल सूत्त—इनके नाम निम्नलिखित हैं—

१. उत्तराध्ययनसूत्र
२. दशवैकालिकसूत्र
३. आवश्यक सूत्र
४. ओकनिर्यूति सूत्र

(६) विविध—इस श्रेणि में वहुत से ग्रन्य अन्तर्गत हैं—परन्तु उन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण नन्दिसूत्र और अनुयोगद्वार हैं। इनमें वहुत प्रकार के विषयों का समावेश है। जैन भिक्षुओं को जिन भी विषयों का परिज्ञान था. वे प्रायः सभी इनमें आगये हैं। ये विश्वकोश के ढंग के ग्रन्थ हैं।

इन धर्म ग्रन्थों पर वहुत सी टीकायें भी हैं। सबसे पुरानी टीकायें निर्युक्ति कहलाती हैं। इनका समय भद्रबाहू श्रतकेवलि का कहा जाता है। जैन टीकाकारों में सब से प्रसिद्ध हरिभद्र स्वामी हुआ है। इसने वहुत से धर्म ग्रन्थों पर टीकायें लिखी हैं। इसके अतिरिक्त शान्तिसूरी, देवेन्द्रगणी और अभयदेव नामके टीकाकारों ने भी वड़े महत्वपूर्ण भाष्य और टीकायें लिखी हैं। इन टीकाओं का भी जैनधर्म में वहुत महत्व है।

प्रायः सभी जैन धर्म ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है। जैन प्राकृत आर्ष या अर्धमागधी नाम से प्रसिद्ध है।

जैनों के जिस धार्मिक साहित्य का हमने वर्णन किया है, वह श्वेताम्बर सम्प्रदाय का है। जैनों में दो मुख्य सम्प्रदाय है—दिगम्बर और श्वेताम्बर। इन सम्प्रदायों का भेद किस प्रकार हुआ, इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। दिगम्बर सम्प्रदाय के जैन इस धार्मिक साहित्य को नहीं मानते। उनके धार्मिक ग्रन्थ अभीतक बहुत कम परिमाण में मुद्रित हुवे हैं। इस लिये उनका परिचय दे सकना सम्भव नहीं है।

सातवां अध्याय

जैन धर्म की शिक्षायें

वर्धमान महावीर ने स्वयं जिस धर्म का उपदेश किया था, उसका निश्चित रूप से पता लग सकना वर्तमान समय में बहुत कठिन है। कारण यह है कि आजकल जो जैन साहित्य उपलब्ध होता है, वह महावीर के समय से बहुत पीछे संकलित हुआ है। महावीर की मृत्यु के कई सदियों बाद वल्लभी की महासभा में इस साहित्य ने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया था। इस बीच में महावीर की वास्तविक शिक्षाओं में निरन्तर परिवर्तन आता गया, दार्शनिक विचार निरन्तर विकसित होते रहे और जैनधर्म के प्रवर्तक की वास्तविक शिक्षायें क्या थी, यह निश्चित करना भी सुगम नहीं रहा। फिर भी हम आवश्यक समझते हैं, कि जैन धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों को यहां संक्षेप में उपस्थित करें, ताकि बौद्धकाल की धार्मिक सुधारणा को भली भांति समझने में सहायता मिल सके।

जैन धर्म के अनुसार मानवीय जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्ति के लिये मनुष्य क्या प्रयत्न करे, इस के लिये साधारण गृहस्थों और भिक्षुओं (मुनियों) में भेद किया गया है। जिन नियमों का पालन एक मुनि कर सकता है, साधारण गृहस्थ (श्रावक) उन्हें नहीं पालन कर सकेगा। इसलिये जीवन की इन दोनों स्थितियों में मुमुक्षु के लिये जो भिन्न भिन्न धर्म हैं, उनका पृथक् रूप से प्रतिपादन करना आवश्यक है।

पांच अणुव्रत—पहले सामान्य गृहस्थ (श्रावक) के धर्म को लीजिये। गृहस्थ के लिये पांच अणुव्रतों का पालन करना आवश्यक है। गृहस्थों के लिये यह सम्भव नहीं कि वे समस्त पापों को त्याग कर सकें। संसार के कृत्यों में फंसे रहने से उन्हें कुछ न कुछ अनुचित कृत्य करने ही पड़ेंगे, अतः उनके लिये अणुव्रतों का विधान किया गया है। अणुव्रत निम्न लिखित हैं—

(१) अहिंसाणुव्रत— जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वह अहिंसाव्रत का पालन करे। मन, वचन और शरीर से किसी भी प्रकार की हिंसा करना अत्यन्त अनुचित है । परन्तु सांसारिक मनुष्यों के लिये पूर्ण अहिंसाव्रत धारण करना कठिन है। इसलिये श्राविकों के लिये 'स्थूल अहिंसा' का विधान किया गया है। 'स्थूल अहिंसा' का अभिप्राय यह है कि निरपराधियों की हिंसा न की जावे। जैन ग्रन्थों के अनुसार अनेक राजा लोग अहिंसाणुव्रत का पालन करते हुवे भी अपराधियों को दण्ड देते रहे हैं और हिंसक जन्तुओं का घात करते रहे हैं, अतः इस व्रत को स्थूल अर्थों में ही लेना चाहिये। अहिंसाणुव्रत का ठीक प्रकार से पालन करने के लिये उसके पांच 'अतीचारों' का भी ध्यान रखना चाहिये—

१. वन्ध—कोई जीव जो अपनी इच्छानुसार किसी स्थान को जाना चाहता हो तो उसे रोकने के लिये खूंटा, रस्सी आदि किसी बन्धन का उपयोग नहीं करना चाहिये।
२. वध— किसी जीव को लाठी, कोड़ा आदि से पीटना नहीं चाहिये।
३. छेद— किसी जीव के कान, नाक, आदि को छेदन करके उसको अपने लाभ के लिये उपयोग में नहीं लाना चाहिये।
४. अतिभारारोपण—किसी जीव पर बहुत बोझ नहीं लादना चाहिये।
५. अन्नपाननिरोध—अपने आश्रित किसी पशु को भूखा व प्यासा नहीं रखना चाहिये।

(२) सत्याणुव्रत—मनुष्यों में असत्य भाषण करने की प्रवृत्ति अनेक कारणों से होती है। द्वेष, स्नेह तथा मोह का उद्वेग इसमें प्रधान कारण हैं। इन सब प्रवृत्तियों को दबा कर सर्वदा सत्य बोलना सत्याणुव्रत कहाता है। इस व्रत के भी पांच अतीचार हैं—

१. मिथ्योपदेश
२. रहोभ्याख्यान- किसी के रहस्य को खोल देना अथवा एकान्त में की गई बात को प्रगट कर देना 'रहोभ्याख्यान' कहाता है।

३. कूट लेख क्रिया— दूसरों को ठगने के लिये इस प्रकार लिखना कि उसका ठीक अभिप्राय समझ में न आवे और दूसरा आदमी धोखा खा जावे।

४. न्यासापहार—यदि कोई दूसरा मनुष्य अपने ऊपर विश्वास करके अपनी कोई अमूल्य वस्तु धरोहर रख जावे, और पीछे उसे ठीक स्मरण न रहे, तो उसके भूल जाने का लाभ उठाकर उसे ठगने की कोशिश करने को 'न्यासापहार' कहते हैं।

५. साकारमन्त्रभेद—आकार, इंगित आदि से दूसरों के अभिप्राय को समझ कर ईर्ष्या वश उन्हें प्रगट कर देना 'साकारमन्त्रभेद' कहाता है।

सत्याणुव्रत के पालन के लिये आवश्यक है, कि इन अतीचारों से बचे, क्योंकि इन से बचे बिना सत्य का ठीक पालन कर सकना सम्भव नहीं है।

(३) अचौर्याणुव्रत या आस्तेय— किसी भी प्रकार से दूसरों की चोरी न करना, गिरी हुई, पड़ी हुई, रक्खी हुई व भूली हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण न कर उसके स्वामी को दे देना अचौर्याणुव्रत कहाता है।

इस के अतीचार निम्नलिखित हैं—

१. स्तेन प्रयोग—दूसरे को चोरी के उपाय बताना।

२. तदाहृतादान—चोरी का माल खरीदना।

३. विरुद्धराज्यातिक्रम—राज्य की आज्ञा के विरुद्ध लेन देन व अन्य व्यवहार करना।

४. हीनाधिकमानोन्मान—नाप तोल में कमती देना।

५. प्रतिरूपक व्यवहार—अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिला कर विक्रय करना।

(४) ब्रह्मचर्याणुव्रत— मन, वचन तथा कर्म द्वारा परस्त्री का समागम न कर अपनी पत्नी में ही सन्तोष रखना तथा स्त्री के लिये मन, वचन व कर्म

द्वारा परपुरुष का समागमन कर अपने पति में ही सन्तोष रखना ब्रह्मचर्या-णुव्रत कहाता है। इस के भी पांच अतीचार हैं—

१. परविवाहकरण— दूसरों का विवाह कराना।

२. इत्वरिका अपरिगृहीतागमन—जिस स्त्री का कोई स्वामी नहीं है, ऐसी वेश्या आदि के पास जाना।

३. इत्वरिका परिगृहीतागमन—जिस स्त्री का कोई पति हो, पर वह व्यभि-चारिणी हो,उसके पास जाना।

४. अनङ्गक्रीडा—विविध प्रकार की कामक्रीडाओं में आसक्त होना।

५. कामतीव्राभिनिवेश—अत्यन्त काम में (passion) में लिप्त रहना।

(५) परिग्रह परिमाण-अणुव्रत—आवश्यकता के विना बहुत से धन धान्य को संग्रहन करना 'परिग्रह परिमाण अणुव्रत' कहलाता है। गृहस्थों के लिये यह तो आवश्यक है कि वे धन उपार्जन करें, पर उसी में लिप्त हो जाना और अर्थ संग्रह के पीछे भागना पाप है।

पांच शीलव्रत—इन अणुव्रतों का पालन तो गृहस्थों को सदा करना ही चाहिये, पर इनके अतिरिक्त समय समय पर अधिक कठोर व्रतों का ग्रहण करना भी उपयोगी है। सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुये गृहस्थों को चाहिये कि कभी कभी अधिक कठोर व्रतों की दीक्षा लें। ये कठोरव्रत जैन धर्मग्रन्थों में 'शीलव्रत' के नाम से कहे गये हैं । इन का संक्षिप्त रूप से प्रदर्शन करना उपयोगी है—

(१) दिग्विरति—गृहस्थ को चाहिये कि कभी कभी यह व्रत ले ले, कि मैं इस दिशा में इस से अधिक दूर नहीं जाऊंगा। यह व्रत लेकर निश्चित किये गये प्रदेश में ही निवास करे , कभी उस परिमाण का उल्लंघन न करे।

(२) अनर्थ दण्ड विरति—मनुष्य बहुत से ऐसे कार्य करता है, जिन से उस का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता, ऐसे कार्यों से सर्वथा बचना चाहिये ।

(३) उपभोग परिभोग परिमाण—गृहस्थी को यह व्रत ले लेना चाहिये कि मैं परिमाण में इतना भोजन करूंगा, भोजन में इतने से अधिक वस्तुवें नहीं खाऊंगा, इस से अधिक भोग नहीं करूंगा—इत्यादि। इस प्रकार के व्रत लेने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों का संयम बहुत सुगमता से कर सकता है।

(४) देश विरति—एक देश व क्षेत्र निश्चित कर लेना, जिस से आगे गृहस्थ न जावे व अपना कोई व्यवहार न करे।

(५) सामयिक व्रत—निश्चित समय पर-यह निश्चित समय जैन धर्म के अनुसार प्रातः, सायं और मध्याह्न, ये तीन सन्ध्याकाल हैं—सब सांसारिक कृत्यों से विरत होकर, सब रागद्वेष छोड़ साम्य भाव धारण कर शुद्ध आत्म स्वरूप में लीन होने की क्रिया को सामयिक कहते हैं।

(६) पौषधोपवास व्रत—प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी के दिन सांसारिक कामों का परित्याग कर 'मुनियों' के समान जीवन व्यतीत करने के प्रयत्न को 'पौषधोपवास व्रत' कहते हैं। इस दिन गृहस्थ को सब प्रकार का भोजन त्याग कर धर्म कथा श्रवण करने में ही अपना समय व्यतीत करना चाहिये।

(७) अथितिसंविभाग व्रत—विद्वान अतिथियों का और विशेषतया मुनि लोगों का सम्मानपूर्वक स्वागत करना अतिथि संविभाग व्रत कहाता है।

इन सात शीलव्रतों का पालन गृहस्थों के लिये बहुत लाभदायक है। वे इन से अपना जीवन उन्नत कर सकते हैं और 'मुनि' बनने के लिये उचित तैयारी कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य 'मुनि' नहीं बन सकता। संसार का व्यवहार चलाने के लिये गृहस्थ धर्म का पालन करना भी आवश्यक है। अतः जैन धर्म के अनुसार गृहस्थ जीवन को व्यतीत करना बुरी बात नहीं है। पर गृहस्थ होते हुवे भी मनुष्य को अपना जीवन इस ढंग से व्यतीत करना चाहिये कि पाप में लिप्त न हो मोक्ष साधनों में तत्पर रहें।

पांच महाव्रत—जैन मुनियों के लिये आवश्यक है कि वे पांच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करें। सर्वसाधारण गृहस्थ लोगों के लिये सम्भव नहीं है कि वे पापों से सर्वथा मुक्त हो सकें, इस लिये उन के लिये अणुव्रतों का विधान किया गया है। पर मुनि लोग, जो कि मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिये ही संसार त्याग कर साधना में तत्पर हुये हैं, उनके लिये पापों का सर्वथा परित्याग अनिवार्य है। इस लिये उन्हें निम्नलिखित पांच महाव्रतों का पालन करना चाहिये—

(१) अहिंसा महाव्रत—जैन मुनि के लिये अहिंसाव्रत बहुत ही महत्व रखता है। किसी भी प्रकार के प्राणी की, जान बूझ कर या बिना जाने बूझे हिंसा करना महापाप है। अहिंसाव्रत को सम्यक् प्रकार पालन करने के लिये निम्न लिखित व्रत उपयोगी माने जाते हैं।

१. ईर्यासमिति—चलते हुवे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं हिंसा न हो जावे। इस के लिये उन्हीं स्थानों पर चलना चाहिये, जहां भलीभांति अच्छे मार्ग बने हुवे हों, क्योंकि वहां जीवजन्तुओं के पैर से कुचले जाने की सम्भावना बहुत कम होगी।

२. भाषा समिति—भाषण करते हुए सदा मधुर तथा प्रिय भाषा बोलनी चाहिये। कठोर वाणी से वाचिक हिंसा होती है, और साथ ही इस बात की भी सम्भावना रहती है कि शाब्दिक लड़ाई से बढ़ते बढ़ते कहीं शारीरिक लड़ाई प्रारम्भ न हो जावे।

३. एषणा समिति—भिक्षा ग्रहण करते हुवे मुनि को यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन में किसी प्राणी की हिंसा तो नहीं की गई है, अथवा, भोजन में किसी प्रकार के कृमि तो नहीं है।

४. आदान क्षेपणा समिति— मुनि को अपने धार्मिक कर्तव्यों को पालन करने के लिये जिन वस्तुओं का अपने पास रखना आवश्यक है, उन में यह निरन्तर देखते रहना चाहिए कि कहीं कीड़े तो नहीं हैं।

५. व्युत्सर्ग समिति—पेशाब व मल त्याग करते समय भी यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस स्थान पर वे ये कार्य कर रहे हैं, वहां कोई जीवजन्तु तो नहीं है ।

जैनमुनि के लिये अहिंसाव्रत का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है । प्रमाद व अज्ञान से भी तुच्छ से तुच्छ जीव का वध भी उन के लिये पाप का कारण बनता है, इसी लिये इस व्रत का पालन करने के लिये इतनी सावधानी से कार्य करने का उपदेश किया गया है ।

(२) असत्य त्याग महाव्रत—सत्य परन्तु प्रिय भाषण करना 'असत्य त्याग महाव्रत' कहलाता है । यदि कोई बात सत्य भी हो, परन्तु कटु हो, तो उसे नहीं बोलना चाहिये । इस व्रत के पालन में भी पांच भावनायें बहुत उपयोगी हैं—

१. अनुविम भाषी—भली भांति विचार किये बिना भाषण नहीं करना चाहिये ।

२. कोहं परिजानाति— जब क्रोध व अहंकार का वेग हो, तो भाषण नहीं करना चाहिये ।

३. लोभं परिजानाति— लोभ का भाव जब प्रबल हो, तो भाषण नहीं करना चाहिये ।

४. भयं परिजानाति—डर के कारण असत्य भाषण नहीं करना चाहिये ।

५. हासं परिजानाति—हंसी में भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिये ।

सत्य का पालन करने के लिये सम्यक् प्रकार से विचार करके भाषण करना तथा लोभ मोह, भय, हास तथा अहंकार से असत्य भाषण न करना अत्यन्त आवश्यक है ।

(३) अस्तेय महाव्रत—किसी दूसरे की किसी वस्तु को उस की अनुमति के बिना ग्रहण न करना तथा जो वस्तु अपने को नहीं दी गई है, उस को ग्रहण न करना तथा ग्रहण करने की इच्छा भी न करना अस्तेय व्रत कहाता है ।

इस महाव्रत का पालन करने के लिये मुनि लोगों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये ।

१. जैनमुनि को किसी घर में तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिये, जब तक कि गृहपति की अनुमति अन्दर आने के लिये न ले ली जावे ।

२. भिक्षा में जो कुछ भी भोजन प्राप्त हो, उसे तब तक ग्रहण न करे, जब तक कि गुरु को दिखला कर उस से अनुमति न ले ली जावे ।

३. जब मुनि को किसी घर में निवास करने की आवश्यकता हो, तो पहले गृहपति से अनुमति प्राप्त कर ले और यह निश्चित रूप से पूछले कि घर के कितने हिस्से में और कितने समय तक वह रह सकता है ।

४. गृहपति की अनुमति के विना घर में विद्यमान किसी आसन, शय्या व अन्य वस्तु का उपयोग न करे ।

५. जब कोई मुनि किसी घर में निवास कर रहा हो, तो दूसरा मुनि भी उस घर में गृहपति की अनुमति के विना निवास न कर सके ।

इन सब बातों का ध्यान रखने से अस्तेय महाव्रत का पालन करने में सहायता मिलती है ।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत—जैन मुनियों के लिये ब्रह्मचर्य व्रत का भी बहुत महत्व है । अपने से विपरीत लिङ्ग के व्यक्ति से किसी भी प्रकार का संसर्ग रखना मुनियों के लिये निषिद्ध है । ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिये निम्नलिखित भावनाओं का विधान किया गया है—

१. किसी स्त्री से वार्तालाप न किया जावे ।

२. किसी स्त्री की तरफ दृष्टिपात भी न किया जावे ।

३. गृहस्थ जीवन में स्त्री संसर्ग से जो सुख प्राप्त होता था, उस का मन में भी चिन्तन न किया जावे ।

४. अधिक भोजन न किया जावे, मसाले, तिक्त पदार्थ आदि ब्रह्मचर्य नाशक भोजनों का परित्याग किया जावे।

५. जिस घर में कोई स्त्री रहती हो, वहां निवास न किया जावे।

साधुनियों के लिये नियम इनसे सर्वथा विपरीत हैं। किसी पुरुष के साथ बात चीत करना, पुरुष का अवलोकन करना, पुरुष का चिन्तन करना—उनके लिये निषिद्ध है।

(५) अपरि ग्रह का व्रत – किसी भी वस्तु, रस व व्यक्ति के साथ अपना सम्बन्ध न रखना तथा सब से निर्लेप रह कर जीवन व्यतीत करना 'अपरिग्रह व्रत' का पालन कहलाता हैं। जैन मुनियों के लिये 'अपरिग्रहव्रत' का अभिप्राय बहुत विस्तृत तथा गम्भीर है। सम्पत्ति का सञ्चय न करना तो साधारण बात हैं, किसी भी वस्तु के साथ किसी भी प्रकार का ममत्व न रखना जैन मुनियों के लिये आवश्यक है। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द का जो अनुभव प्राप्त करता है—उस सब से विरत होजाना 'अपरिग्रह व्रत' के पालन के लिये परमावश्यक है।

इस व्रत के सम्यक् प्रकार पालन से मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य बनता है। सब विषयों तथा वस्तुओं से निर्लिप्त तथा विरक्त होकर वह इस जीवन में ही 'सिद्ध' अथवा 'केवली' बन जाता है।

साधु का आदर्श—जैन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर 'साधु' का आदर्श वर्णित है। हम कुछ श्लोकों का अनुवाद यहां पर उपस्थित करते हैं[1]—

"जिन वस्तुओं के साथ तुम्हारा पहले स्नेह रहा हो, उनसे स्नेह तोड़ दो। अब किसी नई वस्तु से स्नेह न करो। जो तुम से स्नेह करते हैं, उनसे भी स्नेह न करो। तभी तुम पाप और घृणा से मुक्त हो सकोगे।"

---

1. Uttaradhyanana Sutra (in Jain Sutras vol pp. ii 31--34 by H. Jacobi—Sacred Bootrs of the East.)

"साधु को चाहिये कि आत्मा के सब बन्धनों को काट दे। किसी वस्तु से घृणा न करे। किसी से स्नेह न करे। किसी प्रकार की मौज में अपने को न लगावे।[1]"

"जीवन के आनन्दों पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। निर्बल लोग उन्हें सुगमता से नहीं छोड़ सकते। पर जिस प्रकार व्यापारी लोग दुर्गम समुद्र के पार उतर जाते हैं, उसी प्रकार साधुजन 'संसार' के पार उतर जाते हैं।"

"स्थावर व जंगम—किसी भी प्राणी को मन, वचन व कर्म से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुचानी चाहिये।"

"साधु को केवल अपनी जीवन यात्रा के निर्वाह के लिये ही भोजन की भिक्षा मांगनी चाहिये। उसका भोजन स्वादु नहीं होना चाहिये।"

"यदि सारी पृथिवी भी किसी एक आदमी की हो जावे, तो उसे भी सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकता। सन्तोष प्राप्त कर सकना तो बहुत कठिन है।"

"जितना तुम प्राप्त करोगे, उतना ही तुम्हारी कामना बढ़ती जावेगी। तुम्हारी सम्पत्ति के साथ साथ तुम्हारी आकांक्षायें भी बढ़ती जावेंगी। तुम्हारी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये तो दो 'माशा' भी काफी हैं, पर सन्तोष तो तुम्हारा (यदि तुम सम्पत्ति को बढ़ाते जावो तो) एक करोड़ से भी नहीं हो सकता।"

साधुओं के नियम—प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ 'सूत्र कृदङ्ग' में एक स्थान पर साधुओं के लिये उपदिष्ट नियमों का बड़ा विशद उपदेश किया गया है। अनुश्रुति के अनुसार यह उपदेश वर्धमान महावीर का दिया हुआ है। हम इसे कुछ संक्षेप के साथ यहां उद्धृत करते हैं—

"ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल, शूद्र आदि सब प्रकार के लोग संसार में रहते हुवे निरन्तर कार्य करने में तत्पर रहते हैं।

---

1. Sutrakridang (in Jain Sutras vol.ii,p. 301-304 by H.Jacobi)

"कर्म करने से जो आनन्द प्राप्त होते हैं, उनमें फंसे हुए लोग कभी कष्ट और पाप से नहीं बच सकते।

"कर्म ही मनुष्यों की मृत्यु का कारण है। मनुष्य अपने जिन कुटुम्बियों के लिये कर्म्म करता है, वे तो अपनी मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति के मालिक बन बैठते हैं और उस मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।

"माता, पिता, पुत्रवधू, भाई, स्त्री और बच्चे उस समय मेरे जरा भी काम न आवेंगे, जब कि मुझे अपने कर्मों का फल मिलेगा। इस सब सत्यों के एक सत्य को अपने हृदय में खूब अच्छी प्रकार धारण कर मनुष्य को साधु बन, सब सम्पत्ति तथा अहंकार का परित्याग कर देना चाहिये।

"सम्पत्ति, सन्तान, कुटुम्बीजन आदि सब का परित्याग कर, कभी अन्त न होने वाले शोक को छोड़ कर, संसार से कोई भी सम्बन्ध न रख, भिक्षु बन कर इधर से उधर परिभ्रमण करना चाहिये।

"सब प्रकार के प्राणियों के साथ साधु को नम्रता से व्यवहार करना चाहिये। मन, वचन और कर्म्म-किसी से भी उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।

"असत्य भाषण, मैथुन, वैयक्तिक सम्पत्ति, जो वस्तु अपने को न दी जावे उसका ग्रहण करना—ये सब जीवित प्राणियों की हिंसा के कारण हैं, अतः बुद्धिमान मनुष्य को इन से बचना चाहिये।

"माया, लोभ, क्रोध, अभिमान—ये सब पाप के कारण हैं, इन से बचो और इनके साथ संघर्ष करो।

"धोना, रंगना, पेशाब करना, मल त्याग करना, कै करना, आंख साफ करना, इनसे तथा उन सब बातों से जो कि आचार के नियमों के विरुद्ध हैं, बुद्धिमान मनुष्य को बचना चाहिये।

"सुगन्ध, माला, स्नान, दांत साफ करना, सम्पत्ति का संचय, स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले कार्य—इन सब से बुद्धिमान मनुष्य को बचना चाहिगे।

"साधारण गृहस्थ लोगों से सम्पर्क रखना, उनके कार्यों की प्रशंसा करना, उनके प्रश्नों का उत्तर देना, गृहस्थ का भोजन खाना, इन सब से बुद्धिमान मनुष्य को बचना चाहिये ।

"साधु को 'अष्टापद' खेल नहीं खेलनी चाहिये । धर्म विरुद्ध बात को बोलना नहीं चाहिये, युद्धों और झगड़ों से बचना चाहिये ।

"जूता, छाता, जूआ, दूसरे के लिये कार्य करना, दूसरों की सहायता करना, इन सब से बुद्धिमान मनुष्य को बचना चाहिये ।

"यश, कीर्ति, ख्याति, सम्मान, आदर, संसार के सब सुख—इन सब से बुद्धिमान मनुष्य को बचना चाहिये ।

"भाषण करते हुवे साधु को कम से कम शब्दों का उपयोग करना चाहिये । दूसरों की कमजोरी व दुर्गुण से खुश नहीं होना चाहिये, भाषण द्वारा दूसरों को ठगना नहीं चाहिये, बहुत सोच विचार के पश्चात् प्रश्न का उत्तर देना चाहिये ।

"किसी को 'तू' करके न बुलाओ । 'तू तू' करना गंवारपन है ।

"बुरे आदमी की कभी संगति नहीं करनी चाहिये । साधु को चाहिये कि बच्चों के खेल की तरफ भी दृष्टिपात न करे ।"

"सुन्दर बस्तुओं की आकांक्षा का सर्वथा परित्याग कर, अपने चरित्र और आचार का पूरा ध्यान रखते हुवे इधर उधर परिभ्रमण करना चाहिये । इसमें जो भी कष्ट सहन करने पड़े, उन्हें सहना चाहिये ।

"यदि साधु को कोई मारे, तब भी उसे क्रुद्ध नहीं होना चाहिये । यदि कोई गाली दे तो आपे से बाहर न होजाना चाहिये । शान्त चित्त होकर सब कुछ सहन करना ही साधु का धर्म है ।

"गुरु की सेवा तथा आज्ञा पालन करना चाहिये । जो गुरु स्वयं महान् वीर हों, अपनी आत्मा का कल्याण करने में व्यापृत हों, अपनी इन्द्रियों पर

जिन्होंने पूर्ण संयम किया हुआ हो, जिनका अपने ऊपर पूरा कब्ज़ा हो। उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये।

"ये साधु लोग, जो गृहस्थ जीवन में कोई सुख नहीं मानते, जो सब बन्धनों से मुक्त हैं, जो जीवन के इच्छुक नहीं हैं, जो इन्द्रियों के सुख की आकांक्षा नहीं रखते, जो कर्म बन्धन में नहीं फंसते— वे गुरुजन इस योग्य हैं कि साधु उनका सत्संग करें तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करें।

"अहंकार और माया, सब सांसारिक अभिमान— बुद्धिमान मनुष्य इनको जानकर इनका परित्याग कर देता है और इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिये योग्य बन जाता है।"

जैन साहित्य इसी प्रकार के अनेक सन्दर्भों से भरा हुआ है, जिसमें कि वर्धमान महावीर की शिक्षाओं का अनुसरण करने वाले साधु व मुनि के लिये पालन करने योग्य नियमों का बड़े विस्तार से वर्णन है। नमूने के लिये हमने यह एक सन्दर्भ यहां उद्धृत किया है।

जैन धर्म के अनुसार जो दार्शनिक सिद्धान्त स्वीकृत किये जाते हैं, उनका यहां उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। ये दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः पिछले समय की उपज हैं और महावीर की शिक्षाओं के साथ इनका विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

बौद्ध धर्म के समान जैन धर्म भी निरन्तर उन्नति करता रहा। मगध के अनेक प्रसिद्ध सम्राट् जैन धर्म के अनुयायी बने। जैन ग्रन्थों के अनुसार मौर्य वंश के प्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्प्रति जैन धर्म के अनुयायी थे और सम्प्रति ने तो इस धर्म के प्रचार के लिये अपनी महान् शक्ति का भी उपयोग किया था। पर जैन धर्म के इस इतिहास का यहां उल्लेख करना उपयोगी नहीं है। हम तो यहां बौद्ध काल की धार्मिक सुधारणा का ही जिकर करना चाहते हैं और उस में जैन धर्म के प्रादुर्भाव का यह संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त है।

तृतीय भाग
राजनीतिक इतिहास

प्रथम अध्याय

बौद्धकाल से पूर्व के षोडश महाजनपद

प्राक्कथन—महाभारत के बाद से महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव तक भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास का विशद रूप से विवेचन हम इस 'इतिहास' के द्वितीय खण्ड में कर चुके हैं। इस काल का इतिहास लिखने के लिये हमारे पास ऐतिहासिक सामग्री का बहुत अभाव था। पुराणों के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ हमें ऐसा प्राप्त नहीं था, जिस से कि इस काल के ऐतिहासिक इतिवृत्त को संकलित किया जासकता। पुराणों में भी केवल राजघरानों की वंशावलियां मात्र ही दी गई हैं। ये भी अपर्याप्त, अपूर्ण और कई स्थानों पर परस्पर विरुद्ध हैं। परन्तु महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव के साथ हमें साहित्यिक साधनों की कमी नहीं रहती। वर्तमान समय में बहुत सा बौद्ध साहित्य उपलब्ध हो चुका है और उस में ऐतिहासिक सामग्री पर्याप्त परिमाण में पाई जाती है। हम प्रयत्न करेंगे कि इस सामग्री के आधार पर बौद्ध काल के राजनीतिक इतिहास को क्रमबद्ध रूप से संकलित करें। यह ध्यान में रखना चाहिये कि जिन ग्रन्थों से यह ऐतिहासिक इतिवृत्त संगृहीत किया जावेगा, उनका उद्देश्य इतिहास का उल्लेख करना नहीं है। वे धार्मिक ग्रन्थ हैं। उन में बौद्ध धर्म की शिक्षायें व बुद्ध का जीवन चरित्र ही मुख्य रूप से उल्लिखित किया गया है। पर प्रसङ्गवश कहीं कहीं पर राजनीतिक घटनाओं का भी जिक्र आगया है। इन्हीं को संगृहीत कर इस काल के इतिहास को संकलित किया जाता है। यह स्पष्ट है, कि इस प्रकार का प्रयत्न कभी पूर्ण तथा निर्दोष नहीं हो सकता। उस में बहुत सी बातें केवल 'सम्भावनायें' मात्र ही होंगी। वर्तमान समय में हमें जो ऐतिहासिक साधन प्राप्त हैं, उन में इस से अधिक कर सकना सम्भव नहीं है।

षोडश महाजनपद— बौद्ध ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर सोलह महाजनपदों व राज्यों का उल्लेख आता है।[1] इन राज्यों के नाम निम्न लिखित हैं—

१. काशी	९. कुरु
२. कोशल	१०. पञ्चाल
३. अंग	११. मच्छ (मत्स्य)
४. मगध	१२. सूरसेन
५. वज्जी	१३. अस्सक
६. मल्ल	१४. अवन्ती
७. चेतिय (चेदी)	१५. गन्धार
८. वंस (वत्स)	१६. कम्बोज

सोलह राज्यों की यह सूचि बौद्ध साहित्य में अनेक स्थानों पर एक ही ढंग से उपलब्ध होती है[2]। यह सूचि एक श्लोक के रूप में है, और उस का अनेक स्थानों पर एक ही रूप में पाया जाना कुछ अर्थ रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह श्लोक—जिस में कि इन सोलह राज्यों के नाम गिनाये गये हैं—विविध बौद्ध ग्रन्थों के निर्माण से पहले ही बन चुका था और एक प्रचलित श्लोक को सर्वत्र प्रकरणानुसार उद्धृत कर दिया गया था। इस दशा में यह अनुमान कर सकना कठिन नहीं है कि यह श्लोक बौद्ध काल से कुछ पहले का है और बौद्ध काल से पूर्व की ही राजनीतिक दशा का वर्णन करता है। साथ ही, यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस सूचि में अनेक इस प्रकार के राज्यों का उल्लेख है, जो महात्मा बुद्ध के समय में अपनी स्वतन्त्रता खो चुके थे और अन्य राज्यों के अंश बन चुके थे। उस समय में काशी कोशल के अधीन था और अंग मगध के। यह बात भी सूचित करती है कि सोलह राज्यों की यह सूचि महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव से पहले की दशा का वर्णन करती है। बौद्ध काल का राजनीतिक इतिहास लिखने के लिये इस सूचि

१. अगुत्तर निकाय १,२१३; ४,२५२,२५६,२६०.

२ Rhys Davids-Buddhist India, p. 188

का बहुत महत्व है। हम इसे ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख का आधार बना सकते हैं। इसी दृष्टि से हम पहले यह आवश्यक समझते हैं, कि इन राज्यों की स्थिति पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाल दें।

(१) काशी—महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व काशी अत्यन्त प्रबल राज्य रह चुका था। इस की राजधानी वाराणसी थी। अनेक जातक कथाओं से सूचित होता है, कि यह वाराणसी भारत की सर्वप्रधान नगरी थी और इस के राजा अत्यन्त शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी थे। गुत्तिल जातक[1] में लिखा है कि वाराणसी भारतवर्ष का सब से बड़ा शहर है। इस का विस्तार १२ योजन है। जब कि मिथिला और इन्द्रप्रस्थ का विस्तार केवल सात योजन है। भद्रसाल जातक[2] के अनुसार काशी के राजा सम्पूर्ण राजाओं में प्रमुख राजा (सब्बराजूनम् अग्गराजा) बनने के लिये महत्वाकांक्षा रखते थे। इसी प्रकार धोनसाख जातक[3] का कथन है, कि काशी के राजा 'सकल जम्बूद्वीप' के स्वामी बनने के लिये प्रयत्न शील हैं। काशी के राजा का स्वतन्त्ररूप से उल्लेख तो अन्य भी बहुत स्थानों पर आता है।

महावग्ग में काशी के राजा का उल्लेख आया है, और उसे 'महाधन' 'महाभोग' 'महाबल' 'महावाहन' 'महाविजित' 'परिपूर्णकोश कोष्ठागार' आदि विशेषणों से विभूषित किया है।[4] जैन साहित्य में भी काशी के स्वतन्त्र राज्य का उल्लेख किया गया है और जैन धर्म के प्रसिद्ध तीर्थंकर पार्श्व नाथ को— जो कि अन्तिम जैन तीर्थङ्कर महावीर से २५० वर्ष पूर्व हुआ था— काशीराज का पुत्र लिखा गया है।[5]

---

१. Cowell-The Jatak vol. 2 p. 172-178
2. Cowell-the Jatak vol-4.p.91-98
३. Ibid vol 3. p.105-106
४. महावग्ग १०, २, ३
५. Cambridge History of India vol.1.p.154

(२) कोशल—इस राज्य के पश्चिम में पञ्चाल राज्य, दक्षिण में सर्पिका या स्यन्दिका नदी, पूर्व में सदानीरा (गण्डक) नदी—जो कि इसे विदेह से पृथक् करती थी और उत्तर में नैपाल की पर्वतमाला थी। आधुनिक समय का अवध प्रान्त प्रायः वही है, जो प्राचीन समय में कोशल था। कोशल में तीन नगर सब से मुख्य थे – अयोध्या, साकेत और सावट्ठी (श्रावस्ती)। अयोध्या सरयू नदी के तट पर स्थित था। साकेत अयोध्या के बहुत समीप—उससे बिलकुल लगा ही हुआ था। सावट्ठी अयोध्या के उत्तर में राप्ती नदी के दक्षिण तट पर स्थित था। वर्तमान समय में यह स्थान गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर विद्यमान है। कोशल की राजधानी विविध समयों में ये तीनों ही नगर रह चुके हैं। रामायण के समय में कोशल की राजधानी अयोध्या थी। महात्मा बुद्ध के समय में श्रावस्ती इस राज्य की राजधानी थी। बौद्ध साहित्य में ही साकेत का भी कोशल की राजधानी के रूप में उल्लेख आता है। कोशल में ऐक्ष्वाकव वंश के क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। इनकी वंशावली पुराणों में अविकल रूप से उपलब्ध होती है, हम इस 'इतिहास' के द्वितीय खण्ड में उसे उद्धृत भी कर चुके हैं। बौद्ध साहित्य में कोशल राज्य के अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है। महात्मा बुद्ध के समय में इस राज्य की राजगद्दी पर राजा विडूडभ (विरुद्धक) विराजमान था।

(३) अंग—यह राज्य मगध के पूर्व में स्थित था। मगध और अङ्ग के बीच में चम्पा नदी बहती थी, जो इन दोनों को एक दूसरे से पृथक् करती थी। इस राज्य की राजधानी का नाम भी चम्पा था। यह चम्पा नदी के तट पर स्थित थी। वर्तमान समय में इस नगरी के स्थान पर चम्पा नगर और चम्पापुर नामके दो गांव विद्यमान हैं। अनेक जातक ग्रन्थों में चम्पा नगरी का वर्णन आता है।[१] बौद्ध काल में चम्पा को भारत के सब से बड़े ६ नगरों में से एक गिना जाता था। शेष पांच नगर राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और बनारस थे।[२] चम्पा

---

१. महाजनक जातक (नं० ५३९)

२. महापरिनिब्बानसुत्त

पूर्वीय व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। चम्पा नदी और गङ्गा के जल मार्ग द्वारा बहुत से व्यापारी यहां से सुवर्ण भूमि (पेगू और मालमीन) आया जाया करते थे।" महात्मा बुद्ध के समय में यह राज्य मगध के आधीन होचुका था, पर उससे पूर्व यह एक प्रबल शक्ति शाली स्वतन्त्र राज्य था। जातक ग्रन्थों में भी अनेक स्थानों पर अंग के स्वतन्त्र राजाओं का उल्लेख मिलता है।[२]

(४) मगध—इसमें वर्तमान समय के बिहार प्रान्त के पटना और गया जिले अन्तर्गत थे। इस राज्य की सब से पहली राजधानी गिरिव्रज थी। यह नगर गया के समीप विद्यमान पहाड़ियों द्वारा सुरक्षित था, इसीलिये इसे गिरिव्रज कहते थे। वहीं पर पीछे से राजगृह का विकास हुआ। वर्तमान समय का राजगिर प्राचीन राजगृह व गिरिव्रज के समीप ही स्थित है। पाटलीपुत्र का निर्माण बहुत समय पीछे हुआ है। पहले मगध की राजधानी गिरिव्रज व राजगृह ही थी।

मगध का सब से पुराना राजवंश बार्हद्रथ वंश था। मगध के शासकों की पूर्ण वंशावली पुराणों में उपलब्ध होती है। इस राज्य के राजा बहुत प्राचीन समय से साम्राज्य निर्माण करने का उद्योग कर रहे थे। महाभारत का प्रसिद्ध साम्राज्यवादी राजा जरासन्ध मगध का ही शासक था। इस देश के राजा समीप-वर्ती राज्यों पर आक्रमण कर निरन्तर साम्राज्य निर्माण के लिये प्रयत्न शील रहे। अन्त में उन्हें अपने उद्योग में सफलता भी प्राप्त हुई। सम्पूर्ण भारत में एकछत्र साम्राज्य का सबसे पूर्व निर्माण करने वाले मगध के ही राजा थे।

(५) वज्जी—यह एक राज्यसंघ का नाम था, जिसमें आठ गणतन्त्र (जिस में कोई वंशक्रमानुगत राजा न हो, अपितु गण व समूह द्वारा शासन होता हो) राज्य सम्मिलित थे। इन आठ गण राज्यों में विदेह, लिच्छवि, और ज्ञात्रिक सब से मुख्य हैं। अन्य राज्य कौन से थे, यह निश्चित

---

१. Cowell–Jatak. vol. vi, p. 20

२. विधुर पण्डित जातक (Cowell, vi, 133)

रूप से नहीं कहा जा सकता। हम इस विषय में आगे चल कर विचार करेंगे। वज्जी राज्यसंघ के विविध गणराज्यों की स्थिति उत्तरीय बिहार में हिमालय की पर्वतमाला तथा गङ्गानदी के मध्यवर्ती प्रदेश में थी। विदेह की राजधानी मिथिला थी। यह विदेह राज्य पहले राजतन्त्र था, जहां के शासक को 'जनक' नाम से कहते थे। परन्तु महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव से पूर्व यह गणतन्त्र राज्य के रूप में परिवर्त्तित हो चुका था। लिच्छवीराज्य की राजधानी वैशाली थी, यह स्थान मुजफ्फरपुर जिले में स्थित है और वर्तमान समय में वहां पर बसाढ़ नामक गांव है। ज्ञात्रिक राज्य की राजधानी कुण्डपुर या कुण्डग्राम थी। जैनधर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर का प्रादुर्भाव यहीं पर हुआ था। वज्जी राज्य संघ की राजधानी भी वैशाली ही थी। बौद्ध काल में यह संघ अत्यन्त महत्व पूर्ण तथा शक्ति शाली था। मगध के अनेक साम्राज्यवादी राजाओं ने इसे पराजित कर अपने आधीन करने का उद्योग किया था। अन्त में अजातशत्रु अपने उद्योग में सफल हुआ और वज्जी संघ मगध के आधीन होगया। पर महात्मा बुद्ध के समय में तथा उस से पूर्व यह स्वतन्त्र रूप से विद्यमान था।

(६) मल्ल—यह राज्य भी एक संघ के रूप में था, जिस में दो राज्य सम्मिलित थे—कुशीनारा का मल्ल राज्य तथा पावा का मल्ल राज्य। कुशीनारा का विशेष महत्व इस कारण से है, क्योंकि वहां पर महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान गोरखपुर के पूर्व में कसिया के समीप है। यहां महात्मा बुद्ध का परिनिर्वाण-चैत्य उपलब्ध हुआ है। पावा भी गोरखपुर जिले में ही स्थित था। मल्ल राज्य में भी पहले राजतन्त्र शासन विद्यमान था। महाभारत में मल्ल राज्य की राजधानी कुशावती लिखी है। और वहां पर शासन करने वाले राजा का उल्लेख है। कुसजातक में मल्लराज्य का राजा ओक्काक लिखा गया है। महासुदस्सन सुत्त में मल्ल राज्य के राजा का नाम महासुदस्सन पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मल्लराज्य में पहले राजतन्त्र शासन था, पर बौद्धकाल में वह गणतन्त्र राज्य के रूप में परिवर्तित होगया था। वज्जी राज्य संघ की तरह मल्लराज्य भी मगध के साम्राज्यवाद के शिकार हो

गये थे। परन्तु महात्मा बुद्ध के समय में तथा उससे पूर्व वे स्वतन्त्र रूप में विद्यमान थे।

(७) चेदी—यह राज्य जमुना नदी के दक्षिण में विद्यमान था। वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड प्राय: उसी प्रदेश में स्थित है, जहां प्राचीन समय में चेदी राज्य था। इसकी राजधानी शुक्तिमती नगरी थी। जातक साहित्य में इसी नगरी को सोत्थिवती कहा गया है। यह शुक्तिमती (वर्तमान केन) नदी के तट पर स्थित थी। चेतिय जातक ने चेदी राज्य के १० राजाओं का उल्लेख किया है। इसी प्रकार महाभारत में भी अनेक चेदी राजाओं के नाम मिलते हैं। प्राग्बौद्धकाल में चेदी भी एक महत्वपूर्ण तथा शक्ति शाली राज्य था।

(८) वत्स—इस राज्य की राजधानी कोशाम्बी थी। इस नगर के अवशेष अलाहाबाद जिले में उपलब्ध हुवे हैं। पुराणों के अनुसार जब हस्तिनापुर गङ्गा की बाढ़ द्वारा नष्ट होगया था, तो जनमेजय के वंशज राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर के स्थान पर कोशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था। पुराणों में इस निचक्षु के उत्तराधिकारियों की वंशावली उपलब्ध होती है। बौद्ध साहित्य में भी वत्स के राजाओं का उल्लेख मिलता है। प्राग् बौद्धकाल में वत्स के राजा अत्यन्त प्रबल तथा शक्तिशाली थे। अवन्ती के साथ उन का निरन्तर संघर्ष चल रहा था। हम इन राजाओं का आगे विस्तार से उल्लेख करेंगे।

(९) कुरु— इस की राजधानी इन्द्रप्रस्थ या इन्द्रपत्तन थी। यह नगर वर्तमान दिल्ली के समीप स्थित था। जातक ग्रन्थों के अनुसार इस का विस्तार सात योजन था। कुरुराज्य के राजाओं का वर्णन पुराणों में तो उपलब्ध होता ही है। साथ ही, बौद्ध ग्रन्थों में भी उन में से अनेकों का उल्लेख मिलता है। जातक कथाओं में धनञ्जय कौरव और सुतसोम के नाम कुरुदेश के राजा के तौर पर मिलते हैं। परन्तु कुछ समय बाद इस देश में भी राजतन्त्र शासन नष्ट हो गया और गणतन्त्र की स्थापना हुई। बौद्धकाल में इस देश में गणतन्त्र राज्य विद्यमान था।

(१०) पञ्चाल—इस प्राचीन राज्य के प्रदेशों में वर्तमान समय में रुहेलखण्ड तथा उस के समीपवर्ती कुछ जिले विद्यमान हैं। प्राचीन समय में पञ्चालदेश दो राज्यों में विभक्त था। उत्तर पञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र तथा दक्षिण पञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य थी। इन में उत्तर पञ्चाल का राज्य अधिक शक्ति शाली न था। उसको जीत लेने के लिये कुरु तथा दक्षिण पञ्चाल में संघर्ष होता रहता था। अहिच्छत्र का राज्य कभी कुरुराज्य के अधीन होता था, तो कभी दक्षिण पञ्चाल के। महाभारत के समय में पञ्चाल का राज्य अत्यन्त महत्व पूर्ण स्थान रखता था। पर उस के पश्चात् इस राज्य का इतिहास प्रायः अन्धकार में है। यद्यपि जातक कथाओं में स्थान स्थान पर पञ्चाल राजाओं का उल्लेख मिलता है, तो भी उस से कोई महत्व पूर्ण ऐतिहासिक घटना ज्ञात नहीं होती। कुरुदेश की तरह पञ्चाल में भी पीछे से राजतन्त्रशासन का विनाश होकर गणतन्त्र शासन स्थापित हो गया था।

(११) मत्स्य—इसकी राजधानी विराटनगर या वैराट थी, जो वर्तमान जयपुर रियासत में स्थित है। मत्स्यराज्य यमुना नदी के पश्चिम में तथा कुरुदेश के दक्षिण में विद्यमान था। रामायण तथा महाभारत में अनेक स्थानों पर इस राज्य का उल्लेख मिलता है, पर बौद्ध साहित्य में इस के राजाओं का कहीं वर्णन नहीं मिलता। पहले यह चेदी के अधीन हुआ और फिर मगध ने सदा के लिये इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

(१२) सूरसेन— इस की राजधानी मथुरा थी। महाभारत के समय में यह नगर प्रसिद्ध अन्धकवृष्णि संघ का मुख्य केन्द्र था। इस संघ के सम्बन्ध में विस्तृत विचार हम इस 'इतिहास' के द्वितीय खण्ड में कर चुके हैं। बौद्ध साहित्य में सूरसेन देश के राजा अवन्तिपुत्र का उल्लेख मिलता है, जो कि महात्मा बुद्ध का समकालीन था। इस राज्य में पहले गणतन्त्र राज्य था, पर सम्भवतः बौद्ध काल में यह राजतन्त्र राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया था।

(१३) अस्सक (अश्मक)—यह राज्य गोदावरी नदी के तट पर स्थित था। इस की राजधानी का नाम पोतन या पोटली था। पुराणों के अनुसार अश्मक

देश के राजा ऐक्ष्वाकव वंश के थे। जातक कथाओं में अस्सक देश के अनेक राजाओं के नाम उपलब्ध होते हैं। अस्सक जातक के अनुसार अस्सक देश किसी समय में काशी राज्य के भी आधीन रह चुका था। चुल्लकलिंग जातक में अस्सक देश के राजा अरुण और उसके मन्त्री नन्दिसेन का उल्लेख है, जिन्होंने कि कलिंगदेश पर आक्रमण कर उसे अपने आधीन किया था। प्राग्बौद्धकाल में यह भी एक महत्वपूर्ण राज्य था और अवन्ती के साथ इस का प्रायः संघर्ष जारी रहता था। अन्त में यह अवन्ती के आधीन हो गया था।

(१४) अवन्ती— वर्तमान समय का मालवा ही प्राचीन काल का अवन्ती राज्य था। यह भी दो भागों में विभक्त था। उत्तरीय अवन्ती की राजधानी उज्जैनी थी। दक्षिणीय अवन्ती व अवन्ती दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती नगरी थी, जो कि नर्मदा नदी के तट पर स्थित थी। बौद्ध काल में अवन्ती का राज्य बहुत शक्तिशाली था। इस का राजा प्रसिद्ध योद्धा चण्ड प्रद्योत था, जो वत्सराज उदयन को अपनी आधीनता में लाने के लिये बहुत उद्योग कर रहा था। अवन्ती के सम्बन्ध में विस्तार से हम आगे चल कर वर्णन करेंगे।

(१५) गन्धार—इस राज्य में कश्मीर, तक्षशिला का प्रदेश तथा सम्पूर्ण उत्तर पश्चिमीय भारतवर्ष सम्मिलित था। कुंभकार जातक से प्रतीत होता है कि इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। महात्मा बुद्ध के समय में इसका राजा पुक्कुसाती था, जिसने कि मगधराज बिम्बिसार के पास एक दूत मण्डल अपना सन्देश दे कर भेजा था। अवन्ती के राजा प्रद्योत से इसके अनेक युद्ध हुवे थे, जिन में यह प्रद्योत को परास्त करने में सफल हुवा था।

(१६) कम्बोज—इस राज्य का वर्णन बौद्ध साहित्य में गान्धार के साथ ही आता है। इससे यह अनुमान किया जासकता है कि यह राज्य गन्धार के समीप ही उत्तर पश्चिमीय भाग में कहीं स्थित था। इसकी राजधानी हाटक थी। पीछे से इस में भी गणतन्त्र राज्य की स्थापना होगई थी।

प्राग्बौद्ध काल के ये सोलह महाजनपद हैं। राज्यों की यह सूचि पूर्ण नहीं है। बौद्ध साहित्य में ही इन के अतिरिक्त अनेक अन्य राज्यों के नाम उपलब्ध होते हैं। पर इस में सन्देह नहीं कि बौद्ध काल के राजनीतिक इतिहास के लिये यह राज्यसूचि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसे हम इस काल के राजनीतिक इतिहास का उल्लेख करने के लिये आधार बना सकते हैं। इन विविध राज्यों में परस्पर जो संघर्ष चल रहा था। उसके सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश हमें बौद्ध साहित्य का अध्ययन करने से उपलब्ध होते हैं—उनका विवेचन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

दूसरा अध्याय

बौद्ध काल के गणराज्य

गणराज्यों की सूचि—पिछले अध्याय में जिन सोलह महाजनपदों का हमने उल्लेख किया है, उन सब में एक ही प्रकार की शासन पद्धति विद्यमान नहीं थी। उन में से कुछ राज्य राजतन्त्र थे और अन्य गणतन्त्र। गणतन्त्र राज्यों में कोई वंशक्रमानुगत राजा नहीं होता था। जनता स्वयं ही अपना शासन करती थी। षोडश महाजानपदों में वज्जी, मल्ल और सूरसेन राज्यों का गणतन्त्र होना निश्चित माना जा सकता है। पर इन के अतिरिक्त अन्य भी अनेक गणराज्यों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। हम उनकी सूचि यहां उद्धृत करते हैं—

(१) कपिल वस्तु के शाक्य
(२) रामग्राम के कोलिय
(३) मिथिला के विदेह
(४) कुशीनारा के मल्ल
(५) पावा के मल्ल
(६) पिप्पलिवन के मोरिय
(७) अल्लकप्प के बुलि
(८) सुंसुमार पर्वत के भग्ग
(९) केसपुत्त के कालाम
(१०) वैशाली के लिच्छवि

मिथिला के, विदेह और वैशाली के लिच्छवि राज्यों के संघ को वज्जी कहा जाता था। इन गणराज्यों के सम्बन्ध में अनेक महत्व पूर्ण निर्देश बौद्ध-

साहित्य में उपलब्ध होते हैं । हम इन पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे ।

शाक्य गणराज्य

शाक्य लोग और सूर्यवंश—बौद्ध साहित्य में कपिलवस्तु के शाक्य-राज्य का बहुत महत्व है । कारण यह कि महात्मा बुद्ध इसी राज्य में उत्पन्न हुए थे । शाक्य लोग जाति से क्षत्रिय थे । महात्मा बुद्ध के निर्वाण होने पर उन के भस्मावशेष के लिये शाक्य लोगों ने इसी आधार पर दावा किया था कि बुद्ध भी क्षत्रिय थे और हम भी क्षत्रिय हैं । इस लिये हमें भी उन के भस्मावशेष का अंश प्राप्त होना चाहिये । उन्होंने यह भी कहा था, कि महात्मा बुद्ध हमारी ही जाति के थे ।[1] बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार शाक्य जाति का सम्बन्ध प्राचीन इक्ष्वाकुवंश के साथ जोड़ा गया है । सुमंगलविलासिनी[2] और महावंश[3] की कथाओं में शाक्यों को राजा ओक्काक या इक्ष्वाकु का वंशज बताया गया है । विष्णु पुराण से भी इसी मत की पुष्टि होती है ।[4] महावस्तु में शाक्यों को आदित्यबन्धु कहा गया है ।[5] आदित्यबन्धु और सूर्यवंशी एक ही बात है । भारतीय अनुश्रुति के अनुसार इक्ष्वाकु सूर्यवंश का था । एक अन्य स्थान पर महावस्तु में महात्मा बुद्ध को, जो कि शाक्य जाति के थे, 'इक्ष्वाकु कुलसम्भव' विशेषण से कहा गया है ।[6] इस प्रकार इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि शाक्य गणराज्य के क्षत्रिय प्राचीन सूर्यवंश के क्षत्रिय थे ।

---

1. Digha Nikaya (Mahaparinibban Suttanta) vol. ii, p. 165.
2. Sumangalavilasini, pt. i, pp. 258-260.
3. Mahavansa, edited by Geiger, p. 12-14.
4. Vishnu purana, (Wilson) vol. iv, Ch. xxii, pp. 167-172.
5. Mahavastu, ii, p. 303.
6. Mahavastu, iii, p. 247.

राजधानी और नगर—शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। यह एक अत्यन्त सुन्दर और महान् नगर था। महावस्तु के अनुसार यह सात दीवारों से घिरा हुआ था।[1]

कपिल वस्तु के अतिरिक्त शाक्य राज्य के अन्य भी अनेक नगरों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। इन के नाम सामगोम, उलुम्पा, देवदह, चातुमा, सक्कर, सीलावती, और खोमदुस्स हैं।[2]

सामाजिक दशा—बौद्ध साहित्य के अध्ययन से शाक्य लोगों के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। शाक्य लोग एकपत्नीव्रत होते थे। उन में बहुविवाह की प्रथा नहीं थीं। शाक्य लोग अपनी स्त्रियों और कन्याओं को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इसी कारण वे विवाह के समय इस बात का ध्यान रखते थे कि वर वस्तुतः योग्य हो। केवल धन को देख कर विवाह करना वे अपनी मानमर्यादा के प्रतिकूल समझते थे। जिस समय राजा शुद्धोदन ने अपने कुमार सिद्धार्थ के विवाह के लिये कुमारी गोपा के पिता दण्डपाणीके पास सन्देश भेजा, तो उसने उत्तर दिया—

"माननीय राजकुमार का पालन पोषण घर में बहुत भोग विलास के बीच में हुआ है। हमारे घर की यह मर्यादा है कि अपनी कन्या उसी को दी जावें, जो सम्पूर्ण शिल्पों में विख्यात हो। राजकुमार को शिल्पों का कोई ज्ञान नहीं है। उसे तलवार, धनुष व अन्य शस्त्रों से युद्ध करने का भी ज्ञान नहीं हैं। इस दशा में कुमार के साथ मैं अपनी कन्या का विवाह कैसे कर सकता हूं ?"[3]

जिस समय कुमार सिद्धार्थ ने पांच सौ कुमारों के मुकाबले में यह सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः वह सम्पूर्ण शिल्पों और युद्ध विद्या में विख्यात है, तभी उसका विवाह शाक्य कुमारी के साथ हो सका।[4]

---

1. Mahavastu, ii, p. 75.
2. Cambridge History of India, vol. i, p. 175.
3. Lalitavistara, p. 243.
4. Mahavastu, ii, 48.

शाक्य लोग अपनी जात से बाहर विवाह सम्बन्ध करना अनुचित समझते थे । उन्हें अपनी जाति और वंश का इतना अभिमान था, कि अपने से बाहर के बड़े शक्तिशाली राजाओं के साथ भी विवाह सम्बन्ध करना वे अपने लिये अपमान जनक समझते थे । बौद्ध साहित्य में कथा आती है, कि कोशल महाजानपद के राजा प्रसेनजित् ने शाक्य जाति के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से एक राजदूत कपिलवस्तु भेजा । उस समय शाक्य गण (शाक्य राज्य की राजसभा) का अधिवेशन हो रहा था । इस राजसभा के सम्मुख राजदूत ने राजा प्रसेनजित् का सन्देश पहुंचा दिया । सन्देश यह था— 'मैं आप के परिवार के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूं, अतः अपनी एक कुमारी का मेरे साथ विवाह कर दीजिये ।'

राजा प्रसेनजित् का यह सन्देश सुन कर शाक्य लोग बहुत चिन्तित हुवे । वे सोचने लगे— राजा प्रसेनजित् का राज्य हमारे बहुत समीप है । यदि हमने उसे अपनी कुमारी देने से इन्कार किया, तब वह बहुत क्रुद्ध होगा और हम पर आक्रमण किये बिना न रहेगा । पर यदि हम अपनी कुमारी का विवाह उसके साथ कर देते हैं, तो हमारी कुल मर्यादा टूटती है । यह भी अच्छी बात नहीं है ।

इस दुविधा की दशा में महानाम नाम के शाक्य ने एक उपाय निर्दिष्ट किया । उसने कहा— 'इस विषय में विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं । मेरी एक कन्या है । जिस का नाम है, वासभखत्तिया । वह एक दासी की पुत्री है । देखने में वह अत्यन्त सुन्दर है । उसकी आयु भी सोलह वर्ष की है । पिता की दृष्टि से वह शाक्य कुल की भी है । हम उसे प्रसेनजित् के साथ विवाह के लिये भेज देंगे ।'[1]

इस कथा से स्पष्ट है, कि शाक्य लोग अपनी कन्याओं का विवाह जाति से बाहर करना उचित नहीं समझते थे । पुराने समय में अनेक जातियों में

---

1. Cowell—Jatak, vol. iv, pp. 91-92.

अपने वंश की उच्चता का विचार बहुत गहरा गया हुआ था। केवल भारत में नहीं, अपितु प्राचीन ग्रीस और रोम के उच्च वंशों के लोग अपने कुल की शुद्धता का बहुत ध्यान रखते थे।

शिक्षा—शाक्य राज्य में विविध शिल्पों और विद्याओं की शिक्षा के लिये एक विद्यालय की सत्ता भी बौद्ध साहित्य से सूचित होती है। दीघनिकाय की टीका में एक शिल्प विद्यालय का उल्लेख आता है, जो कपिल वस्तु के आम्रोद्यान में स्थित था और जिसके विशाल भवन में विविध शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी।[1] शाक्य कुमारों के लिये शिक्षा का महत्व बहुत ही अधिक था, क्योंकि शिक्षा के बिना उन्हें विवाह के लिये कन्या का मिल सकना असम्भव था।

युद्ध विद्या में प्रवीणता प्राप्त कराने के लिये कपिलवस्तु में एक पृथक् विद्यालय भी था, जिसमें धनुर्विद्या, खड्ग संचालन आदि की शिक्षा दी जाती थी।[2]

शाक्य लोगों में स्त्रियों की दशा बहुत उन्नत थी। उनकी दशा का अनुमान इसी बात से किया जासकता है, कि बौद्ध संघ में प्रविष्ट होने के लिये सब से पूर्व शाक्य स्त्रियां ही तैयार हुई थीं और उन्होंने ही महात्मा बुद्ध को इस बात के लिये बाधित किया था कि वे स्त्रियों के लिये पृथक् भिक्षुणी संघ की व्यवस्था करें। जिस महिला ने सब से पूर्व अपने घर और सांसारिक सुखों का परित्याग कर भिक्षु जीवन को स्वीकृत किया, उसका नाम महाप्रजापति गौतमी था और वह शाक्य कुल की ही स्त्री थी।

शासनव्यवस्था—शाक्य गणराज्य में जनतन्त्र शासन पद्धति प्रचलित थी। उसका कोई वंशक्रमागत राजा नहीं होता था। राज्य के मुखिया (राष्ट्रपति) को ही 'राजा' कहा जाता था। बौद्ध काल के अन्य अनेक राज्यों में प्रत्येक कुल के मुखिया को 'राजा' कहते थे, लिच्छवियों में यही व्यवस्था थी। पर शाक्यों में प्रत्येक मुखिया व सरदार को राजा नहीं कहा जाता था, वहां 'राजा' केवल एक होता था, जिसे निर्वाचित किया जाता था। महात्मा बुद्ध के

1. Dialogues of the Buddha, vol. iv, p. iii.
2. Watters—On Yuan Chwang, vol. ii, p. 13.

पिता शुद्धोधन शाक्य राज्य के वंशक्रमागत राजा नहीं थे, वे कुछ समय के लिये 'राजा' निर्वाचित किये गये थे। यही कारण है कि जहां बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर उनके नाम के साथ 'राजा' का विशेषण आता है, वहां अन्यत्र उनके जीवन काल में ही उनके छोटे भतीजे भद्दिय को 'राजा' कहा गया है और उन्हें केवल 'शाक्य शुद्धोधन' लिखा गया है।[1]

शाक्य राज्य में शासन करने के लिये एक परिषद् होती थी, जिसके अधिवेशन कपिलवस्तु के सन्थागार में हुआ करते थे। बौद्ध साहित्य में कपिल वस्तु के सन्थागार (सभाभवन) का अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है। अम्बट्ठसुत्त में यह वर्णन आता है कि एक वार पौष्करसाति नाम का ब्राह्मण शाक्यों की राजधानी कपिल वस्तु में गया, वहां सन्थागार में बहुत से शाक्य ऊंचे आसनों पर बैठे हुवे थे।[2] महावस्तु के अनुसार बनारस के राजघराने के ३२ कुमार कपिलवस्तु में बसने के लिये आये। उनके प्रस्ताव को शाक्य परिषद् के सम्मुख पेश किया गया। इस शाक्य परिषद् के सदस्यों की संख्या महावस्तु में पांचसौ लिखी गई है। राजा प्रसेनजित् ने शाक्य कुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा से जो राजदूत भेजा था, उसने भी अपने राजा के सन्देश को सन्थागार में एकत्रित पांच सौ शाक्यों की परिषद् के सम्मुख उपस्थित किया था।[3] ललित विस्तार के अनुसार भी शाक्यों की परिषद् के सदस्यों की संख्या पांच सौ थी।[4] इससे स्पष्ट है, कि शाक्य परिषद् में प्रत्येक नागरिक सदस्य नहीं होता था। शाक्य राज्य एक प्रकार का श्रेणि तन्त्र (Aristocracy) राज्य था, जिसमें कुलीन शाक्य घरानों के मुखिया ही शासन का सब कार्य करते थे। इन पांच सौ सदस्यों की नियुक्ति किस प्रकार होती थी, इस विषय में कोई निर्देश बौद्ध साहित्य में उपलब्ध नहीं होता।

---

1. Rhys Davids—Buddhist India, p. 19
2. Dialogues of the Buddha, I, p. 113
3. Cowell—Jatak, vol IV, pp. 91-92
4. Lalitavistara pp. 136-137

कपिलवस्तु के सन्थागार का बौद्ध साहित्य में एक अन्य स्थान पर भी उल्लेख मिलता है। जिस समय महात्मा बुद्ध कपिल वस्तु के समीप न्यग्रोधाराम में ठहरे हुए थे, तब शाक्य लोगों का नया संथागार बन कर तैयार हुआ था। शाक्यों की प्रार्थना पर महात्मा बुद्ध ने इस नवीन सन्थागार का उद्घाटन किया और रातभर उनके अपने, आनन्द तथा मोग्गलान के उपदेश होते रहे।[1] सन्थागार को शाक्य लोग जो महत्त्व देते थे, वह उनके राज्य की शासन प्रणाली पर अच्छा प्रकाश डालता है।

डा० रीजडेविड्स के अनुसार शाक्य राज्य के अन्य नगरों में भी इसी प्रकार के सन्थागार विद्यमान थे, और उनके निवासी अपने सन्थागारों में एकत्रित होकर अपने स्थानीय नियमों की व्यवस्था करते थे।[2] सम्पूर्ण राज्य का शासन कपिलवस्तु के केन्द्रीय सन्थागार में एकत्रित शाक्य परिषद् द्वारा होता था।

शाक्यों के राजनीतिक इतिहास के सम्बन्ध में बौद्ध साहित्य से विशेष परिचय नहीं मिलता। पर इस में सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध के समय में यह एक स्वतन्त्र तथा समृद्ध राज्य के रूप में विद्यमान था। इसकी स्वतन्त्रता का अन्त साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति द्वारा हुआ। कोशल देश के राजा विडूडभ (विरुद्धक—प्रसेनजित् का पुत्र) ने आक्रमण कर इसकी स्वतन्त्र सत्ता को किस प्रकार नष्ट कर दिया, इस पर हम आगे प्रकाश डालेंगे।

लिच्छवी राज्य

जिस प्रकार महात्मा बुद्ध के कारण कपिलवस्तु के शाक्यों का महत्व है, उसी प्रकार वर्धमान महावीर के कारण वैशाली के लिच्छवी भी विशेष महत्व रखते हैं। जैनधर्म के संस्थापक तीर्थंकर महावीर का प्रादुर्भाव वैशाली के राज्यसंघ में हुआ था। महावीर स्वयं लिच्छवि नहीं थे। वैशाली के शक्तिशाली राज्यसंघ

---

1. Rhys Davids—Buddhist India p. 20
2. Ibid p. 20

में सम्मिलित ज्ञातृक जाति में उन का जन्म हुआ था। ज्ञातृक लोग वैशाली राज्यसंघ के अन्तर्गत थे। यही कारण है कि जैनों का धार्मिक साहित्य इस संघ के विषय में विशेष प्रकाश डालता है। बौद्ध साहित्य से भी इस के विषय में बहुत सी ज्ञातव्य बातें उपलब्ध होती है।

लिच्छवि और क्षत्रिय जाति—शाक्यों की तरह लिच्छवि लोग भी क्षत्रिय थे। महात्मा बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् उनके भस्मावशेष के एक हिस्से के लिये लिच्छवि लोगों ने भी इस आधार पर दावा किया था कि भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं, इस लिये हमें भी उनके भस्मावशेष का भाग मिलना चाहिये, ताकि हम उस के सम्मान के लिये स्तूपों का निर्माण कर सकें।[1] जैन साहित्य के अनुसार भी लिच्छवि लोग क्षत्रिय वर्ण के थे।[2]

राजधानी वैशाली—लिच्छवि राज्य की राजधानी वैशाली नगर था। प्राचीन भारतीय नगरों में वैशाली का बहुत महत्व है। इसी कारण प्राचीन ग्रन्थों में इस की स्थापना के सम्बन्ध में अनेक कथायें उपलब्ध होती हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार इस का संस्थापक राजा इक्ष्वाकु का पुत्र विशाल था, जिसके कारण इसका नाम वैशाली पड़ा था।[3] विष्णुपुराण के अनुसार वैशाली का संस्थापक कुमार विशाल ऐक्ष्वाकुवंश के राजा तृणविन्दु का पुत्र था।[4] वैशाली का संस्थापक चाहे कोई हो, पर इस में कोई सन्देह नहीं कि यह नगरी बहुत प्राचीन थी और प्राचीन नगरों में इसका महत्व बहुत अधिक था।

---

1. Dialogues of the Buddha (Mahaparinibban Suttanta) Vol. III, p. 187.
2. Jacobi. Kalpa Sutra, p. 266.
३. इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुनः परमधार्मिकः।
   अलम्बुषायामुत्पन्नः विशाल इति विश्रुतः।
   तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता॥
   (वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४७, श्लोक ११, १२)
4. Wilson – Vishnu puran Vol. III, p. 246.

वैशाली का वर्णन अनेक प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। उनसे सूचित होता है, कि यह नगर बहुत विशाल, विस्तृत और समृद्ध था। रामायण में वैशाली नगरी को, रम्य, दिव्य और स्वर्गोपम, इन विशेषणों से विभूषित किया गया है।[1] जातक ग्रन्थों के अनुसार महात्मा बुद्ध के समय में वैशाली नगरी तीन प्राचीरों से, जो एक दूसरे से एक गव्यूति की दूरी पर स्थित थीं, घिरी हुई थी और इन प्राचीरों में तीन बड़े प्रवेश द्वार थे, जो ऊंचे तोरणों व बुर्जों से सुशोभित थे।[2]

तिब्बती अनुश्रुति में वैशाली का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—'वैशाली तीन भागों में विभक्त था। प्रथम भाग में सात हजार मकान थे, जिन के बुर्ज सोने के बने हुए थे। दूसरे भाग में चौदह हजार मकान थे, जिन के बुर्ज चांदी के बने हुए थे। तृतीय भाग में इक्कीस हजार मकान थे, जिनके बुर्ज तांबे के बने हुवे थे। इन तीनों भागों में उच्च, मध्य और निम्न श्रेणियों के लोग अपनी स्थिति के अनुसार निवास करते थे।[3]

ह्यूनत्सांग ने भी वैशाली का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "प्राचीन वैशाली नगर की परिधि साठ या सत्तर ली थी। पर प्रासादों से पूर्ण नगर के भाग की परिधि चार या पांच ली थी।[4]

ललित विस्तार में वैशाली का वर्णन करते हुए उसे अत्यन्त समृद्ध, वैभवशाली, धन धान्य से भरपूर, अत्यन्त रमणीक, विविध प्रकार के मनुष्यों से पूर्ण, विविध प्रकार की इमारतों से सुसज्जित, बाग, पार्क, उद्यान आदि से समकृलंत लिखा गया है।[5]

---

1. विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा।
   वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४, श्लोक १०
2. Fausball–Jatak p. 504
3. Rockhill–Life of the Buddha, p. 62.
4. Watters–On Yuan Chwang, Vol. II, p. 63.
5. इयं वैशाली महानगरी ऋद्धा च स्फीता च क्षेमा च सुभिक्षा च

इसी प्रकार अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी वैशाली का बहुत समृद्ध तथा वैभवशाली नगर के रूप में वर्णन किया गया है। इस में कोई सन्देह नहीं कि वैशाली बहुत ही उन्नत नगर था। लिच्छवी जाति की राजधानी होने के अतिरिक्त यह वज्जि राज्यसंघ—जिस में कुल मिलाकर आठ गणराज्य सम्मिलित थे—की भी राजधानी था। इस दशा में यह बिलकुल स्वाभाविक है कि यह बहुत ही उन्नत और समृद्ध दशा को पहुंच गया हो। आचार्य महावीर और महात्माबुद्ध अपने धर्मों का प्रचार करते हुवे अनेक बार यहां आये थे। यही कारण है, कि इन धर्मों के साहित्य में वैशाली का अनेक बार उल्लेख आता है और प्रसंगवश वहां के निवासियों के आचार व्यवहार, चरित्र आदि के सम्बन्ध में बहुत से महत्व पूर्ण निर्देश उपलब्ध होते हैं।

वर्तमान समय में विहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले में बसाड़ नामक एक गांव है, जो गण्डक नदी के बांये तटपर स्थित है। इसी स्थान पर प्राचीन समय में प्रसिद्ध वैशाली नगरी विद्यमान थी।

सामाजिक जीवन—लिच्छवि लोगों का सामाजिक जीवन बहुत उन्नत था। वे एक दूसरे के साथ बहुत सहानुभूति रखते थे। जब कोई लिच्छवी बीमार पड़ता था, तो दूसरे उससे हालचाल पूछने के लिये आना अपना कर्तव्य समझते थे। यदि किसी के घर में कोई संस्कार या उत्सव हो, तो दूसरे लोग उस में उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे।

रंगों से प्रेम—लिच्छवि लोगों को सौन्दर्य से बहुत प्रेम था। वे अपनी वेशभूषा तथा बाह्य आकृति पर विशेष ध्यान देते थे। जिस समय महात्मा बुद्ध अन्तिम वार वैशाली पधारे, तो लिच्छवि लोगों ने उनका किस प्रकार स्वागत किया, इसका वर्णन अवलोकनीय है। हम उसे यहां उद्धृत करते हैं—

रमणीया चाकीर्णबहुजनमनुष्या च वितर्दिनिर्व्यूहतोरणगवाक्ष-हर्म्यकूटागारप्रासादतलसमलङ्कृता च पुष्पवाटिकावनराजि-संकुसुमिता च।
Lalitvistar edited by Lefnann chap. III, p. 21.

"उन्होंने अपने शानदार और भव्य रथों को तैयार करने का हुकुम दिया और उन पर चढ़ कर वैशाली से बाहर निकले। उनमें से कुछ नीले रंग के थे, उन्होंने कपड़े भी नीले पहने हुवे थे, उनके आभूषण भी नीले रंग के थे कुछ श्वेत रंग के थे, उनके वस्त्र और आभूषण भी श्वेत रंग के थे। कुछ लाल रंग के थे, उन के वस्त्र और आभूषण भी लाल रंग के थे। कुछ पीले रंग के थे, उनके वस्त्र और आभूषण भी पीले रंग के थे।"[1]

महापरिनिर्वाण सूत्र से यह उद्धरण लिया गया है। परन्तु इसी प्रकार का वर्णन अंगुत्तर निकाय में भी उपलब्ध होता है।[2] महावस्तु में लिच्छवियों के इन्हीं रंगों का और भी विशद रूप से वर्णन किया गया है— "कुछ लिच्छवि लोग हैं, जिनके घोड़े नीले रंग के हैं। उनके रथ, रश्मियां, चाबुक, दण्ड, वस्त्र, आभूषण, पगड़ी, छतरी, तलवार, रत्न, जूता आदि प्रत्येक वस्तु नीले रंग की है।"[3] इसी प्रकार पीत, मञ्जिष्ठ, लाल, श्वेत, हरे और रङ्गविरंगे लिच्छवियों का वर्णन महावस्तु में पाया जाता है।

कई विद्वानों ने कल्पना की है, कि लिच्छवियों का इन विविध रंगों के वस्त्र, आभूषण आदि पहनना उनके आन्तरिक श्रेणिभेद को सूचित करता है। पर यह भी सम्भव है, कि वे केवल रंगों के प्रेम के कारण ही इस प्रकार विविध रंगों को अपनाते हों।

तपस्यामय जीवन—लिच्छवि लोगों का जीवन बहुत तपस्यामय होता था। मगध के प्रधान मन्त्री वत्सकारने जब उन पर आक्रमण के उपाय के सम्बन्ध में महात्मा बुद्ध से पूछा, तो उन्होंने उत्तर देते हुए कहा—"हे भिक्खुओ, इधर इन लिच्छवियों की तरफ़ देखो। ये कितने मेहनती और कष्ट सहन करने वाले हैं। इनका जीवन कितना कठोर है, ये सोते समय लकड़ी के टुकड़ों को ही तकिये के स्थान पर प्रयोग में लाते हैं। धनुर्विद्या में वे कितने उत्साही हैं। मगध राज

---

1. Buddhist Suttas (Mahaparinibban Suttanta), p. 31
2. Anguttara Nikaya. pt. iii, p. 239
3. Mahavastu, vol. I, p. 259

वैदेहीपुत्र अजातशत्रु उनमें कोई दोष नहीं पासकता। परन्तु, हे भिक्खुओ, यदि भविष्य में लिच्छवि लोग नाजुक हो जावें, उनके हाथ और पैर कोमल होजावें, वे सूर्य के उदय होने तक रूई के नरम नरम गदेलों पर सोने लग जावें, तब इसमें सन्देह नहीं कि वैदेहीपुत्र अजातशत्रु को उनमें दोष नजर आजावेंगे और उसे उन पर आक्रमण करने के लिये अवसर प्राप्त हो जायेगा।[1]

निस्सन्देह, महात्मा बुद्ध के समय में लिच्छवि लोग बहुत तपस्यामय तथा कठोर जीवन व्यतीत करते थे। यही कारण है कि उन पर आक्रमण करने का साहस कोई पड़ौसी राज्य नहीं करता था।

मांस भक्षण मर्यादित था— यद्यपि लिच्छवि लोग पूर्णतया निरामिष भोजी नहीं थे, पर मांसभक्षण को उन्होंने मर्यादित अवश्य किया हुआ था। वे चान्द्रमास की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णमासी के अतिरिक्त अन्य तिथियों में पशुहिंसा करना पाप समझते थे।[2]

शिक्षा—लिच्छवि लोगों को शिक्षा से बहुत प्रेम था। वे विद्याध्ययन के लिये दूर दूर देशों में जाया करते थे। महालि नाम का एक लिच्छवि कुमार विविध विद्याओं और शिल्पों का अध्ययन करने के लिये तक्षशिला गया था। उसने तक्षशिला में सम्पूर्ण विद्याओं और शिल्पों में प्रवीणता प्राप्त कर वैशाली में एक शिक्षणालय की स्थापना की और पांच सौ कुमारों को शिक्षित किया। इन पांचसौ कुमारों ने भी विद्यादान का क्रम जारी रखा। इस प्रकार बहुत शीघ्र ही सम्पूर्ण लिच्छवि राज्य में शिक्षा का विस्तार होगया।

विवाह मर्यादा—शाक्यों की तरह लिच्छवि लोग भी अपने वंश की शुद्धता और कुलीनता को बड़ा महत्व देते थे। यही कारण है कि वे अपनी कन्या का लिच्छवि भिन्न कुमार के साथ विवाह नहीं करते थे। लिच्छवियों में भी परस्पर विवाह में अनेक रुकावटें थीं। तिब्बति अनुश्रुति के अनुसार हमें ज्ञात

---

1. Samyutta Nikaya (Pali Text Society) pt. II, p. 267-268
2. Cowell and Neil —Divyavadan, p. 136

होता है, कि "वैशाली के लोगों ने यह नियम बनाया हुआ है, कि प्रथम भाग की कन्या का विवाह प्रथम भाग में ही हो सके, द्वितीय व तृतीय भाग में नहीं। द्वितीय भाग में उत्पन्न कन्या का विवाह प्रथम और द्वितीय भाग में हो सके, तृतीय में नहीं। तृतीय विभाग में उत्पन्न कन्या का विवाह तीनों भागों में हो सके। पर वैशाली से बाहर किसी कन्या का विवाह सम्भव नहीं था।"[1]

तिब्बति अनुश्रुति के इस उद्धरण से यह कल्पना कर सकना बिल्कुल स्वाभाविक है कि वैशाली के तीन भागों का अभिप्राय तीन वर्णों से है। प्राचीन भारतीय मर्यादा के अनुसार ब्राह्मण कन्या का विवाह केवल ब्राह्मण कुमार से ही हो सकता था। पर क्षत्रिय कन्या का विवाह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों में हो सकता था। इसी प्रकार वैश्य कन्या का विवाह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य— इन तीनों वर्णों में हो सकता था। इसे अनुलोम विवाह कहा जाता था।

लिच्छवि लोग स्त्रियों का बड़ा आदर करते थे। उनमें स्त्रियों का सतीत्व पूर्णतया सुरक्षित था। यही कारण है, कि महात्मा बुद्ध उनके सम्बन्ध में कहते हैं—"लिच्छवि जाति की कोई भी महिला या कन्या बलात्कार द्वारा प्रतिरुद्ध व अपहृत नहीं की जासकती।[2]

मृतक संस्कार—लिच्छवि लोगों में मृतक संस्कार का तरीका बड़ा अद्भुत था। प्राचीन भारतवर्ष में प्रायः मृतक शरीरों को जलाने की प्रथा विद्यमान थी। पर लिच्छवि लोग जलाने के अतिरिक्त अपने मुर्दों को जमीन में भी गाड़ते थे। इतना ही नहीं, वर्तमान समय के पारसियों की तरह उनमें यह भी प्रथा थी कि वे अपने मृतशरीरों को खुला छोड़ देते थे ताकि पक्षी पशु उनका स्वच्छन्द रूप से भक्षण कर सकें।[3]

---

1. Rockhill-Life of the Buddha, p. 62
2. Buddhist Suttas (Sacred Books of the East) vol. xi, p. 3-4
3. Beal's Romantic Legend of Sakya Buddha, pp. 159-160

उत्सव—लिच्छवि लोग स्वभाव से ही बड़े विनोदी और मौजी थे। यही कारण है कि अपने उत्सवों को वे बड़ी धूमधाम के साथ मनाते थे। बौद्ध साहित्य में लिच्छवियों के एक उत्सव का वर्णन आता है, जिसे 'सब्बरत्तिवारो' लिखा गया है। इस में खूब नाचना और गाना होता था। बाजे बजते थे। तुरही, ढोल तथा अन्य बाजे प्रयोग में लाये जाते थे।

शासन पद्धति—लिच्छवि राज्य की शासन पद्धति गणतन्त्र थी। उस में कोई वंशक्रमानुगत राजा नहीं होता था। राज्य की शासन शक्ति लिच्छवि जनता में निहित थी। कौटलीय अर्थशास्त्र में लिच्छवि राज्य को 'राजशब्दोपजीवी संघ' कहा गया है।[1] इसका अभिप्राय यह है कि लिच्छवि लोगों में प्रत्येक अपने को 'राजा' समझता था। ललित विस्तार से 'राजशब्दोपजीवी' शब्द का अर्थ भली भांति स्पष्ट हो जाता है। वहां लिखा है— वैशाली के निवासियों में उच्च, मध्य, वृद्ध, ज्येष्ठ आदि के भेद का विचार नहीं किया जाता। वहां प्रत्येक आदमी अपने विषय में यही समझता है कि "मैं राजा हूं, मैं राजा हूं।" कोई किसी से छोटा बनना स्वीकृत नहीं करता।[2]

लिच्छवि राज्य की राजसभा के अधिवेशन सन्थागार में होते थे। इस सभा में कितने लिच्छवि 'राजा' सम्मिलित होते थे, इसका निर्देश भी बौद्ध साहित्य में मिलता है। एकपण्ण जातक में लिखा है कि वैशाली में जो राजा राज्य करते हैं, उनकी संख्या सात हजार सात सौ सात है। साथ ही, राजाओं के साथ शासन करने वाले उपराजा, सेनापति और भाण्डागारियों की संख्या भी इतनी ही (अर्थात् इन में से प्रत्येक सात हजार सात सौ सात) है।[3] चुल्लक-

---

१. लिच्छविक वृज्जिक कुकुर कुरु पाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः संघाः। कौ. अर्थ.

२. 'नोच्च-मध्य-वृद्ध-ज्येष्ठानुपालिता, एकैक एव मन्यते अहं राजा अहं राजेति। नच कस्यचिच्छिष्यत्वमुपगच्छति। Lalitavistar, ch. iii,

३. तत्थ निच्चकालं रज्जं कारेत्वा वसंतानं येव राजूनं सत्तसहस्सानि सत्त-सतानि सत्त च। राजानो होंति तत्तका, येव उपराजानो तत्तका सेनापतिनो तत्तका, तत्तका भण्डागारिका। Fausboll, Jatak. vol. i, p. 504

लिङ्ग जातक में लिखा है कि सात हजार सात सौ सात लिच्छवि राजा वैशाली में रहते थे। वे सब परस्पर विवाद तथा प्रश्नोत्तर करते रहते थे।[1] अट्ठकथा में भी लिच्छवियों के इतने ही राजा, उपराजा और सेनापति लिखे हैं। लिच्छवियों के सात हजार सात सौ सात राजाओं, उपराजाओं, सेनापतियों और भाण्डागारियों का क्या अभिप्राय है, इस प्रश्न पर ऐतिहासिकों में मतभेद है। कुछ के विचार में इस संख्या का कोई विशेष महत्व नहीं है। यह केवल इतना ही सूचित करती है कि लिच्छवि राज्य में शासन करने वाली श्रेणी बहुत बड़ी थी। कुछ ऐतिहासिकों का यह खयाल है कि वैशाली में सात हजार सात सौ सात शासक परिवार थे। वैसे तो वैशाली की आबादी बहुत अधिक थी, क्योंकि बौद्ध साहित्य में यह वर्णन आता है कि जब महात्माबुद्ध वहां यात्रा करते हुवे गये, तो १६८००० आदमी उनका स्वागत करने के लिये गये।[2] इससे यह स्पष्ट है कि वैशाली की आबादी बहुत अधिक थी। वैशाली जैसे महान् और प्रख्यात नगर की आबादी यदि लाखों में हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इस दशा में यही कल्पना ठीक प्रतीत होती है कि वैशाली में सात हजार सात सौ कुलीन लिच्छवि परिवारे निवास करते थे, जिनमें शासन शक्ति निहित थी। वे सब वैशाली के सन्थागार में एकत्रित हो शासन कार्य करते थे। वे अच्छे जमीदार भी होते थे, इस लिये यदि उनके साथ उपराजा, सेनापति और भण्डागारिक भी हों, तो यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं है।

इन राजाओं का राज्याभिषेक भी होता था।[3] क्योंकि प्रत्येक लिच्छवि अपने को राजा समझता था, इस लिये उन सबका राज्याभिषेक होना भी आवश्यक था।

राज्य में एक शासनाधिकारी होता था जिसे नायक कहते थे। इस नायक की नियुक्ति निर्वाचन द्वारा होती थी।[4] सम्भव है, कि यह नायक ही

1. Fausball–Jatak vol. iii, p. 1
2. Mahavastu vol. i, p. 256
3. Fausball–Jatak, vol iv, p. 148
4. Rockhill–Life of the Buddha, p. 62

लिच्छवी राजाओं में प्रधान व राष्ट्रपति का कार्य करता हो। सम्भवतः, इसका कार्य लिच्छवि राज सभा के नियमों को क्रिया रूप में परिणत करना होता था।

न्याय व्यवस्था—लिच्छवी राज्य की न्याय व्यवस्था बड़ी अद्भुत थी। अभियुक्त लिच्छवि को पहले विनिच्चय महामात्त (विनिश्चय महामात्र) नामक कर्मचारी के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। इस महामात्त का कार्य्य यह होता था कि वह अभियुक्त पर किये गये आरोप की जांच करे। यदि तो विनिच्चय महामात्त अभियुक्त को निरपराधी समझे, तो वह उसे छोड़ देता था। अन्यथा वह उसे वोहारिक व व्यावहारिक नामक कर्मचारी के सन्मुख उपस्थित करता था। विनिच्चय महामात्त का यह अधिकार नहीं था कि वह अभियुक्त को सजा दे सके। व्यावहारिक यदि अभियुक्त को निरपराधी समझे तो उसे छोड़ सकता था। पर दण्ड देने का अधिकार उसे भी नहीं था। अपराधी होने की दशा में व्यावहारिक अभियुक्त को सुत्तधर व सूत्रधर नामक कर्मचारी के सम्मुख उपस्थित करता था। सूत्रधर भी अभियुक्त को छोड़ सकते थे। पर यदि वे उसे अपराधी पावें तो अट्ठकुलक नामक कर्मचारी के सम्मुख पेश करते थे। अट्ठकुलक के बाद अभियुक्त को क्रमशः सेनापति, उपराजा और राजा के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। राजा को भी स्वयं दण्ड देने का अधिकार नहीं था। वह 'पवेणिपोत्थक' नामक कर्मचारी के सामने अभियुक्त को पेश करता था। इस प्रकार इतने राजकर्मचारियों के सम्मुख अपराधी साबित होने के अनन्तर ही किसी अभियुक्त को दण्ड मिल सकता था। अभियुक्त को छूटने के अवसर तो बहुत अधिक थे, पर दण्ड तभी मिल सकता था, जब उसका अपराध पूर्णतया साबित हो जावे।[1]

लिच्छवियों का वह शक्तिशाली राज्य समीप के साम्राज्यवादी राजाओंकी दृष्टि में कांटे की तरह चुभ रहा था। जिस समय मगध के सम्राटों ने अपनी शक्ति का विस्तार, गंगा के उत्तर में राजाओं को परास्त कर, करना प्रारम्भ किया, तो

---

1. AtthaKatha (Commentary of Buddhaghosa on Maha-parinibban-Suttanta)

लिच्छवि राज्य देर तक उनका सामना नहीं कर सका। लिच्छवी राज्य की स्वतन्त्रता का किस प्रकार विनाश हुआ, इस पर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

विदेह राज्य

मिथिला का विदेहराज्य भारतीय इतिहास में बहुत प्राचीन है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में इसका उल्लेख आता है। इस देश के राजा जनक वैदिक साहित्य और अध्यात्म विद्या के बहुत भारी पण्डित होते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में विदेह के राजा जनक की परिषद में अध्यात्म विद्या सम्बन्धी विवादों का उल्लेख बड़े विस्तार के साथ किया गया है। रामायण [1] महाभारत [2] और पुराणों में विदेह के राजाओं का बड़े विस्तार से वर्णन आता है। हमें इस इतिहास में उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

बौद्ध साहित्य में भी विदेह राज्य के अनेक राजाओं का वर्णन मिलता है। जातक ग्रन्थों में विदेह के राजाओं के सम्बन्ध में अनेक कथायें लिखी गई हैं। [3]

इन सब प्रमाणों से ज्ञात होता है कि विदेह राज्य में पहले राजतन्त्र शासन विद्यमान था। प्राचीन वैदिक काल, रामायण काल तथा महाभारत काल में विदेह में वंशक्रमानुगत राजा होते थे। पर बौद्ध काल में इस देश में राजतन्त्र शासन का अन्त हो गणतन्त्र शासन की स्थापना हो चुकी थी। भारत के विविध राज्यों में भी भिन्न भिन्न समयों में शासन विधान में परिवर्तन होते रहे हैं, यह बात ध्यान देने योग्य है। कुरु, पाञ्चाल आदि राज्यों में प्राचीन समय में वंश क्रमानुगत राजाओं का शासन था, पर कौटलीय अर्थशास्त्र के समय में उन में

---

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ६६-७२
2. महाभारत, शान्ति पर्व, अ० १८
3. Cowell Jatak, vol iii, p. 222. vol. ii, p. 27

गण राज्य स्थापित हो चुका था । यही बात विदेह राज्य की है । राजतन्त्र से गणतन्त्र में यह परिवर्तन किस प्रकार आया, इस सम्बन्ध में हमें कोई निर्देश भारतीय साहित्य में नहीं मिलते । प्राचीन ग्रीक राज्यों में इसी प्रकार के परिवर्तन होते रहे थे । वहां अनेक राज्यों में एकतन्त्र शासन के पश्चात गणतंत्र शासन की स्थापना हुई थी । कुछ राज्यों के इतिहास हमें ज्ञात भी हैं । यही कारण है, कि प्राचीन ग्रीक इतिहास बहुत महत्वपूर्ण तथा विवेचनीय बन गया है । भारत के इन प्राचीन राज्यों के सम्बन्ध में भी यदि राजतन्त्र शासन से गणतन्त्र शासन में परिवर्तित होने का वृत्तान्त उपलब्ध हो सके, तो प्राचीन भारतीय इतिहास का महत्व बहुत अधिक बढ़ जावेगा । परन्तु खेद यही है कि इस सम्बन्ध में कोई भी महत्व पूर्ण निर्देश अब तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं ।

पर विदेह राज्य के सम्बन्ध में एक इस प्रकार के निर्देश का उल्लेख करना शायद अनुचित नहीं होगा । महाभारत शान्तिपर्व में कथा आती है कि विदेह का राजा जनक अपने ब्रह्मज्ञान में इतना लीन हो गया था, कि राज्य की परवाह करनी भी उसने बन्द करदी थी । वह इतना निर्द्वन्द्व और विमुक्त होगया था, कि मोक्ष उस को नजर सा आने लगा था । यही कारण है कि उसका कहना था कि—

"जब मेरे पास कोई धन न हो, तभी मेरे पास अनन्त धन होगा । अगर मिथिला आग द्वारा भस्म भी हो जाय, तो मेरा क्या बिगड़ता है ।"

जिस राजा की यह मनोवृत्ति हो, वह वैयक्तिकरूप से चाहे कितना ही ऊंचा और महात्मा क्यों न हो, पर अपने राजकार्य को वह कभी सफलता पूर्वक नहीं कर सकता । राजा जनक की यह मनोवृत्ति होने पर उस की धर्मपत्नी ने उसे बहुत समझाया । उसने यह भी अपील की कि तुम अपनी उस प्रतिज्ञा को याद करो, जो तुमने राज्याभिषेक के समय में की थी । उसने कहा—तुम्हारी प्रतिज्ञा और थी, पर तुम्हारे कर्म बिलकुल दूसरी तरह के हैं । उसने यह भी कहा, कि तुम धर्म का सच्चे अर्थों में पालन राजधर्म का अनुसरण करते हुवे ही भली भांति कर सकते हो । पर उसे समझ में नहीं आया, इसी लिये महाभारतकार

कहते हैं—'इस दुनिया में राजा जनक कितना तत्वज्ञानी प्रसिद्ध है, पर वह भी मूर्खता के जाल में फंस गया था ।'

---

१. विदेह राजाजनक के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण श्लोकों को हम महाभारत से उद्धृत करते हैं—

अपि गाथाः पुरागीता जनकेन वदन्त्युत ।
निर्द्वन्द्वेन विमुक्तेन मोक्षं समनुपश्यता ॥ १८ ॥
अनन्तं बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां नमे किंचित्प्रदह्यते ॥ १९ ॥
प्रज्ञाप्रासादमारुह्य न शोचेच्छोचतो जनान् ।
जगतीस्थोऽथवाद्रिस्थो मन्दबुद्धिर्न चेक्षते ॥ २० ॥

महा० शान्ति० अ० १७

कथयन्ति पुरावृत्तमितिहास मिमं जनाः ।
विदेहराज्ञः संवादं भार्यया सह भारत ॥ २ ॥
उत्सृज्य राज्यं भिक्षार्थं कृतबुद्धिं नरेश्वरम् ।
विदेह राजमहिषी दुःखिता प्रत्यभाषत ॥ ३ ॥
धनान्यपत्यं मित्राणि रत्नानि विविधानि च ।
पन्थानं पावनं हित्वा जनको मौढ्यमास्थितः ॥ ४ ॥
तं ददर्श प्रिया भार्या भैक्षवृत्तिमकिंचनम् ।
धानामुष्टि मुपासीनं निरीहं गतमत्सरम् ॥ ५ ॥
तमुवाच समागत्य भर्तारमकुतोभयम् ।
क्रुद्धा मनस्विनी भार्या विविक्ते हेतुमद्वचः ॥ ६ ॥
कथमुत्सृज्य राज्यं स्वं धनधान्यसमन्वितम् ।
कापालीं वृत्तिमास्थाय धान्यमुष्टि मुपाससे ॥ ७ ॥
प्रतिज्ञा तेऽन्यथा राजन् विचेष्टा चान्यथा तव ।
यद्राज्यं महदुत्सृज्य स्वल्पे लुभ्यसि पार्थिव ॥ ८ ॥
श्रियं हित्वा प्रदीप्तां त्वं श्ववत् सम्प्रति वीक्ष्यसे ।
अपुत्रा जननी तेऽद्य कौशल्या चापतिस्त्वया १२ ॥
आश्रिताः धर्मकामास्त्वां क्षत्रियाः पर्युपासते ।
त्वदाशामभिकांक्षन्तः कृपणाः फलहेतुकाः ॥ १३ ॥
तांश्च त्वं विफलान् कृत्वा कं नु लोकं गमिष्यसि ॥ १४ ॥

संसार के इतिहास में कितने राजाओं ने अपने राजसिंहासन का अन्त इसलिये कर दिया है, क्योंकि वे अपने राजधर्म की उपेक्षा कर प्रजा पर अत्याचार करते थे। ऐसे कितने राजाओं के वृत्तान्त हमें ज्ञात हैं। पर भारतीय इतिहास में राजा जनक का एक ऐसा उदाहरण भी है, जिसने ब्रह्मज्ञान में लीन होकर अपने राजधर्म की उपेक्षा कर दी थी। कारण चाहे कोई भी क्यों न हो, पर किसी भी राज्य में राजधर्म की उपेक्षा को सहन नहीं किया जा सकता। "मिथिला चाहे आग से भस्म भी क्यों न हो जावे, मेरा तो उस से कुछ नहीं बिगड़ता।" यह मनोवृत्ति एक वीतराग योगी के लिये कितनी ही ऊंची क्यों न हो, पर एक राजा के लिये इसे कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। राजा के लिये यह मनोवृत्ति ठीक वैसी ही है, जैसी कि रोमन सम्राट् नीरो की थी, जो कि रोम में आग लगने पर स्वयं बांसुरी बजाता हुआ उस दृश्य को देख कर खुश हो रहा था। सम्भव है कि विदेह राजा की इस मनोवृत्ति के कारण जनता ने उस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया हो और अपने राज्य में गणतन्त्र शासन की स्थापना कर ली हो।

विदेह राज्य की राजधानी मिथिला थी। जातक ग्रन्थों के अनुसार यह नगरी सात योजन विस्तृत थी।[1] मिथिला वैशाली से ३५ मील उत्तर पश्चिम में स्थित थी।

विदेह राज्य के सम्बन्ध में अनेक महत्त्व पूर्ण बातें बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होती हैं। यह व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। दूर दूर से व्यापारी लोग विदेह में व्यापार के लिये आया करते थे। जिस समय महात्मा बुद्ध सावट्ठी (श्रावस्ती—कोशल राज्य की राजधानी) ठहरे हुवे थे, तो उनका एक शिष्य

धानामुष्टेरिहार्थश्चेत् प्रतिज्ञा ते विनश्यति।
का वाहं तव को मे त्वं कश्च ते मय्यनुग्रहः॥ २१॥
प्रशाधि पृथिवीं राजन् यत्र तेऽनुग्रहोभवेत्॥ २२॥
....
सत्वक्षा जनको राजा लोकऽस्मिन्निति गीयते।
सोऽप्यासीन्मोहसम्पन्नो मा मोहवशमन्वगा॥ ३७॥
महा० शान्तिः अ० १९

1. Cowell-Jatak vol. iii, p. 222

अनेक गाड़ियों में भाण्ड (व्यापारीय पदार्थ) भर कर विदेह में विक्रय के लिये ले गया और वहां उन्हें बेच कर उनके बदले में अन्य माल खरीद कर श्रावस्ती ले आया। [1] इसी प्रकार अन्य भी अनेक निर्देश विदेह के व्यापार के सम्बन्ध में मिलते हैं।

विदेह में दान पुण्य भी खूब होता था। साधीन जातक में मिथिला के एक राजा का वर्णन आता है जिसने अपने नगर के चारों मुख्य द्वारों पर, नगर के ठीक मध्य में और अपने राजप्रासाद में छः दान गृहों का निर्माण कराया था। इन दान गृहों में प्रतिदिन छः लाख दीनारें दान में दी जाती थीं। विदेह राज की कीर्ति इस दानशीलता के कारण सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गई थी। [2]

विदेह राज्य भी वज्जिराज्यसंघ में सम्मिलित था। जिस समय मगध राज अजातशत्रु ने अपने साम्राज्य का विस्तार करते हुवे उस पर आक्रमण किया, तभी इस की स्वतन्त्रता का अन्त हुआ।

वज्जि राज्य संघ

लिच्छवि, विदेह और अन्य छः गणराज्यों से मिल कर एक संघ बना हुआ था, जिसे वज्जि राज्यसंघ कहते थे। लिच्छवि और विदेह के अतिरिक्त इस संघ में जो राज्य सम्मिलित थे, उन में से कुण्डग्राम के ज्ञातृकगण के सम्बन्ध में हमें जैन साहित्य से विशेष परिचय मिलता है। जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर ज्ञातृक जाति के क्षत्रिय थे और ज्ञातृक गण में उत्पन्न हुवे थे। उनका पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक गण के प्रमुख नेताओं में एक था। इस लिये जैन साहित्य में कुण्डग्राम के ज्ञातृक राज्य का विशेष रूप से उल्लेख आना सर्वथा स्वभाविक है।

ज्ञातृक राज्य के शासन के सम्बन्ध में डा० हार्नले ने जैन साहित्य के आधार पर इस प्रकार लिखा है—वहां का शासन एक सभा (सीनेट) द्वारा

---

1. Dhammapala's Paramatthadipani on theragatha pt. iii, p. 277-278.

2. Cowell-Jatak, vol. iv, p. 224.

होता था, जिस में क्षत्रिय परिवारों के मुख्य नेता सम्मिलित होते थे। इस सभा के अध्यक्ष को राजा कहते थे, जो उपराजा और सेनापति की सहायता से शासन का संचालन करता था।[1]

ज्ञातृक राज्य के निवासी आचार्य पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। उन का जीवन बहुत पवित्र था। वे किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते थे। वे मांस नहीं खाते थे।

वज्जिराज्यसंघ के—जिस में लिच्छवि, विदेह और ज्ञातृक राज्यों के अतिरिक्त अन्य भी पांच राज्य सम्मलित थे—शासन का स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में एक बहुत महत्वपूर्ण सन्दर्भ महापरिनिव्वाण सुत्त में उपलब्ध होता है। जिस समय मगधराज अजातशत्रु ने वज्जि राज्यसंघ पर आक्रमण करने के सम्बन्ध में सलाह करने के लिये अपने प्रधानमन्त्री वस्सकार को महात्मा बुद्ध के पास भेजा, तो उन्होंने अपने शिष्य आनन्द को सम्बोधन करके कहा—

"आनन्द! क्या तूने सुना है कि वज्जि लोग एक साथ एकत्रित होकर बहुधा अपनी सभायें करते हैं?

"हां भगवन्! सुना है।

"आनन्द! जब तक वज्जि एक साथ एकत्रित होकर बहुधा अपनी सभायें करते रहेंगे, तब तक आनन्द! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

"क्या आनन्द! तूने सुना है, कि वज्जि लोग एक हो बैठक करते हैं,[२] एक हो उत्थान करते हैं और एक हो राजकीय कार्य्य की सम्भाल करते हैं।

---

1. Hoernle–Uvasagadasao vol. ii, p. 6

२. अट्ठकथा में इसको इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

"आवश्यक बैठक के बिगुल (सन्निपात भेरी) के शब्द को सुनते ही खाते हुये भी, आभूषण पहनते हुये भी, वस्त्र पहिनते हुये भी, अधखाये ही, अधभूषित ही, वस्त्र पहिनते हुये ही एक (समान) हो जमा होते हैं। जमा हो सोच कर मन्त्रणा कर कर्त्तव्य करते हैं।"

राहुल सांस्कृत्यायन—बुद्धचर्या ५२१ पृ०

"हां भगवन ! सुना है।

"आनन्द ! जब तक वज्जि लोग एक हो बैठक करते रहेंगे, एक हो उत्थान करते रहेंगे, और एक हो राजकीय कार्य की सम्भाल करते रहेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही समझना हानि नहीं।

"क्या आनन्द, तूने सुना है, कि वज्जि लोग, जो अपने राज्य में विहित है, उसका उल्लंघन नहीं करते, जो विहित नहीं है, उस का अनुसरण नहीं करते। जो पुराने समय से वज्जिलोगों में नियम चले आरहे हैं, उन का पालन करते हैं ?

"हां भगवन मैंने सुना है।

"आनन्द ! जब तक वज्जिलोग जो अपने राज्य में विहित है, उसका उल्लंघन नहीं करेंगे, जो विहित नहीं है, उसका अनुसरण नहीं करेंगे, जो पुराने समय से वज्जि लोगों में नियम चले आरहे हैं, उनका पालन करते रहेंगे, तबतक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

"क्या आनन्द ! तूने सुना है, वज्जियों के वृद्ध (महल्लक) नेता हैं, उनका वे सत्कार करते हैं, उन्हें वे बड़ा मान कर उनकी पूजा करते हैं, उनकी बात को सुनने तथा ध्यान देने योग्य समझते हैं ?

"हां, भगवन्, सुना है।

"आनन्द ! जब तक वज्जियों में वृद्ध (महल्लक) नेता रहेंगे, उनका वे सत्कार करते रहेंगे, उन्हें वे बड़ा मानकर उनकी पूजा करते रहेंगे, उनकी बात को सुनने तथा ध्यान देने योग्य समझते रहेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।"[1]

इस संदर्भ से वज्जी राज्य संघ के शासन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, इस पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

वज्जी संघ का अन्त मगध राज अजात शत्रु द्वारा किया गया, इसका वृत्तान्त हम आगे चल कर लिखेंगे।

---

१. महापरि निब्बाण सुत्त (बुद्धचर्या) पृ० ५२०—५२१

मल्लराज्य

महात्मा बुद्ध के समय में मल्ल जाति के क्षत्रियों के दो राज्य विद्यमान थे—कुशीनारा का मल्लराज्य और पावा का मल्ल राज्य। बौद्ध काल में मल्लराज्य के महत्व का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि इसकी गणना षोडश महाजानपदों में की गई है। मल्लराज्य बहुत प्राचीन हैं। महाभारत में इनका जिकर आता है। जिस समय पाण्डवों ने दिग्विजय की थी, तो भीमसेन पूर्वदिशा की विजय करते हुवे मल्लराज्य भी गया था और उनके साथ भी उसका युद्ध हुआ था। महाभारत में अन्यत्र मल्लों का उल्लेख अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग के साथ किया गया है।

कुशीनारा का महत्त्व इसलिये बहुत अधिक है, क्योंकि महात्मा बुद्ध का स्वर्गवास (महापरिनिर्वाण) इसी नगरी में हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध को इस नगर से विशेष स्नेह था और वे वहीं पर मरना चाहते थे। वे पावा में बीमार पड़े थे। पर अपनी अन्तिम लीला कुशीनारा में समाप्त करने की इच्छा से वे वहां पर चले आये थे। उन्होंने अपने प्रधान शिष्य आनन्द को विशेष रूप से मल्लों के पास यह सूचना देने के लिये भेजा था, कि महात्मा बुद्ध का परिनिर्वाण होने वाला है, अतः मल्ल लोग मिल जावें।

"आनन्द ! कुसीनारा में जाकर कुसीनारावासी मल्लों को कहो— हे वाशिष्ठो ! आज रात के पिछले पहर तथागत का परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्ठो चलो वशिष्ठो, पीछे अफसोस मत करना कि हमारे ग्राम क्षेत्र में तथागत का परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिम काल में तथागत का दर्शन न कर पाये।"

आनन्द ने कहा—'अच्छा भगवन्।

"आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिन कर, पात्रचीवर ले, अकेले ही कुशीनारा में प्रविष्ट हुवे। उस समय कुशीनारा के मल्ल किसी कार्य से सन्थागार

---

१. Arigüttara Nikaya vol. iv, p. 252

२. महाभारत, सभापर्व ३० । ३

सन्थागार (सभा भवन) में जमा हुवे थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहां कुशीनारा के मल्लों का सन्थागार था, वहां गये ।"[1] जाकर उन्हों ने मल्लों को महात्मा बुद्ध का सन्देश सुना दिया । मल्ल लोग किस प्रकार दुखित हो महात्मा बुद्ध के अन्तिम दर्शन करने के लिये गये, इसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन महापरिनिब्बाण सुत्त में उपलब्ध होता है ।

जिस समय महात्मा बुद्ध के महापरिनिब्बाण का समाचार सुनाने के लिये आनन्द कुशीनारा गया, उस समय भी वे अपने सन्थागार में एकत्रित हो सभा कर रहे थे । इसी प्रसंग से मल्ल राज्य के शासन विधान के सम्बन्ध में कुछ अन्य महत्त्व पूर्ण बातें भी ज्ञात होती हैं । लिच्छवि और शाक्य राज्यों की तरह मल्लों में भी सन्थागार के होने में तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता । पर मल्लों के आठ 'प्रमुखों' की सूचना भी महापरिनिब्बाण सुत्त से मिलती है । मल्लों में आठ प्रमुख होते थे । सम्भवतः शासन का कार्य आठ प्रमुखों में निहित था, जो सन्थागार में किये गये निर्णयों को क्रिया में परिणत करते थे । इसी प्रकार 'पुरुष' नामक छोटे राज-कर्मचारियों का भी जिकर आता है, जो विविध कार्यों को सम्पादित करते थे ।

कुसीनारा वर्तमान समय में गोरखपुर जिले में जहां कसिया नामी गांव है वहां पर स्थित था । कसिया गोरखपुर से ३७ मील पूर्व में स्थित है । इस विषय पर ऐतिहासिकों में विवाद रहा है कि कसिया ही कुसीनारा था या नहीं । विन्सेन्ट ए. स्मिथ के अनुसार कुसीनारा नैपालराज्य की तराई में स्थित था ।[2] पर अब यह बात भली भांति सिद्ध हो गई है कि कसिया ही प्राचीन कुसीनारा है । कारण यह कि पुरातत्व विभाग के अन्वेषणों से कसिया के समीप विद्यमान एक प्राचीन स्तूप के अन्दर एक ताम्रपत्र उपलब्ध हुआ है, जिस पर निम्नलिखित वाक्य उत्कीर्ण हैं—

'[परिनि] र्वाण—चैत्य—ताम्रपट्ट'

---

१. महापरि निब्बाण सुत्त (बुद्धचर्या) पृ० ५४२-५४५

२. V. A. Smith—Early History of India. p. 159

इस लेख के प्राप्त होने के पश्चात् कसिया को ही प्राचीन कुसीनारा स्वीकृत कर लिया गया है।

मल्लों का दूसरा राज्य पावा में था। कनिङ्घम ने पावा को गोरखपुर जिले के पडरौना के साथ मिलाया है, जो गण्डक नदी के तीर पर कुसीनारा से १२ मील उत्तर पूर्व में स्थित है। महापरिनिब्बानसुत्त के अनुसार महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन का अन्तिम भोजन इसी स्थान पर किया था और यहीं पर वे बीमार पड़ गये थे। बीमारी की दशा में ही वे एक दिन में पावा से कुसीनारा आगये थे। कसिया और पडरौना में अन्तर केवल १२ मील है। इस लिये सम्भव है कि पडरौना के समीप ही कहीं प्राचीन पावा नगरी स्थित हो।

कुसीनारा और पावा के अतिरिक्त, मल्लों के अन्य भी अनेक नगर थे। चुल्लवग्ग में मल्लों के एक अन्य नगर का जिकर आता है, जिसका नाम था अनूपिया।[1] कुछ समय के लिये महात्मा बुद्ध इस नगर के विहार में भी रहे थे।[2] अंगुत्तर निकाय में एक अन्य मल्ल नगर का उल्लेख आता है जिसे उरुवेल कप्प कहते थे।[3] यहां भी महात्मा बुद्ध ने कुछ समय निवास किया था।[4] अनूपिया व उरुवेलकप्प कोई पृथक् राज्य नहीं थे। ये मल्लराज्यों के अन्तर्गत नगर मात्र थे।

गङ्गा के उत्तर में विद्यमान अन्य अनेक गणराज्यों की तरह मल्लराज्यों का अन्त भी मगधराज अजातशत्रु द्वारा किया गया।

अन्य गणराज्य

बौद्ध साहित्य में जिन गणराज्यों का बार बार उल्लेख आया है, उन का वर्णन हम समाप्त कर चुके हैं। पर उनके अतिरिक्त कुछ अन्य राज्य भी हैं, जिन का एक दो बार उल्लेख आता है। वे निम्न लिखित हैं—

---

1. Chullavagga vii, I
2. Fausball–Jatak, vol. I pp. 65–66
3. Anguttara nikaya vol. iv, p. 438
4. Samyutta nikaya, pt. v, p. 228

(१) अल्लकप्प के बुली

(२) देवदह और रामगाम के कोलिय

(३) पिप्पलिवन के मोरिय

(४) सुसुमार पर्वत के भग्ग

(५) केसपुत्र के कालाम

महात्मा बुद्ध के महापरिनिब्बान के पश्चात् इन गणराज्यों की ओर से यह मांग पेश की गई थी कि हमें भी भगवान् के भस्मावशेष का अंश मिलना चाहिये, ताकि हम उस के उचित सम्मान के लिये स्तूप आदि का निर्माण कर सकें। पिप्पलीवन के मोरियों के अतिरिक्त अन्य राज्यों की मांग पूर्ण भी हो गई थी। पर मोरिय लोग बहुत पीछे पहुंचे थे, तब तक बुद्ध के शरीर के भस्मावशेष बांटे जा चुके थे। उन्हें राख के अङ्गारों को लेकर ही सन्तुष्ट होना पड़ा था।[1]

बौद्ध साहित्य में कुछ ऐसी कथायें भी उपलब्ध होती हैं, जिन में कोलिय, मोरिय आदि क्षत्रिय जातियों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। उन्हें उद्धृत करना इस इतिहास के लिये विशेष उपयोगी प्रतीत नहीं होता। ये सब राज्य भी गंगा के उत्तर और गण्डक नदी के पूर्व में विद्यमान थे। ये छोटे छोटे नगरराज्यों (City states) के रूप में थे। जनता सन्थागार में एकत्रित होकर अपने सामूहिक और शासन सम्बन्धी विषयों का निर्णय किया करती थी। प्राचीन ग्रीक नगरराज्यों की तरह इनका विस्तार भी बहुत अधिक नहीं था। छोटी छोटी बस्तियों ने ही राज्य का रूप धारण किया हुआ था। इन राज्यों के परस्पर युद्ध भी होते रहते थे। एक जातक कथा में शाक्यों और कोलियों के परस्पर झगड़ों का वर्णन किया गया है।[2]

ये गणराज्य भी मगध के बढ़ते हुवे साम्राज्यवाद द्वारा नष्ट किये गये। मगध का साम्राज्यवाद किस प्रकार गंगा के उत्तर में विद्यमान गणराज्यों को नष्ट करने में प्रयत्नशील था, इस पर हम फिर विचार करेंगे।

---

१. महापरिनिब्बाण सुत्त (बुद्धचर्या) पृ० ५४६.

२ Cowell–Jatak, vol. v. p. 219

तीसरा अध्याय

गणराज्यों की कार्य विधि

महात्मा बुद्ध का प्रादुर्भाव एक गणराज्य व संघराज्य में हुआ था। उन का जीवन संघ के वातावरण में व्यतीत हुआ था। यही कारण है कि जब उन्होंने अपने नवीन धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना की, तो उसे 'भिक्षुसंघ' का नाम दिया। अपने धार्मिक संघ की स्थापना करते हुवे उन्होंने स्वाभाविक रूप से अपने समय में विद्यमान राजनीतिक संघों का अनुसरण किया और उन्हीं के नियमों तथा कार्य-विधि को अपनाया। यह बात बौद्ध साहित्य से भली भांति स्पष्ट हो जाती है। जिस समय मगधराज अजातशत्रु का प्रधानमन्त्री वस्सकार महात्मा बुद्ध के पास वज्जि राज्यसंघ के ऊपर आक्रमण करने के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये गया, उस समय महात्मा बुद्ध ने सात बातें कहीं, जिन के कायम रहने तक वज्जि संघ कभी नष्ट नहीं हो सकता, अपितु उन्नति ही करता जावेगा। इन सात बातों को हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। अतः यहां फिर लिखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु वस्सकार के वापिस जाने के कुछ ही देर बाद महात्मा बुद्ध ने भिक्षुओं को एकत्रित कर उन्हीं सात बातों का कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ उपदेश दिया। हम इस प्रकरण को महापरिनिब्बानसुत्तांत से यहां उद्धृत करते हैं—

"तब भगवान् ने वस्सकार ब्राह्मण के जाने के थोड़ी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्द को आमंत्रित किया।

"जाओ, आनन्द! तुम जितने भिक्षु राजगृह के आसपास विचरते हैं, उन सब को उपस्थान शाला में एकत्रित करो।'

" 'अच्छा, भगवन्'

" 'भगवन्, भिक्षु संघ को एकत्रित कर दिया। अब आप आज्ञा करें।'

"तब भगवान् आसन से उठ कर जहां उपस्थान शाला थी, वहां गये और बिछे हुवे आसन पर बैठ गये। बैठ कर भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर के कहा—

'भिक्षुओ! तुम्हें सात अपरिहाणीय धर्मों का उपदेश करता हूं। उनका ध्यान से श्रवण करो।

" 'कहिये, भगवन्, !

" 'भिक्षुओ, जब तक भिक्षु लोग एक साथ एकत्रित हो कर बहुधा अपनी सभायें करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओ! भिक्षुओं की वृद्धि समझना, हानि नहीं।

"जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग एक हो बैठक करते रहेंगे, एक हो उत्थान करते रहेंगे और एक हो संघ के कार्यों को सम्पन्न करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओं की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

" 'जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग जो अपने संघ में विहित है, उसका उल्लंघन नहीं करेंगे, जो विहित नहीं है, उसका अनुसरण नहीं करेंगे, जो पुराने भिक्षुओं के नियम चले आरहे हैं, उनका पालन करते रहेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

" 'जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग जो अपने में बड़े धर्मानुरागी, चिर प्रव्रजित, संघ के पिता, संघ के नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करते रहेंगे, उन्हें वे बड़ा मान कर उनकी पूजा करते रहेंगे, उनकी बात को सुनने तथा ध्यान देने योग्य समझते रहेंगे, तब तक उन की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

" 'जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तृष्णा के वश में नहीं पड़ेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

" 'जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग वन की कुटियों में निवास करने की इच्छा वाले रहेंगे, तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।

" 'जब तक भिक्षुओ! भिक्षु लोग यह स्मरण रखेंगे, कि भविष्य में सुन्दर, ब्रह्मचारी संघ में सम्मिलित हों और सम्मिलित हुवे लोग ब्रह्मचारी रहते हुवे सुख से निवास करें, तब तक भिक्षु संघ की वृद्धि होगी, हानि नहीं।

" 'भिक्षुओ ! जब तक ये सात अपरिहाणीय धर्म भिक्षुओं में रहेंगे जब तक भिक्षु इन सात अपरिहाणीय धर्मों में दिखाई देंगे, तब तक भिक्षु संघ की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं।"[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अपने संघ के लिये महात्मा बुद्ध ने जिन सात अनुल्लंघनीय धर्मों का प्रतिपादन किया है, वे प्रायः वही हैं, जिनका महत्व वज्जिसंघ में विद्यमान था। इन में से पहले चार धर्म तो बिल्कुल वे ही हैं।

यह बात बिल्कुल स्पष्ट तथा स्वाभाविक है, कि महात्मा बुद्ध अपने धार्मिक संघ का निर्माण करते हुवे अपने समय के प्रचलित राजनीतिक संघों का अनुसरण करें। इस में कोई सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्ध ने अपने धार्मिक संघ की विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार अनेक नवीन नियमों का भी निर्माण किया होगा, पर उन के स्वरूप, कार्यविधि आदि में राजनीतिक संघों से बहुत कुछ सादृश्य होगा, यह बात सर्वथा स्पष्ट और स्वाभाविक है। राजनीतिक संघों की कार्यविधि से हमें विशेष परिचय नहीं है, पर सौभाग्यवश भिक्षुसंघ की कार्यविधि का वर्णन बड़े विस्तार के साथ बौद्ध ग्रन्थों में किया गया है। उसी को दृष्टि में रखकर हम यहां संघराज्यों की कार्यविधि पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

भिक्षु संघ के सदस्यों के बैठने के लिये पृथक् पृथक् आसन होते थे। आसनों की व्यवस्था करने के लिये एक पृथक् कर्मचारी होता था, जिसे 'आसन प्रज्ञापक' कहते थे। वैशाली की महा सभा में अजित नाम के भिक्षु को इस पद पर नियुक्त किया गया था। चुल्लवग्ग में लिखा है—

"उस समय अजित नामका दश वर्षीय (जिस की उपसंपदा हुवे दश वर्ष व्यतीत हो गये हों) भिक्षु भिक्षुसंघ का प्रतिमोक्षोद्देशक (उपोसथ के दिन भिक्षु नियमों की आवृत्ति करने वाला) था। संघ ने आयुष्मान अजित को ही स्थविर भिक्षुओं का आसनप्रज्ञापक नियत किया।"[2]

---

१. महापरिनिब्बाण सुत्तान्त (बुद्धचर्या) पृ० ५२३. ५२४।

२. Chullavagga xii, 2, 7 (Sacred Books of the East, xx, 408).

सभा में जिस विषय पर विचार होता हो, उसे पहले प्रस्ताव के रूप में पेश किया जाता था। पर प्रस्ताव को उपस्थित करने से पूर्व पहले उसकी सूचना देनी होती थी। इस सूचना को 'ज्ञप्ति' कहते थे। ज्ञप्ति के बाद प्रस्ताव को बाकायदा उपस्थित किया जाता था। प्रस्ताव के लिये बौद्ध साहित्य में पारिभाषिक शब्द 'प्रतिज्ञा' है। जो प्रस्ताव (प्रतिज्ञा) के पक्ष में होते थे, वे चुप रहते थे। जो विरोध में होते थे, वे अपना विरोध प्रगट करते थे। यदि प्रस्ताव उपस्थित होने पर संघ चुप रहे, तो उसे तीन बार पेश किया जाता था। तीनों बार संघ के चुप रहने पर उस प्रस्ताव को स्वीकृत समझ लिया जाता था। विरोध होने पर बहुसम्मति द्वारा निर्णय करने की प्रथा थी। हम इस प्रक्रिया को उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं। राजगृह की महासभा में आयुष्मान् महाकाश्यप सभा को सम्बोधन करके कहते हैं—

"भिक्षुओ, संघ मेरी बात को सुने। यदि संघ को पसन्द हो, तो संघ इन पांच सौ भिक्षुओं को राजगृह में वर्षावास के समय धर्म और विनय का संगायन करने के लिये नियुक्त करे। इस काल में अन्य भिक्षु लोग राजगृह में न जावें। यह ज्ञप्ति (सूचना) है।

"भिक्षुओ, संघ मेरी बात को सुने। यदि संघ को पसन्द हो, तो संघ इन पांच सौ भिक्षुओं को राजगृह में वर्षावास के समय धर्म और विनय का संगायन करने के लिये नियुक्त करे। इस काल में अन्य भिक्षु लोग राजगृह में न जावें। जिस आयुष्मान को पांच सौ भिक्षुओं का राजगृह में वर्षावास के समय धर्म और विनय का संगायन करने के लिये नियुक्त करना और इस काल में अन्य भिक्षुओं को राजगृह में न जाना पसन्द हो, वह चुप रहे। जिस को पसन्द न हो, वह बोले।"

दूसरी बार फिर इसी वाक्य को दोहराया गया।

तीसरी बार फिर इसी वाक्य को दोहराया गया।

उसके बाद महाकाश्यप ने कहा—

"संघ इन पांच सौ भिक्षुओं को राजगृह में वर्षावास के समय धर्म और विनय का संगायन करने के लिये नियुक्त करने तथा इस काल में अन्य भिक्षुओं के राजगृह में न जाने के प्रस्ताव से सहमत है। संघ को यह पसन्द है इस लिये चुप है। यह मेरी धारणा है।"[१]

महात्मा बुद्ध के समय में उन्हीं के आदेश से निम्नलिखित प्रस्ताव संघ के सम्मुख उपस्थित किया गया था—

"संघ मेरी बात को सुने। इस भिक्षु उवाल से संघ के बीच में एक अपराध के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये। कभी यह अपराध को स्वीकार करता है। कभी उसका निषेध करता है। कभी परस्पर विरोधी बातें कहता है। कभी दूसरों पर आक्षेप करता है। कभी जानता हुवा भी झूठ बोलता है। यदि संघ पसन्द करे, तो भिक्षु उवाल को 'तस्सपापीय्यसिका कम्म' का दण्ड दिया जावे। यह ज्ञप्ति (सूचना) है।

"संघ मेरी बात को सुने। इस भिक्षु उवाल से संघ के बीच में एक अपराध के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये। कभी यह अपराध को स्वीकार करता है। कभी निषेध करता है। कभी परस्पर विरोधी बातें कहता है। कभी दूसरों पर आक्षेप करता है। कभी जानता हुआ भी झूठ बोलता है। संघ निश्चय करता है कि इस भिक्षु उवाल को 'तस्सपापीय्यसिका कम्म' का दण्ड दिया जावे। जो भिक्षु इस भिक्षु उवाल को 'तस्स पापिय्यसिका कम्म' का दण्ड देने के पक्ष में हों, वे कृपया चुप रहें। जो इसके पक्ष में न हों, वे बोलें।

"फिर मैं इसी प्रस्ताव को दोहराता हूं—

"फिर तीसरी बार मैं इसी प्रस्ताव को दोहराता हूं।

"यह निश्चय हो गया कि इस भिक्षु उवाल को 'तस्स पापीय्यसिका कम्म' का दण्ड दिया जावे। इसी लिये संघ चुप है। यह मेरी धारणा है।"[२]

---

१. बुद्धचर्या पृ० ५४८, ५४९

२. Chullavagga 4, 11, 2 (Sacred Books of the East, xx, 29)

इन दो उदाहरणों से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि भिक्षुसंघों में कार्यविधि किस प्रकार की थी, किस ढंग से ज्ञप्ति तथा प्रतिज्ञा (प्रस्ताव) पेश किये जाते थे।

भिक्षु संघ के लिये 'कोरम' (Quorum) का भी नियम था। संघ की बैठक के लिये कम से कम बीस भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक थी।[1] यदि कोई कार्य पूरे कोरम के बिना किया जावे, तो उसे मान्य नहीं समझा जाता था।

गणपूरक[2] नाम के एक भिक्षु कर्मचारी का कार्य ही यह होता था, कि वह कोरम को पूरा करने का प्रयत्न करे। यह संघ के अधिवेशन के लिये जितने भिक्षुओं की आवश्यकता हो, उन्हें एकत्रित करता था। आजकल की व्यवस्थापिका सभाओं में जो कार्य ह्विप (Whip) करते हैं, प्रायः यह गणपूरक पुराने भिक्षुसंघ में वही कार्य करता था।

जिन प्रस्तावों पर किसी को विप्रतिपत्ति नहीं होती थी, वे सर्वसम्मति से स्वीकृत समझे जाते थे। उन पर वोट लेने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। उन पर विवाद भी नहीं होता था। परन्तु यदि किसी प्रश्न पर मतभेद हो, तब उस के पक्ष और विपक्ष में भाषण होते थे और बहुसम्मति द्वारा उसका निर्णय किया जाता था। बहुसम्मति द्वारा निर्णय होने को 'ये भूयसिसकम्' व 'ये भूयसीयम्' कहते थे। बौद्ध ग्रन्थों में वोट के लिये 'छन्द' शब्द है। छन्द का दूसरा अर्थ स्वतन्त्र होता है। इस से यह ध्वनि निकलती है कि वोट के लिये 'स्वतन्त्रता' को बहुत महत्व दिया जाता था।

वोट के लिये प्रयोग में आने वाले टिकटों को 'शलाका' कहते थे। वोट लेने के लिये एक भिक्षु कर्मचारी होता था, जिसे 'शलाका ग्राहक' कहते थे, यह 'शलाका ग्रहण' (वोट एकत्रित करना) का काम किया करता था।

शलाका ग्राहक नियुक्त करते हुवे निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता था—

---

१. Mahavagga ix, 4, 1

२. Mahavagga iii, 6, 6.

१. जो अपनी रुचि के रास्ते न जावे
२. जो द्वेष के रास्ते न जावे
३. जो मोह के रास्ते न जावे
४. जो भय के रास्ते न जावे
५. जो पहले से पकड़े रास्ते न जावे

वर्तमान शब्दों में हम इन पांच बातों को इस प्रकार कह सकते हैं—

१. जो नियमों के अनुसार कार्य करे, वोट लेते समय स्वच्छन्द आचरण न करे।
२. जो निष्पक्षपात हो, किसी पक्ष से द्वेष न करता हो।
३. जो किसी से पक्षपात न करे, किसी पक्ष से मोह न रखता हो।
४. जो किसी शक्ति शाली दल या व्यक्ति के भय में न आसकता हो।
५. जिसकी सम्मति पहले से ही बनी हुई न हो, (जो prejudiced न हो)।

शलाका ग्राहक को नियुक्त करने के लिये निम्नलिखित पद्धति का अनुसरण किया जाता था—

जिस व्यक्ति का नाम शलाका ग्राहक के पद के लिये पेश किया जाता हो, पहले उस से यह स्वीकृति ले ली जाती थी कि यदि संघ उसे नियुक्त करे, तो वह इस पद को स्वीकृत कर लेगा। उसके पश्चात् कोई योग्य भिक्षु निम्नलिखित प्रस्ताव संघ के सम्मुख उपस्थित करता था—

"संघ मेरी बात को सुने। यदि संघ पसन्द करे, तो अमुक व्यक्ति को शलाका ग्राहक पद के लिये नियुक्त किया जावे। यह ज्ञप्ति है।"

इसके पश्चात् नियमानुसार प्रस्ताव (प्रतिज्ञा) उपस्थित किया जाता था।

वोट लेने के तीन ढंग थे—(१) गूढक (२) सकर्णजल्पक (३) विवृतक। चुल्लवग्ग में इन तीनों पद्धतियों को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

(१) गूढक—शलाका ग्राहक जितने पक्ष हों, उतने रंग की शलाकायें बनाता था। क्रम से भिक्षु उस के पास वोट देने के लिये आते थे।

प्रत्येक भिक्षु को शलाका ग्राहक बताता था, कि इस रंग की शलाका इस पक्ष की है, तुम्हें जो पक्ष अभिमत हो, उसकी शलाका उठालो। वोट देने वाले के शलाका उठा लेने पर वह उसे कहता था, तुमने कौनसी शलाका उठाई है, यह किसी दूसरे को न कहना।

(२) सकर्ण जल्पक—जब वोट देने वाला भिक्षु शलाका ग्राहक के कान में कह कर अपने मत को प्रगट करे, तो उसे 'सकर्ण जल्पक' विधि कहा गया था।

(३) विवृतक—जब वोट खुले रूप में लिया जावे, तो विवृतक विधि होती थी।

जिन प्रश्नों पर भिक्षु संघ में मतभेद होता था, उन पर अनेक वार बहुत गरमागरम बहस होजाती थी और निर्णय पर पहुंच सकना कठिन हो जाता था। उस दशा में संघ की एक उपसमिति बना दी जाती थी। इसे 'उब्बहिका' या 'उद्वाहिका' कहते थे। यह 'उद्वाहिका' विवाद ग्रस्त विषय पर भली भांति विचार कर उसका निर्णय करने में समर्थ होती थी। पर यदि इस में भी परस्पर विरोध शान्त न हो, तो 'ये भूयसीयम्' के अतिरिक्त निर्णय का अन्य कोई उपाय नहीं रहता था।

उद्वाहिका द्वारा किस प्रकार कार्य होता था, इसे स्पष्ट करने के लिये हम बौद्ध साहित्य से एक उदाहरण उपस्थित करते हैं—

"तब उस विवाद के निर्णय करनें के लिये संघ का अधिवेशन किया गया। पर उस विषय का निर्णय करते समय अनर्गल बहस होने लगी। किसी भी कथन का अर्थ स्पष्ट प्रतीत नहीं होता था। तब आयुष्मान् रेवत ने संघ के सम्मुख यह प्रस्ताव पेश किया—

'भगवन्, संघ मेरी बात को सुने। हमारे इस विषय को निर्णय करते समय अनर्गल विवाद उत्पन्न हो रहे हैं, किसी बात का भी अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा। यदि, संघ को पसन्द हो, तो संघ इस विषय को उद्वाहिका (उपसमिति) के सुपुर्द करे।"

आयुष्मान् रेवत के प्रस्तावानुसार चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये । प्राचीनक भिक्षुओं में आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ़, आयुष्मान् क्षुद्रशोभित और आयुष्मान् वार्षभग्रामिक को लिया गया । पावेयक भिक्षुओं में आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकंडपुत्त और आयुष्मान् सुमन । तब आयुष्मान् रेवत ने संघ के सम्मुख प्रस्ताव उपस्थित किया—

"भगवन् ! संघ मेरी बात को सुने । हमारे इस विषय को निर्णय करते समय अनर्गल विवाद उत्पन्न हो रहे हैं, किसी बात का भी अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो रहा है, यदि संघ को पसन्द हो, तो संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओं की उद्वाहिका को इस विवाद को शमन करने के लिये नियुक्त करे । यह ज्ञप्ति है । इस के बाद तीन वार प्रस्ताव उपस्थित किया गया और सब के सहमत होने के कारण उस विवाद ग्रस्त विषय को उद्वाहिका के सुपुर्द कर दिया गया ।

संघ की वक्तृताओं तथा अन्य कार्य्य को उल्लिखित करने के लिये लेखक भी हुआ करते थे । महागोविन्द सुत्तांत (दीर्घनिकाय) के अनुसार "तातविंशदेव सुधम्म-सभा में एकत्रित हुवे और अपने अपने आसनों पर विराजमान हो गये । वहां उस सभा में चार महाराज इस कार्य्य के लिये विराजमान थे, कि भाषणों तथा प्रस्तावों को उल्लिखित करें ।" तातविंश देवों की सभा में 'महाराज' की उपाधि से युक्त लेखकों के उपस्थित होने की कल्पना में आश्चर्य की कोई बात नहीं है । मनुष्यों में जो संस्थायें होती हैं, देवों में भी उन्हीं की कल्पना की जाती है । उस समय बौद्ध संघ तथा राजनीतिक संघों में इस प्रकार के सम्मानास्पद लेखक प्रस्तावों तथा भाषणों को उल्लिखित करने के लिये होते थे इसी लिये देव सभा में भी उन की सत्ता कल्पित की गई थी ।

यदि कोई वक्ता संघ में भाषण करते हुवे वक्तृता के नियमों का ठीक प्रकार से पालन न करे, परस्पर विरोधी बातें बोले, पहले कही हुई बात को दोहराये, कटु भाषण करे या इसी प्रकार कोई अन्य अनुचित बात करे, तो उसे दोषी समझा जाता था और इस के लिये उसे उत्तरदायी होना पड़ता था ।

जो भिक्षु संघ के अधिवेशन में किसी कारण से उपस्थित न हो सकें, उनकी सम्मति लिखित रूप से मंगा ली जाती थी। यह आवश्यक नहीं होता था कि इन अनुपस्थित भिक्षुओं की सम्मति का निर्णय के लिये परिगणन अवश्य किया जावे पर उनकी सम्मति मंगाना आवश्यक समझा जाता था। उनकी सम्मति से उपस्थित भिक्षुओं को अपनी सम्मति बनाने में सहायता मिल सके, इस लिये यह व्यवस्था की गई थी।

बौद्ध संघ की इस कार्य विधि का अनुशीलन करने से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है, कि संघ एक अत्यन्त उन्नत तथा विकसित संस्था थी। कार्यविधि के नियमों की बारीकियों पर ध्यान दिया जाता था। यह हम पहले बता चुके हैं, कि बौद्ध संघ का निर्माण राजनीतिक संघों को सम्मुख रख कर किया गया था—कार्य्यविधि की ये सब बातें राजनीतिक संघों से ही ली गई थीं। बौद्ध संघ की कार्य विधि के अनुशीलन से यह कल्पना सुगमता के साथ की जा सकती है कि यही विधि राजनीतिक संघों में भी विद्यमान थी — उन में भी इस के अनुसार कार्य होता था।

चौथा अध्याय

अवन्ती राज्य

महात्मा बुद्ध के समय में अवन्ती देश का राजा 'पज्जोत' था। इस की राजधानी उज्जैनी थी। पुराणों में इस पज्जोत के लिये प्रद्योत शब्द आया है।[1] भास ने इसे 'महासेन' लिखा है।[2] अनेक ग्रन्थों में इसके लिये 'चण्ड' विशेषण का भी प्रयोग किया गया है।[3] महात्मा बुद्ध का समकालीन वत्सदेश का राजा 'उदयन' था। अवन्ती और वत्स की सीमायें एक दूसरे से मिलती थीं। दोनों राज्य अपने साम्राज्य को विस्तृत करने के लिये उत्सुक थे। अतः उनमें परस्पर संघर्ष का होना स्वाभाविक था। अवन्ती का राजा प्रद्योत वत्स देश को जीतकर अपनी अधीनता में लाना चाहता था। पर वत्स की शक्ति भी कम न थी। अन्त में प्रद्योत ने छल का आश्रय लिया। इस संघर्ष का वर्णन महावग्ग में इस प्रकार किया गया है।[4]

" अवन्ती के राजा प्रद्योत ने एक वार अपने दरबारियों से पूछा कि क्या किसी राजा की कीर्ति मुझ से भी अधिक है ?

"दरबारियों ने उत्तर दिया—'कौशाम्बी के राजा उदयन आप से अधिक कीर्तिमान् हैं।'

---

१. स चनं स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतनामानमभिषेक्ष्यति।

विष्णु पुराण

२. तस्य वलपरिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति।'

भास—प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० २०

3. Mahavagga (Sacred Books of the East, xvi, p. 187)

4. Rhys Davids–Buddhist India p. 4-7

"यह सुनते ही प्रद्योत ने उदयन पर आक्रमण करने का विचार निश्चित किया। परन्तु वत्सराज पर आक्रमण कर सकना सुगम कार्य न था। शीघ्र ही प्रद्योत को अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। उसने सीधा आक्रमण करने की अपेक्षा नीति द्वारा ही उदयन को वश में करना अधिक उपयुक्त समझा।

उदयन को हाथियों का बहुत शौक था। वह हस्तिविद्या में बहुत निपुण था, और उत्तम हाथियों को पकड़ने में सदा उद्यत रहता था। इस लिये प्रद्योत ने एक नकली हाथी बनवाया। उस में ६० सैनिकों को खड़ा कर नकली हाथी को अवन्ती और वत्स के सीमावर्ती जंगल के सघन प्रदेश में छिपा कर खड़ा कर दिया। अपने गुप्तचरों द्वारा उसने यह समाचार उदयन तक पहुंचा दिया कि एक सर्व-गुण सम्पन्न हाथी आजकल सीमा के जंगल में आया हुआ है। उदयन हाथी को पकड़ने के लिये चला, पर अपने साथियों को पीछे छोड़कर वह ज्यों ही उस नकली हाथी के समीप पहुंचा, त्योंही प्रद्योत के सैनिकों द्वारा कैद कर लिया गया।

उदयन हाथियों को वश में करने की विद्या में प्रवीण था। प्रद्योत ने उससे कहा—'यदि तुम इस विद्या को हमें सिखा दो, तो तुम्हें जीवन दान मिल सकेगा।'

उदयन ने कहा—'बहुत अच्छा। पर मैं तुम्हें यह विद्या तभी सिखाऊंगा, जब तुम उसी प्रकार मुझे प्रणाम करोगे, जैसे एक शिष्य अपने गुरु को करता है।'

प्रद्योत ने कहा—'तुम्हें मैं प्रणाम करूं, यह कभी नहीं हो सकता।'

उदयन—'तो मैं तुम्हें यह विद्या भी नहीं सिखा सकता।'

प्रद्योत—'तो मैं तुम्हें अवश्य ही प्राणदण्ड दूंगा।'

उदयन—'तुम्हारी जैसी इच्छा। तुम मेरे शरीर के मालिक हो, आत्मा के नहीं।'

उदयन की बात सुन कर प्रद्योत ने विचार किया कि इस की तो मृत्यु हो जायगी, पर इसके साथ ही यह हस्तिविद्या भी लुप्त हो जायगी। उसने फिर

उदयन से कहा—'क्या तुम यह विद्या किसी अन्य को भी सिखा सकते हो ?
उदयन ने फिर वही उत्तर दिया—'जो कोई शिष्य भाव से मुझे गुरु मान कर, गुरु के समान मुझे प्रणाम कर मुझ से इस विद्या को ग्रहण करना चाहेगा, उसे मैं शिक्षा दे सकूंगा ।'

प्रद्योत ने सोचा कि मैं अपनी कन्या वासवदत्ता को यह विद्या सिखलाता हूं। फिर उस से मैं सीख लूंगा। परन्तु उसे यह भी भय था कि कहीं वासवदत्ता और उदयन में परस्पर स्नेह न हो जावे। अतः उसने एक ऐसा उपाय सोचा, जिस से उन दोनों में कभी स्नेह उत्पन्न ही न हो सके। अपनी कन्या से उसने कहा—एक बौने को हस्ति विद्या आती है, तुम उससे यह अनुपम विद्या सीख लो। इधर उदयन से कह दिया—एक कुब्जा स्त्री तुम से हस्तिविद्या विधि पूर्वक सीखना चाहती है। प्रद्योत ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि उदयन और वासवदत्ता एक दूसरे को देख न सकें, परदे की ओट से उनका अध्ययन अध्यापन चलता रहे। कुछ दिनों तक इस प्रकार पढ़ाई चलती भी रही। पर वासवदत्ता पढ़ाई में बहुत तेज नहीं थी। एक दिन उदयन को क्रोध आगया और उसने झिड़क कर कहा—'अरी कुबड़ी, इस प्रकार उच्चारण कर। तेरे ओठ कितने मोटे हैं, तेरे जबड़े कितने भारी हैं, तुझ से ठीक उच्चारण क्यों नहीं होता।'

यह सुन कर वासवदत्ता को भी क्रोध आगया। उसने कहा— 'अरे बौने! मुझे कुबड़ी कहने में तेरा क्या अभिप्राय है ?'

अबतक वासवदत्ता और उदयन एक दूसरे की शकल से अपरिचित थे। इस बात चीत के बाद वे एक दूसरे को देखने के लिये उत्सुक होगये। उदयन ने पर्दे का एक कोना हटा कर अपनी शिष्या को देखा। अब दोनों में परस्पर परिचय होते देर न लगी। वे सारा मामला समझ गये और उन में परस्पर स्नेह उत्पन्न होगया।

अब उन दोनों ने अवन्ती से भागने के लिये उपाय सोचना प्रारम्भ किया। अन्त में वे एक षड्यन्त्र तैयार करने में सफल हुवे। वासवदत्ता ने अपने पिता प्रद्योत से कहा—'हस्तिविद्या में निष्णात होने के लिये नक्षत्रों के विशेष

संयोग में एक औषधि को लाना आवश्यक है, इसलिये हमें वन में जाने की आज्ञा मिलनी चाहिये।' प्रद्योत ने वासवदत्ता की मांग को स्वीकृत कर लिया। एक दिन जब राजा प्रद्योत कहीं बाहर आमोद प्रमोद के लिये गया हुआ था, तो वे दोनों हाथी पर चढ़ कर उज्जैनी से चल पड़े। अपने साथ में उन्होंने बहुत सी सुवर्ण मुद्रायें तथा सोने के छोटे छोटे टुकड़ों से भरी हुई एक थैली भी रख ली।

जिस समय वासवदत्ता और उदयन के भाग निकलने की बात प्रद्योत को मालूम हुई, उसने उनका पीछा करने के लिये सेना भेजी। जब पीछा करते हुवे सैनिक उनके समीप पहुंच गये, तो उदयन ने सुवर्ण मुद्रायें नीचे बखेर दी। मुद्राओं के लोभ से सैनिक लोग उन्हें इकट्ठा करने में लग गये। इस अवसर का लाभ उठा कर उदयन और वासवदत्ता बहुत आगे बढ़ गये। पर पीछा करते हुवे सैनिक जब फिर उनके समीप तक पहुंचे, तो उन्होंने फिर सोने के टुकड़ों से भरी हुई थैली हाथी से नीचे फेंक दी। सैनिक लोग फिर सुवर्ण को इकट्ठा करने में लग गये। इस प्रकार अवसर प्राप्त कर उदयन अवन्ती की सीमा पार कर गया। वत्स की सीमा पर उसकी अपनी सेनायें उत्सुकता के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उदयन और वासवदत्ता का विवाह हो गया। वासवदत्ता उसकी पटरानी के पद पर अधिष्ठित हुई।

इस कथानक से स्पष्ट है कि वत्स और अवन्ती में संघर्ष जारी था। पर अवन्ती न केवल युद्ध में, अपितु छल द्वारा भी, वत्सराज को परास्त करने में समर्थ नहीं हो सका। अन्त में इन दोनों राज्यों में सन्धि होगई और सन्धि को दृढ़ करने के लिये वैवाहिक सम्बन्ध की भी स्थापना की गई।

भास के प्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में इसी संघर्ष का कुछ भिन्न रूप में वर्णन आता है। भास का वर्णन ऐतिहासिकता के अधिक समीप है, अतः हम उसे भी यहां संक्षिप्त रूप से उद्धृत करते हैं—

अवन्ती देश का राजा प्रद्योत अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी था। उसने अनेक राजाओं को जीत कर अपने आधीन किया। पर वत्सराज उदयन उसकी अधीनता स्वीकृत करने को उद्यत नहीं था। इससे प्रद्योत के हृदय में बहुत जलन होती

रहती थी।[1] उसने उदयन को वश में लाने के अनेक प्रयत्न किये, पर सफलता नहीं हुई। सेनाओं द्वारा उदयन को वशीभूत न कर सकने का एक कारण भास ने यह लिखा है कि प्रद्योत की सेनायें उसमें अनुरक्त नहीं थी।[2] अतः उसने छल का आश्रय लेने का निश्चय किया।

उदयन को हाथी पकड़ने का बहुत शौक था। वह हस्तिविद्या में अत्यन्त प्रवीण था। वह सदा उत्तम उत्तम हाथियों को पकड़ने के लिये उत्सुक रहता था। इसलिये प्रद्योत ने एक नकली हाथी बनवाया। उसमें अपने सैनिक छिपा कर रख दिये। इस नकली हाथी को वत्स और अवन्ती के सीमावर्ती जङ्गलों में रख दिया गया।

इस समय उदयन शिकार खेलने के लिये नर्मदा नदी को पार कर अपनी सेना के साथ वेणुवन में आया हुआ था। वह प्रातःकाल होते ही हाथियों के शिकार के लिये नागवन की ओर चल पड़ा। इतने में प्रद्योत का एक आदमी आया और उसने उदयन से कहा—'यहां से कोस भर दूर मैंने एक नीला हाथी देखा है।' उदयन को हाथियों का शौक था ही, वह उसे पकड़ने के लिये तैयार हो गया। 'घोषवती' नामक वीणा को, जो हाथियों को वश में करने के लिये काम में आती थी और बीस आदमियों को उस ने अपने साथ में ले लिया। पहले वह घोड़े पर जा रहा था, पर जब हाथी

---

१. मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणु नरेन्द्राः
मुकुटतटविलग्नं भृत्यभूता वहन्ति।
न च मम परितोषो यन्न मां वत्सराजः
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः॥
भास—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण पृ० २५

२ व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चैककार्यं
संख्यातवीरपुरुषं च न चानुरक्तम्।
व्याजं ततः समभिनन्दति युद्धकाले
सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम्॥
भास—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण पृ० ४

दिखाई देने लगा, तो वह घोड़े पर से उतर कर 'घोषवती' को बजाता हुवा पैदल चलने लगा। इसी समय शेर की गर्जना सुनाई दी। उदयन के साथी शेर को ढूंढने के लिये तितर बितर हो गये। उदयन को अपनी वीणा पर पूरा विश्वास था, वह अकेला ही हाथी पर अपना वार चलाने का प्रयत्न करने लगा। इतने में प्रद्योत के सैनिक उस नकली हाथी के बाहर निकल आये और अकेला देख उन्होंने उदयन पर आक्रमण कर दिया। उदयन पकड़ लिया गया। प्रद्योत के मंत्री सालंकायन ने उसे कैदखाने में डाल दिया और उस की घोषवती वीणा अवन्ती राज की कन्या वासवदत्ता को दे दी गई। इस प्रकार प्रद्योत अपने छल में कृतकार्य हुआ।

पर उदयन का एक मंत्री था जिस का नाम था, 'यौगन्धरायण'। वह बहुत ही नीतिनिपुण तथा चाणाक्ष व्यक्ति था। उसे पहले ही आशंका थी कि उदयन को पकड़ने के लिये जाल रचा जा रहा है। उस ने उदयन को सावधान करने का भी प्रयत्न किया था। पर वह सफल नहीं हो सका। जब उसे ज्ञात हुआ कि वत्सराज प्रद्योत द्वारा कैद कर लिया गया है, तब उसने उसे मुक्त कराने की प्रतिज्ञा की। उज्जैनी में रहते हुवे उदयन का प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो गया था। उदयन को वासवदत्ता के स्नेह के अतिरिक्त किसी अन्य बात की चिन्ता न रह गई थी। यौगन्धरायण ने इस की कोई परवाह नहीं की। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं उदयन और वासवदत्ता—दोनों को अवन्ती राज के कब्जे से छुड़ा कर स्वतन्त्र न कर सकूं तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं है।[1] उसने उज्जैनी में अपने आदमी भेजने प्रारम्भ किये। विविध प्रकार के व्यक्तियों का भेष बदल कर यौगन्धरायण के गुप्तचर बहुत बड़ी संख्या में उज्जैनी पंहुच गये।[2] इस के बाद उदयन को छुड़ाने के लिये बाकायदा षड्यन्त्र की रचना की गई। इस षड्यन्त्र में वासवदत्ता को भी

---

१. यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः॥
भास—प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ५४

२. वयं खलु आर्ययौगन्धरायेण स्वेषु स्वेषु स्थानेषु स्थापिताश्चारपुरुषाः।
१. भास—प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ६२

सम्मिलित किया गया। एक दिन बहुत सवेरे वासवदत्ता और उदयन 'भद्रवती' नामक हथिनि पर चढ कर भाग खड़े हुवे। यौगन्धरायण के आदमी तो पहले से ही तैय्यार थे। उन्होंने उज्जैनी के द्वाररक्षकों पर आक्रमण कर उन का घात कर दिया। उदयन और वासवदत्ता को भाग निकलने का अच्छा अवसर मिल गया।

जब यह समाचार प्रद्योत ने सुना, तो उसने अपने लड़के 'पालक' को सेना के साथ उदयन और वासवदत्ता का पीछा करने के लिये भेजा। पर यौगन्धरायण ने इसका भी उपाय पहिले से ही किया हुआ था। उसके आदमियों ने उज्जैनी में विद्रोह शुरु कर दिया। जगह जगह पर लूट मार प्रारम्भ हो गई। प्रद्योत की सेना इस विद्रोह को शान्त करने में लग गई। दोनों ओर से लड़ाई होने लगी। यौगन्धरायण के आदमियों को परास्त कर सकना प्रद्योत जैसे शक्ति शाली राजा के लिये कुछ भी कठिन नहीं था। विद्रोह शान्त कर दिया गया। यौगन्धरायण स्वयं भी पकड़ लिया गया। पर उस का उद्देश्य पूर्ण हो चुका था। उदयन और वासवदत्ता उज्जैनी से भाग कर अपने राज्य की सीमा में पहुंच चुके थे। प्रद्योत जितना वीर तथा शक्तिशाली था उतना ही उदार हृदय भी था। उसने यौगन्धरायण की नीति कुशलता से प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया और वासवदत्ता का विवाह उदयन के साथ करना स्वीकार कर लिया।

महावग्ग और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण के कथानकों में विशेष भेद नहीं है। यद्यपि भास ने वासवदत्ता के उदयन से हस्ति विद्या सीखने का उल्लेख नहीं किया है, पर उसने स्थान स्थान पर उदयन से वासवदत्ता को 'प्रिय शिष्या' कहाया है। इस से हम समझ सकते हैं कि महावग्ग का हस्ति विद्या अध्ययन सम्बन्धी वर्णन भी सत्य है। उदयन और वासवदत्ता के उज्जैनी से भाग निकलने का जिस प्रकार का वर्णन भास ने किया है, वह बहुत सम्भव तथा ऐतिहासिक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में एक राज्य के गुप्तचर दूसरे राज्य में जाकर किस प्रकार कार्य करते थे, इस का विस्तृत विवरण आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया

है।[1] उसे पढ़ कर यौगन्धरायण का कार्य भली भांति समझ में आजाता है। यही कथा क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेवकृत कथासरित्सागर में भी पाई जाती है।[2] उनका वर्णन महावग्ग की अपेक्षा भास से बहुत अधिक मिलता है।

इस प्रकार अब वत्स और अवन्ती में परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। अवन्ती का राजा प्रद्योत अपने राज्य विस्तार की आकांक्षा से वत्स को अधीन करना चाहता था, उसे अपने प्रयत्न में सफलता तो नहीं हुई, पर वह वत्स की ओर से निश्चिन्त हो गया। वत्स के साथ उसकी सन्धि हो चुकी थी, सन्धि को दृढ़ रखने के लिये वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया गया था। अब उसने मगध पर आक्रमण करने का विचार किया। प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ 'मज्झिम निकाय' में लिखा है कि मगधराज अजातशत्रु ने प्रद्योत के आक्रमण से अपने राज्य की रक्षा करने के लिये अपनी राजधानी राजगृह की किलाबन्दी को मजबूत किया था।[3] प्रद्योत ने मगध पर आक्रमण किया वा नहीं, इसका उल्लेख बौद्धग्रन्थों में नहीं है, पर प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से यह अवश्य ज्ञात होता है कि अवन्तीराज प्रद्योत बहुत महत्त्वाकांक्षी तथा विजेता था। पुराणों में लिखा है कि उसने अनेक समीपवर्ती राजाओं को जीत कर अपनी अधीनता में किया हुआ था।[4]

प्रद्योत ने २३ वर्ष राज्य किया। उसकी मृत्यु के अनन्तर उसका पुत्र 'पालक' अवन्ती के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। परन्तु प्रद्योत के एक अन्य पुत्र भी था, उस का नाम था 'गोपाल'। वह अपनी बहिन वासवदत्ता के साथ वत्सराज उदयन की राजधानी कौशाम्बी में निवास करता था। जिस समय प्रद्योत की मृत्यु का समाचार कौशाम्बी पहुंचा, तो वत्सराज उदयन ने गोपाल से कहा

---

१. कौटिलीयमर्थशास्त्र—(संघ वृत्तम्)
२. सोमदेव—कथासरित्सागर (तरङ्ग १११)
३. Bhandarkar—Carmichael Lectures, 1918 p. 64
४. स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः।
(Pargiter—Dynasties of the Kali Age p. 18)

कि तुम उज्जैनी जाकर अपने पिता का राज्य सम्भाल लो। पर गोपाल ने राजा होना स्वीकृत नहीं किया। गोपाल प्रद्योत का बड़ा लड़का था। अतः राज्य पर उसी का अधिकार था। पर उस के स्वयं राजगद्दी पर अधिकार का परित्याग कर देने पर पालक को अवन्ती का राज्य प्राप्त हुआ। वत्सराज उदयन ने अपने सेनापति 'रुमण्वान्' को उज्जैनी भेज कर पालक को राज्य प्राप्त कराया।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि पालक के विरुद्ध एक अन्य दल उज्जैन में विद्यमान था। इस दल का नेता गोपाल का पुत्र 'आर्यक' था। गोपाल बहुत दिनों से अपनी बहन के साथ कौशाम्बी रहता था। उसे राजकाज में रुचि नहीं थी। पर उस का पुत्र आर्यक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह यह नहीं सहन कर सकता था कि उस के रहते हुवे पालक का राज्य पर अधिकार हो। अतः प्रतीत होता

---

१ कथासरित्सागर के कुछ महत्वपूर्ण श्लोकों को हम यहां उद्धृत करते हैं—

स कौशाम्बीस्थितोऽकस्मादुज्जयिन्याः समागतात्।
दूताच्चण्डमहासेनं विपन्नमशृणोन्नृपम् ॥ ५५ ॥
तस्याङ्गारवतीं देवीं कृतानुगमनं तथा।
तस्मादेव स शुश्राव मोहाद्भूमौ पपात च ॥ ५६ ॥
ततः श्वशुर्यं शोकार्तं स्नेहात्पार्श्वे स्थितं तथा।
गोपालकं स वत्सेशो बाष्पकण्ठोऽभ्यभाषत ॥ ६० ॥
उत्तिष्ठोज्जयिनीं गच्छ राज्यं पालय पैतृकम्
प्रतीक्षन्ते प्रजा हि त्वामिति दूतमुखाच्छ्रुतम् ॥ ६१ ॥
तच्छ्रुत्वा स रुदन् वत्सराजं गोपालकोऽब्रवीत्।
न देव गन्तुं शक्नोमि त्यक्त्वा त्वां भगिनीं तथा ॥ ६२ ॥
न चोत्सहे तातशून्यां स्वपुरीं द्रष्टुमप्यहम्।
तत्पालकोऽनुगो मेऽत्र राजास्तु मदनुज्ञया ॥ ६३ ॥
एवं वदन्यदा नैच्छद्राज्यं गोपालकस्तदा।
सेनापतिं रुमण्वन्तं विसृज्योज्जयिनीं पुरीम् ॥ ६४ ॥
वत्सेश्वरः कनिष्ठं तं श्वशुर्यं पालकाभिधम्।
दत्ताभ्यनुज्ञं ज्येष्ठेन तस्यां राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ६५ ॥

कथासरित्सागर १११. ५५–६५

है कि उसने पालक का विरोध किया और उसी के दल के विरुद्ध पालक की सहायता करने के लिये वत्सराज उदयन ने अपने सेनापति रुमण्वान् को उज्जैनी भेजा था । आर्यक कैद कर लिया गया ।[1] पर कैद हो जाने पर भी उसकी शक्ति कम न हुई । पालक का विरोधी दल अपना आन्दोलन करता रहा । अब इस दल का नेतृत्व 'शर्विलक' ने किया । अन्त में शर्विलक आर्यक को पालक के हाथ से छुड़वाने में समर्थ हुआ ।[2] पालक और आर्यक के गृह कलह में अन्ततोगत्वा आर्यक की विजय हुई । पालक मारा गया और उसके स्थान पर अवन्ती का राज्यसिंहासन आर्यक को प्राप्त हुआ ।[3] आर्यक

---

१. कः कोऽत्र भोः ! राष्ट्रियः समाज्ञापयति । एष खलु आर्यको गोपालदारको राजा भविष्यतीति सिद्धादेशप्रत्ययपरित्रस्तेन पालकेन राज्ञा घोषादानीय घोरे बन्धनागारे बद्धः, तत्र स्वेषु स्वेषु स्थानेषु अप्रमत्तैः भवद्भिर्भवितव्यम् ।

मृच्छकटिक (जीवानन्द) पृ० १७३–१७५

२ हित्वाहं नरपतिबन्धनापदेश-
व्यापत्तिव्यसनमहार्णवं महान्तम् ।
पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी
प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनात् भ्रमामि ॥
भोः ! अहं खलु सिद्धादेश-जनित-परित्रासेन राज्ञा पालकेन घोषादानीय विशसने गूढागारे बन्धनेन बद्धः । तस्माच्च प्रियसुहृत् शर्विलक प्रसादेन बन्धनात् परिभ्रष्टोऽस्मि ।

मृच्छकटिक (जीवानन्द) पृ० २७१-२७२

३. जयति वृषभकेतुर्दक्षयज्ञस्य हन्ता,
तदनु जयति भेत्ता षण्मुखः क्रौञ्चशत्रुः ।
तदनु जयति कृत्स्नां शुभ्रकैलाशकेतुं
विनिहतवरवैरी चार्यको गां विशालाम् ॥
(प्रविश्य सहसा शर्विलकः)
हत्वा तं कुनृपमहं हि पालकं भोः ।
तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम् ।

मृच्छकटिक (जीवानन्द) पृ० ५४६—५५१

ने २४ वर्ष तक राज्य किया ।[1] पुराणों में आर्यक का नाम 'अजक' लिखा गया है ।[2] यह 'अजक' आर्यक ही है, इस में कोई सन्देह नहीं । कहीं कहीं आर्यक के स्थान पर 'सूर्यक' पाठ भी आता है, पर वह ठीक प्रतीत नहीं होता ।

पुराणों में पालक और आर्यक के बीच में 'विशाख यूप' नाम के राजा का उल्लेख है । इस का शासन काल ५० वर्ष लिखा गया है ।[3] पर पुराणों के अतिरिक्त अन्य प्राचीन साहित्य में पालक और आर्यक के बीच में अन्य किसी राजा का उल्लेख नहीं हैं । पालक और आर्यक के गृहकलह (Civil war) के होते हुये यह सम्भव भी कैसे है कि उन के बीच में एक अन्य राजा शासन करे और वह भी वह जिसका शासन काल ५० वर्ष हो । ऐसा प्रतीत होता है कि पालक और आर्यक के गृहकलह का लाभ उठाकर अवन्ती राज्य के किसी प्रदेश में विशाख यूप ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था और वह पालक तथा आर्यक दोनों के शासन काल में स्वतन्त्रता पूर्वक राज्य करने में समर्थ हुआ था ।

आर्यक के अनन्तर 'अवन्तिवर्धन' राजा बना । यह आर्यक का पुत्र था ।[4] पर कथासरित्सागर के अनुसार यह आर्यक का पुत्र न हो कर पालक का पुत्र था,[5] कहीं कहीं इसका नाम नन्दिवर्धन और वर्तिवर्धन भी लिखा गया है ।

अवन्तिवर्धन अवन्ती का अन्तिम स्वतन्त्र राजा था । उस के पश्चात् यह राज्य मगध के साम्राज्यवाद का शिकार हो गया । इस के पश्चात् अवन्ती की स्वतन्त्र सता लुप्त होजाती है और वह मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो जाता

---

१. चतुर्विंशत् समा राजा पालको भविता ततः
Pargiter–Dynasties of Kali Age p. 19

२. एकविंशत् समा राज्यं आजकस्य भविष्यति । Pargiter p. 19

३. विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतिं समाः । Pargiter p. 19

४. भविष्यति समा विंशत् तत्सुतो नन्दिवर्धनः । Pargiter p. 19

५. अस्त्युज्जयिन्यां नृपतिः श्रीमान् पालकसंज्ञकः ।
कुमारस्तस्य पुत्रोऽस्ति सुनामावन्तिवर्धनः ॥
कथासरित्सागर पृ० ६०८

है। अवन्तिवर्धन का शासनकाल ३० वर्ष था। ऐसा प्रतीत होता है कि अवन्तिवर्धन सम्पूर्ण अवन्ती राज्य का स्वामी नहीं था, विशाखयूप इसके समय में भी स्वतन्त्रता के साथ अपने पृथक् राज्य का शासन कर रहा था। विशाखयूप पालक के बाद राजगद्दी पर बैठा था। आर्यक और अवन्तिवर्धन का सम्मिलित शासन काल ९१ वर्ष है और विशाख यूप का ५० वर्ष। सम्भव है कि जिस समय अवन्तिवर्धन का राज्य मगध के आधीन हुआ हो, तभी विशाखयूप के राज्य का अन्त हो गया हो और दोनों प्रायः एक ही समय में मगध साम्राज्यवाद के शिकार बन गये हों।

बौद्ध साहित्य में अनेक स्थानों तक अवन्ती राज्य का उल्लेख आता है। बौद्ध धर्म के अनेक उत्साह सम्पन्न और श्रद्धालु अनुयायी अवन्ती देश के निवासी थे। अभय कुमार, इसदासी, इसिदत्त, सोणकुटिकण्ण और महाकच्चायन आदि अनेक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अवन्ती के ही रहने वाले थे।[1] महाकच्चायन बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से एक था और एक स्थान पर बुद्ध ने स्वयं कहा है कि वह उस की शिक्षाओं को भली भांति समझता था। इसी प्रकार सोण भी महात्मा बुद्ध के सर्व प्रधान शिष्यों में से एक था। जिस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुवा था अवन्ती उस से बहुत दूर था अतः शुरु में वहां इस नवीन धर्म को प्रचारित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। भिक्षु संघ के अधिवेशन के लिये दस भिक्षुओं की उपस्थिति आवश्यक होती थी। पर अवन्ती जैसे सुदूरवर्ती प्रदेश में, जहां बुद्ध की शिक्षाओं का अभी प्रचार प्रारम्भ ही हुआ था, इतने भिक्षुओं को एकत्रित कर सकना कठिन था, इस लिये महाकच्चायन ने महात्मा बुद्ध से निवेदन किया था कि अवन्ती के लिये इस नियम को शिथिल कर दिया जावे। महाकच्चायन के निवेदन को ध्यान में रख कर बुद्ध ने यह व्यवस्था कर दी कि मध्यदेश के अतिरिक्त अन्य देशों में बौद्ध संघ के लिये चार की उपस्थिति पर्याप्त समझी जावे।[2]

---

1. Cambridge History of Iudia p. 186
2. Bhandarkar–Carmichael Lectures, 1918 p. 43

पांचवां अध्याय

वत्स राज्य
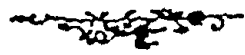
महात्मा बुद्ध के समय में वत्स देश का राजा उदयन था। वह शतानीक परन्तप का पुत्र था।[१] वंश की दृष्टि से वह प्राचीन पौरव वंश में उत्पन्न हुआ था।[२] इसकी माता विदेह की राजकुमारी थी, इसीलिये महाकवि भास ने इसे वैदेहीपुत्र लिखा है।[३] उदयन बहुत पराक्रमी राजा था। उसकी राजधानी कौशाम्बी नगरी थी। अवन्ती के राजा प्रद्योत के साथ उदयन के संघर्ष का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। उसका यहां निर्देश कर देना ही पर्याप्त है। अन्त में अवन्ती और वत्स में सन्धि स्थापित हो गई थी और इस सन्धि को दृढ़ रखने के लिये उनमें वैवाहिक सम्बन्ध भी हो गया था। प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता उदयन की प्रथम रानी थी। जब से उदयन वासवदत्ता के प्रेम में फंसा, उसने राज्य कार्य की उपेक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। सम्पूर्ण शासन-शक्ति उसके प्रधान मन्त्री यौगन्धरायण के हाथ में आगई। यौगन्धरायण कितना चाणाक्ष तथा नीति कुशल मन्त्री था, इसका उल्लेख पहले आचुका है। वह वत्स को उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा देना चाहता था। वह साम्राज्यवाद के सिद्धान्त का अनुयायी था। अवन्ति देश से सन्धि होचुकी थी, अब उधर से किसी प्रकार का

---

१. उदयनः शतानीकस्य पुत्रः सहस्रानीकस्य नप्ता।

भास—प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ३०-३१

वसुदानाच्छतानीको भविष्योदयनस्ततः।

Pargiter p. 7

2. Pargiter p. 7

३. 'सदृशमेतत् वैदेहीपुत्रस्य'

भास—स्वप्नवासवदत्ता पृ० ६८

भय नहीं रह गया था। इसलिये यौगन्धरायण ने वत्स की उन्नति के लिये अनेक प्रयत्न प्रारम्भ किये। शीघ्र ही वत्सराज का काशी राज्य के साथ युद्ध प्रारम्भ होगया। महाकवि भास ने इस युद्ध का वृत्तान्त विशद रूप से लिखा है। हम उसे यहां संक्षेप से उल्लिखित करते हैं—

वत्सदेश और काशी का परस्पर संघर्ष हो रहा था। काशी के राजा का नाम था 'आरुणि'। उसने वत्स पर आक्रमण कर बहुत सा प्रदेश जीत लिया। उदयन और महासेन प्रद्योत की सम्मिलित सेनायें काशीराज आरुणि को परास्त करने के लिये पर्याप्त न थीं। यौगन्धरायण ने सोचा कि आरुणि को परास्त करने का एक ही उपाय है, वह यह कि मगध राज की सहायता प्राप्त की जावे। मगध के साथ मैत्री का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यौगन्धरायण ने यह आवश्यक समझा कि मगध के राजा 'दर्शक' की भगिनी 'पद्मावती' का विवाह उदयन के साथ करा दिया जावे। उसने इसी उद्देश्य से एक सन्देश दर्शक के पास भेजा। पर दर्शक तैयार नहीं हुआ। वह जानता था कि उदयन वासवदत्ता को हृदय से प्यार करता है, अतः वह पद्मावती को प्रेम नहीं कर सकेगा। पर यौगन्धरायण की नीतिज्ञता ही क्या थी, यदि वह इस समस्या का हल न कर सकता। वह अच्छी तरह अनुभव करता था कि वत्स राज्य के हित के लिये यह विवाह आवश्यक है और जिस तरह भी सम्भव हो, इसे सम्पादित करना चाहिये। उसने एक चाल चली। यदि यह प्रसिद्ध कर दिया जावे कि वासवदत्ता का देहान्त होगया है, तो कुछ समय पश्चात् उदयन को पुनर्विवाह करने के लिये तैयार कर सकना कठिन न होगा। साथ ही, वासवदत्ता की मृत्यु का समाचार जान कर दर्शक भी अपनी बहन का विवाह उदयन के साथ करने के लिये उद्यत होजावेगा।

एक बार की बात है, उदयन शिकार खेलने के लिये जंगल में गया हुआ था। यौगन्धरायण वासवदत्ता के साथ लावानक नामक गांव में ठहरा हुआ था। यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को भी अपने साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित कर लिया। राज्य के हित के नाम से उससे अपील की गई। सेनापति रुमण्वान् और गोपाल (अवन्ती के राजा प्रद्योत का पुत्र) भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित

हुवे। लावानक में आग लगादी गई और यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण दोनों अग्नि में जलकर भस्म होगये हैं। वे वेश बदल कर अपने को छिपा रखने का पहले ही सब प्रबन्ध कर चुके थे। वासवदत्ता का नकली नाम अवन्तिका रखा गया। यौगन्धरायण अवन्तिका को साथ लेकर एक आश्रम में पहुंचा, जहां मगध की राजकुमारी पद्मावती पहले से ठहरी हुई थी। अवन्तिका को वहीं छोड़ दिया गया और यौगन्धरायण अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये तत्परता से कार्य करने लगा।

जब उदयन शिकार से वापिस आया, तो वासवदत्ता के अग्नि में जलकर मरने के वृत्तान्त को सुनकर मूर्छित हो गया। रुमण्वान्, गोपाल आदि ने उसे बहुत आश्वासन दिया, पर उस का शोक दूर नहीं हुआ। वह रातदिन वासवदत्ता की ही चिन्ता में घुलता रहता था। मन्त्री लोग उसे नवीन विवाह के लिये प्रेरित कर रहे थे, पर वासवदत्ता का ध्यान उस के मन से उतरता ही नहीं था। परन्तु काल अपना कार्य कर रहा था। ज्यों ज्यों समय गुजरता गया, वासवदत्ता की स्मृति उदयन के हृदयपट्ट से हटती चली गई। वह दूसरे विवाह के लिये उद्यत होगया। उधर मगधराज दर्शक की विप्रतिपत्ति भी दूर हो गई थी। उसे यही ज्ञात था कि वासवदत्ता का स्वर्गवास हो गया है, इसलिये वह पद्मावती का विवाह उदयन के साथ करने के लिये उद्यत होगया। उदयन और पद्मावती का विवाह संस्कार हो गया। मगध राज दर्शक की सहायता वत्सदेश को प्राप्त हो गई। अब आरुणि को परास्त करना कुछ कठिन नहीं था। आरुणी को परास्त कर दिया गया।

वासवदत्ता और यौगन्धरायण ने किस प्रकार अपने को प्रकट किया इस का बड़ा मनोरञ्जक और हृदयग्राही वर्णन महाकवि भास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'स्वप्न वासवदत्ता' में किया है, पर उस का यहां उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार की कथा बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर में भी आती है।[1] वहां मगधराज का नाम प्रद्योत लिखा गया है। यद्यपि सोमदेव ने प्रद्योत नाम लिख कर भूल की है, पर उस की शेष कथा प्रामाणिक ऐतिहासिक अनुश्रुति पर आश्रित है।

---

१. कथा सरित्सागर की कथा बहुत विस्तृत है। हम उस के कुछ महत्त्वपूर्ण श्लोक यहां उद्धृत करते हैं—

मगधराज दर्शक के साथ सन्धि हो जाने के अनन्तर उदयन की स्थिति बहुत सुरक्षित तथा शक्तियुक्त हो गई थी। अवन्ति और मगध जैसे शक्तिशाली राज्यों की सहायता उसे प्राप्त थी। यौगन्धरायण ने मगधराज से यह प्रतिज्ञा करा ली थी, कि वह कभी उदयन के विरुद्ध विद्रोह नहीं करेगा।[1] अब वत्सराज्य

एवं स राजा वत्सेशः क्रमेण सुतरामभूत्।
प्राप्तवासवदत्तस्तत्सुखासक्तैकमानसः ॥ ३ ॥
यौगन्धरायणश्चास्य महामन्त्री दिवानिशम्।
सेनापती रुमण्वांश्च राज्यभारमुदूहतुः ॥ ४ ॥
स कदाचिच्च चिन्तावानानीय रजनौं गृहम्।
निजगाद रुमण्वन्तं मन्त्री यौगन्धरायणः ॥ ५ ॥
स्त्रीमद्यमृगयासक्तो निश्चिन्तो ह्येष तिष्ठति।
अस्मासु राज्यचिन्ता च सर्वाऽनेन समर्पिता ॥ ८ ॥
तदस्माभिः स्वबुद्ध्यैव तथा कार्यं यथैष तत्।
समग्रपृथिवीराज्यं प्राप्नोत्येव क्रमागतम् ॥ ६ ॥
परिपन्थी च तत्रैकः प्रद्योतो मगधेश्वरः।
पार्ष्णिग्राहः स हि सदा पश्चात् कोपं करोति नः ॥ १६ ॥
तत्तस्य कन्यकारत्नं अस्ति पद्मावतीति यत्।
तदस्य वत्सराजस्य कृते याचामहे वयम् ॥ २० ॥
छन्नां वासवदत्तां च स्थापयित्वा स्वबुद्धितः।
दत्त्वाग्निं वासके ब्रूमो देवी दग्धेति सर्वतः ॥ २१ ॥
नान्यथा तां सुतां राज्ञे ददाति मगधाधिपः।
एतदर्थं स हि मया प्रार्थितः पूर्वमुक्तवान् ॥ २२ ॥
नाहं वत्सेश्वरायैतां दास्याम्यात्माधिकां सुताम्
तस्य वासवदत्तायां स्नेहो हि सुमहानिति ॥ २३ ॥
पद्मावत्यां तु लब्धायां सम्बन्धी मगधाधिपः।
पश्चात् कोपं न कुरुते सहायत्वं च गच्छति ॥ २५ ॥

कथासरित्सागर १५। ३-२५

1. साक्षीकृत्य च तत्कालमग्निं यौगन्धरायणः।
अद्रोहप्रत्ययं राज्ञो मगधेशमकारयत् ॥ ८४ ॥

कथासरित्सागर—पृ. ६२

की साम्राज्य विस्तार सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का सुवर्णावसर उपस्थित हुआ । यौगन्धरायण, रुमण्वान् आदि सब लोग कट्टर साम्राज्यवादी थे । वे उदयन को साम्राज्य विस्तार के लिये निरन्तर उकसाते रहते थे । इसी समय उदयन को पितृ पैतामहों के समय की गड़ी हुई एक अनन्त धनराशि अकस्मात् ही उपलब्ध हो गई ।[1] यह कोश उन के साम्राज्य विस्तार के लिये अत्यन्त सहायक हुआ । कोश के बिना साम्राज्य विस्तृत कर सकना बहुत कठिन था । इस धन राशि से वह समस्या भी हल हो गई ।

साम्राज्यविस्तार के लिये प्रस्थान करने से पूर्व उदयन ने अपने राज्य की शान्ति तथा सुशासन के लिये व्यवस्था की । कथासरित्सागर में लिखा है कि गोपाल को विदेह देश का शासक नियुक्त किया ।[2] और पद्मावती के भाई सिंहवर्मा को चेदी का शासन सौंपा गया ।[3] वैदेह और चेदी के स्वतन्त्र राज्य—ये बौद्धकाल के षोडश महाजानपदों में सम्मिलित हैं—किस समय वत्सराज के अधीन हुवे थे, इस सम्बन्ध में कोई निर्देश प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता । इस प्रकार अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध हो चुकने पर अन्य देशों पर आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ हुई । जो राजा अपने मित्र थे, उन की सहायता प्राप्त की गई । पुलिन्दक नाम का भीलराजा भी अपनी भीलसेना को साथ लेकर वत्सराज उदयन की सहायतार्थ उपस्थित हुआ ।[4]

---

१. खाते च महाम् आविरभून्निधिः ॥ ४३ ॥
अलभ्यत महार्हं च रत्नसिंहासनं ततः । ४४ ॥
कथासरित्सागर पृ ७० ।

२. ददौ वैदेहदेशे च राज्यं गोपालकाय सः ।
सत्कारहेतार्नृपतिः श्वशुर्य्यायानुगच्छते ॥ ५७ ॥
कथासरित्सागर पृ० ८२ ।

३. किंच पद्मावतीभ्रात्रे प्रायच्छत् सिंहवर्मणे ।
सम्मान्य चेदिविषयं सैन्यैः समुपेयुषे ॥ ५८ ॥
कथासरित्सागर पृ० ८२ ।

४. आनाययच्च स विभुर्भिल्लराजं पुलिन्दकम् ।
मित्रं बलैर्व्याप्तदिशं प्रावृट्कालमिवाम्बुदैः ॥ ५९ ॥
कथासरित्सागर पृ० ८२ ।

सब से पूर्व काशी देश पर आक्रमण किया गया। यहाँ का राजा 'ब्रह्मदत्त' था। सम्भवतः, इसी को भास ने आरुणि[1] और तिब्बती साहित्य ने आरनेमि[2] लिखा है। यह सम्भवतः वही काशीराज है, जिसने पहले वत्स पर आक्रमण किया था, और जिस के विरुद्ध अपने देश की रक्षा करने के लिये यौगन्धरायण मगध की सहायता प्राप्त करने के लिये इतना अधिक उत्सुक था। काशी का राज्य बहुत शक्तिशाली तथा समृद्ध था। यौगन्धरायण ने इसका विजय करने के लिये नीति का आश्रय लिया। वत्स के अनेक गुप्तचर काशी भेजे गये। इन गुप्तचरों ने कापालिक का वेश धारण किया। कुछ गुरु बने, बाकी उनके चेले। चेले भिक्षा मांगने जाते थे और अपने गुरु का यश सब जगह फैलाते फिरते थे। लोगों की भीड़ गुरु महाराज का दर्शन करने के लिये आने लगी। यौगन्धरायण के गुप्तचर नकली गुरु जी की महिमा काशीराज ब्रह्मदत्त के कानों तक भी पहुंची। इस असाधारण गुरु का दर्शन करने की उनकी भी इच्छा उत्पन्न हुई। राजा की प्रार्थना पर गुरु महाराज ने एक राजकुमार को शिष्य रूप से स्वीकृत कर लिया। अब क्या था, राजपुत्र यौगन्धरायण के गुप्तचर के काबू में आ गया था। धीरे धीरे उस ने सब गुप्त रहस्य राजकुमार द्वारा मालूम कर लिये। काशीराज ब्रह्मदत्त का चाणाक्ष मन्त्री 'योगकरण्डक' उदयन के आक्रमण का निवारण करने के लिये जो जो उपाय प्रयोग में लारहा था, वे सब उस राजपुत्र द्वारा उदयन के गुप्तचरों को ज्ञात हो जाते थे। योगकरण्डक ने उदयन की सेना के संहार के लिये मार्ग के पानी में जहर डलवा दिया। विषकन्याओं की व्यवस्था की, गुप्तरूप से प्रधान राजपुरुषों को कतल कराने के उद्देश्य से चार लोग भी नियत किये। पर योगकरण्डक के इन सब प्रयत्नों को यौगन्धरायण के दूत मालूम कर लेते थे और उन की सूचना अपने देश में पहुंचा देते थे। इस प्रकार ब्रह्मदत्त की सारी कोशिश विफल होगई।[3] उस के पास इतनी सेना नहीं थी, कि वह सम्मुख युद्ध में उदयन का मुकाबला कर

१. स्वप्नवासवदत्ता भासकविकृत

२. Rockhill–Life of Buddha p. 70

३. यौगन्धरायणश्चाग्रे चारान् वाराणसीं प्रति ।
प्राहिणोद् ब्रह्मदत्तस्य राज्ञो ज्ञातुं विचेष्टितम् ॥ ६१ ॥

सकता । इसी लिये इन उपायों का उपयोग किया गया था । पर जब ये उपाय भी असफल हो गये, तो उस के लिये आत्मसमर्पण के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न रहा ।

वत्सराज उदयन ने ब्रह्मदत्त को शरण देना स्वीकृत कर लिया ।[1] ब्रह्मदत्त ने वत्सराज्य की अधीनता स्वीकृत करली । वह काशी जो कुछ ही समय पहले वत्स पर आक्रमण कर रहा था, अब वत्सराज उदयन की आधीनता में आगया था ।

अत्रान्तरे च ते चाराः धृतकापालिकव्रताः ।
यौगन्धरायणादिष्टाः प्रापुर्वाराणसीं पुरीम् ॥ ७४ ॥
तेषां च कुहिकाभिज्ञो ज्ञानित्वमुपदर्शयन् ।
शिश्रिये गुरुतामेकः शेषास्तच्छिष्यतां ययुः ॥ ७५ ॥
आचार्योऽयं त्रिकालज्ञ इति व्याजगुरुं च तम् ।
शिष्यास्ते ख्यापयामासुर्भिक्षाशिनमितस्ततः ॥ ७६ ॥
रञ्जितं च्छद्मसिद्ध्या च तत्रत्यं नृपवल्लभम् ।
स्वीचक्रे स कमप्येकं राजपुत्रमुपासकम् ॥ ७८ ॥
तन्मुखेनैव राज्ञश्च ब्रह्मदत्तस्य पृच्छतः ।
सोऽभूत्तत्र रहस्यज्ञः प्राप्ते वत्सेशविग्रहे ॥ ७९ ॥
अथास्य ब्रह्मदत्तस्य मन्त्री योगकरण्डकः ।
चकार वत्सराजस्य व्याजान्यागच्छतः पथि ॥ ८० ॥
अदूषयत्प्रतिपथं विषाद्द्रिव्यसुक्तिभि ।
वृक्षान् कुसुमवल्लीश्च तोयानि च तृणानि च ॥ ८१ ॥
विदधे विषकन्याश्च सैन्ये पण्यविलासिनीः ।
प्राहिणोत् पुरुषांश्चैव निशासु च्छद्मघातिनः ॥ ८२ ॥
तच्च विज्ञाय स ज्ञानिलिङ्गी चारो न्यवेदयत् ।
यौगन्धरायणायाशु स्वसहायमुखैस्तदा ॥ ८३ ॥

कथासरित्सागर पृ० ८२—८३

[1] संमत्र्य दत्वा दूतं च शिरोविरचिताञ्जलिः ।
ततः स निकटीभूतं वत्सेश स्वयमभ्यगात् ॥ ८७ ॥
वत्सराजोऽपि तं प्राप्त प्रदत्तोपायनं नृपम् ।
प्रीत्या सम्मानयामास शूरा हि प्रणतिप्रियाः ॥ ८८ ॥

कथा सरित्सागर पृ ८३

उदयन के प्रधान मन्त्री यौगन्धरायण ने जिस प्रकार काशीराज का भेद लेने के लिये गुप्तचर नियत किये थे, वह प्राचीन भारतीय इतिहास में कोई असाधारण बात नहीं है। कौटलीय अर्थशास्त्र में इन सब उपायों का बड़े विशद रूप में वर्णन किया गया है। जिसप्रकार यौगन्धरायण के गुप्तचरों ने ज्ञानी कापालिक गुरु का वेश धारण कर अपनी त्रिकालज्ञता उद्घोषित कर राजा का भेद लिया था, ठीक उसी प्रकार का प्रतिपादन आचार्य चाणक्य ने किया है।[1] अपने गुप्तचरों से भेद लेकर यौगन्धरायण विषमय जल, वनस्पति, पुष्प, फल आदि का उपयोग करने से सावधान हो गया था और उसने इस प्रकार के उपाय किये थे, जिन से योगकरण्डक द्वारा फैलाये हुवे विष का प्रतीकार किया जासके। इसी प्रकार विषकन्याओं के प्रभाव से अपने सैनिकों को बचाने के लिये यह व्यवस्था की कि कोई नई गणिका सेना के उपयोग के लिये न रखी जावे।[2] प्राचीन भारत में यह प्रथा प्रचलित थी कि सेना का मनोरञ्जन करने के लिये गणिकायें साथ रखी जाती थीं। योगकरण्डक की योजना यही थी कि विषकन्याओं को गणिका रूप में भेज कर उनके संसर्ग से आक्रमणकारी वत्स-सेना के प्रधान सेनापतियों का संहार करा दिया जावे।

काशीराज से अपने आधीनता स्वीकृत कराने के अनन्तर उदयन की सेनाओं ने पूर्व दिशा की तरफ़ प्रस्थान किया। मगध के साथ तो पहले ही सन्धि

---

१ मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्ड-जटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरे प्रकाशमश्नीयात्, गूढ-मिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुः—"असौ सिद्धस्सामेधिकः" इति। स मेधाशास्तिभि श्चाभि-गतानामङ्गविधया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेदल्पला-भमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानं "इदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं वा राजा करिष्यतीति।

तदस्य गूढा स्सत्रिणः संवादयेयुः। (कौ० अर्थ० १।७)

२. यौगन्धरायणोप्येतद् बुद्ध्वा प्रतिपदं पथि।
दूषितं तृणतोयादि प्रतियोगैरशोधयत्॥ ८४॥
(कथासरित्सागर पृ० ८३)

हो चुकी थी । अतः अन्य छोटे छोटे राजाओं को जीतते हुवे उन्होंने बंग देश को जीत कर समुद्र के तट पर उदयन के जयस्तम्भ की स्थापना की ।[1]

इसके बाद कलिङ्ग पर आक्रमण किया गया । कलिङ्गराज ने युद्ध के विना ही आधीनता स्वीकृत कर ली । इस प्रकार सम्पूर्ण पूर्व्य भारत ने वत्सराज उदयन की अधीनता स्वीकृत की । अब विन्ध्याचल पार कर दक्षिण की ओर आक्रमण किया गया । महेन्द्र पर्वत माला के प्रदेशों में निवास करने वाले पाण्डुर लोगों को जीत कर उदयन ने कावेरी नदी को पार किया और चोल सम्राट् से आधीनता स्वीकार कराई । चोल देश को जीत कर उदयन ने 'मुरल' राज्य पर आक्रमण किया, सम्भवतः मुरल केरल का ही नाम है, या कथासरित्सागर ने गल्ती से केरल को मुरल लिख दिया है । चोल और केरल राज्यों को जीत कर उदयन ने दक्षिणीय भारत के पश्चिमीय तट से होते हुये उत्तर की तरफ प्रस्थान किया । गोदावरी होता हुवा रेवा नदी को पार कर वह उज्जैनी पहुंचा । उज्जैनी (अवन्ती) के राजा 'महासेन प्रद्योत' ने उसका स्वागत किया । कुछ समय तक उदयन ने अपनी सेनाओं सहित उज्जैनी में विश्राम किया । यहां पर उसकी मुख्य रानी वासवदत्ता का बाल्य काल व्यतीत हुवा था । यह स्थान उदयन को बहुत प्रिय था । इस लिये उसने यहां पर्याप्त समय तक विश्राम किया ।[2]

---

१. प्राप च प्रबलः प्राच्यं चलद्वीचिविघूर्णितम् ।
वङ्गावजयवित्रासवेपमानमिवाम्बुधिम् ॥ ९० ॥
तस्य वेलातटान्ते च जयस्तम्भं चकार सः ॥ ९१ ॥
अवनम्य करे दत्ते कालिङ्गैरग्रगैस्ततः ॥ ९२ ॥ (कथासरित्सागर पृ० ८३)

२. स ययौ दक्षिणं दिशम् ॥ ९३ ॥
तत्र चक्रे स निःसारपाण्डुराननगर्जितान् ।
पर्वताश्रयिणः शत्रून्शरत्काल इवाम्बुदान् ॥ ९४ ॥
उल्लङ्घ्यमाना कावेरी तेन संमर्दकारिणा ।
चोलकेश्वरकीर्तिश्च कालुष्यं ययतुः समम् ॥ ९५ ॥
न परं मुरलानां स सेहे मूर्धसु नोन्नतिम् ॥ ९६ ॥
अथोत्तीर्य स वत्सेशो रेवामुज्जयिनीमगात् ।
प्रविवेश च तां चण्डमहासेनपुरस्कृतः ॥ ९७ ॥ (कथासरित्सागर पृ० ८३)

इसके बाद विजेता उदयन ने महासेन प्रद्योत की भी सेना को सहायतार्थ साथ लेकर पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान किया। पश्चिम दिशा में पहले लाट देश पर आक्रमण किया गया। मही और ताप्ती नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश—दक्षिणीय गुजरात—का प्राचीन नाम 'लाट' देश है। लाट को जीत कर फिर सिन्धु देश या वर्तमान सिन्ध पर आक्रमण किया। सिन्ध जीतने के अनन्तर उदयन के म्लेच्छों और तुरुष्कों के साथ भी युद्ध हुवे। इसी पश्चिम भारत को विजय करते हुवे पारसीक राजा के साथ भी युद्ध हुआ और कथासरित्सागर में लिखा है कि उदयन ने पारसीक पति का संहार किया। इसी विजय के प्रसङ्ग में हूणों का भी जिक्र किया गया है, जिन्हें उदयन ने जीत कर अपने आधीन किया था। इस प्रकार पश्चिम भारत का विजय कर उदयन ने मगध राज की राजधानी में प्रवेश किया। मगध का राजा उदयन की पत्नी पद्मावती का भाई था। मगध में उदयन का खूब स्वागत हुआ। इस विजय यात्रा से उदयन भारत का सब से शक्तिशाली राजा बन गया था।[1]

भारत के अन्य विविध प्रदेशों को जीतते हुवे उदयन ने कोशल और गान्धार देशों को जीतने का उद्योग नहीं किया। कोशल में उन दिनों प्रसिद्ध

---

१. तस्य खड्गलता नूनं प्रतापानलधूमिका ।
यच्चक्रे लाटनारीणामुदश्रुकलुषा दृशः ॥ १०४ ॥
ततः कुबेरतिलकामलकासंगशंसिनीम् ।
कैलाशहाससुभगामाशामभिससार सः ॥ १०७ ॥
सिन्धुराजं वशीकृत्य हरिसैन्यैरनुद्रुतः ।
क्षपयामास स म्लेच्छान् राघवो राक्षसानिव ॥ १०८ ॥
तुरुष्कतुरगव्राताः क्षुब्धस्याब्धेरिवोर्मयः ।
तद्गजेन्द्रघटावेलावनेषु दलशो ययुः ॥ १०९ ॥
गृहीतारिकरः श्रीमान् पापस्य पुरुषोत्तमः ।
राहोरिव स चिच्छेद पारसीकपतेः शिरः ॥ ११० ॥
हूणहानिकृतस्तस्य मुखरीकृतदिङ्मुखा ।
कीर्तिर्द्वितीया गङ्गेव विचचार हिमाचले ॥ १११ ॥
(कथासरित्सागर पृ० ८९)

राजा 'प्रसेनजित्' शासन कर रहा था। गान्धार का राजा 'कलिङ्गदत्त' था, जो तक्षशिला में शासन करता था। उदयन ने इस कलिंगदत्त के साथ भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया था। कथासरित्सागर में कथा आती है कि कलिंगदत्त की एक कन्या थी, जिसका नाम था 'कलिङ्गसेना'। कलिङ्गदत्त चाहता था कि अपनी कन्या का विवाह कोशलराजा प्रसेनजित् के साथ करे। पर कलिङ्गसेना उदयन पर अनुरक्त थी। उदयन भी उससे विवाह करने को इच्छुक था। उदयन की दृष्टि में इस विवाह का राजनीतिक उद्देश्य भी था। वह समझता था कि कलिंगसेना के साथ विवाह होजाने से गान्धार की शक्ति भी उसे प्राप्त हो जावेगी।[1]

उदयन का यह साम्राज्य विस्तार का वृत्तान्त कथासरित्सागर में उल्लिखित है। वर्णन को पढ़ कर यह मान सकना कठिन नहीं है कि यह वृत्तान्त वास्तविक ऐतिहासिक अनुश्रुति पर आश्रित है। सम्भव है कि इस में कुछ अतिशयोक्ति हो। पर प्राचीन समय में भी भारत में साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा को लेकर अनेक सम्राट् दिग्विजय के लिये निकला करते थे। उदयन के समय से बहुत पूर्व हस्तिनापुर के राजा युधिष्ठिर ने दिग्विजय करके अश्वमेध यज्ञ किया था। इस दिग्विजय का अभिप्राय यह नहीं होता था कि अन्य राज्यों को नष्ट कर उनके प्रदेशों को अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया जावे। इसका उद्देश्य केवल अपनी प्रभुता को स्वीकृत कराना ही होता था। वत्सराज उदयन ने भी यही किया। काशी तक को उस ने जीत कर अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। हमें कथासरित्सागर के वृत्तान्त में कोई ऐसी बात नजर नहीं आती, जिसे असम्भव कहा जा सके। पश्चिम भारत में जिन म्लेच्छों, तुरुष्कों और पारसीकों का जिक्र किया गया है, उन की सत्ता को भी असम्भव कह सकना कठिन है। कारण यह है कि भारत के अत्यन्त पुरातन साहित्य में इन जातियों का उल्लेख

---

१. वशगे हि महाराजे तत्प्राप्त्या तत्पितर्यपि ।
फलिङ्गदत्ते पृथिवी ते सुतरां वर्त्स्यते वशे ॥ ६ ॥
(कथासरित्सागर पृ० १६७)

है। इस काल में भारत का पाश्चात्य देशों के साथ सम्बन्ध विद्यमान था और ये विभिन्न जातियां भारत में प्रवेश कर चुकी थीं। प्रसिद्ध पारसीक साम्राज्य निर्माता 'डेरियस' का आक्रमण इस समय से कुछ पूर्व हो चुका था। सम्भव है कि उस द्वारा जो पारसीक क्षत्रप पश्चिमोत्तर भारत के शासन के लिये नियत किये गये हों, उन में से ही किसी के घात की अनुश्रुति को कथासरित्सागर ने उल्लिखित किया हो। इस वर्णन में असम्भवता कुछ भी प्रतीत नहीं होती है।

भारत के प्राचीन इतिहास में वत्सराज उदयन का बहुत महत्व है। प्राचीन साहित्य के अनेक ग्रन्थों में उदयन सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख है। बौद्ध, जैन और संस्कृत—सभी प्रकार के साहित्य में उदयन विषयक कथायें उपलब्ध होती हैं।[1] उदयन की मृत्यु के बहुत समय पश्चात् तक उस की कथायें सर्वसाधारण में प्रचलित रहीं। कालिदास ने अपने मेघदूत में मेघ से कहा कि जब अवन्ती पहुंचना, तो वहां उन ग्राम वृद्धों को मिलना, जो उदयन सम्बन्धी कथाओं को खूब अच्छी तरह जानते हैं।[2] हमारी सम्मति में भारतीय इतिहास के आधु-

---

१. उदयन का वृत्तान्त निम्न लिखित ग्रन्थों में मिलता है—

१. स्वप्नवासवदत्ता
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण
३. रत्नावली
४. प्रियदर्शिका
५. जातक साहित्य
६. धम्मपद अट्ठकथा (उदेनवत्थु)
७ ललितविस्तार
८. दिव्यावदान
९. कथासरित्सागर
१०. बृहत्कथामञ्जरी
११. पुराण ग्रन्थ
१२. तिब्बती साहित्य (Rockhill-Life of Buddha)
१३. चीनी साहित्य (Watters-On Yuan Chwang)

२ प्राप्यावन्ती मुदयनकथाकोविदान् ग्रामवृद्धान्
(कालिदास—मेघदूत)

निक लेखकों ने उदयन के साथ न्याय नहीं किया है। यदि प्राचीन साहित्य में विद्यमान ऐतिहासिक अनुश्रुति की दृष्टि से देखा जाय, तो उदयन का मुकाबिला बहुत कम राजा कर सकेंगे। पर इस दिग्विजयी साम्राज्य निर्माता के ऐतिहासिक महत्त्व को अब प्रायः लोग भूल गये हैं। आशा है, अब भारतीय इतिहास के लेखक उदयन को कुछ अधिक महत्त्व दे सकेंगे। उदयन की विजयों का उल्लेख केवल कथा-सरित्सागर में ही नहीं मिलता है। अपितु श्रीहर्षकृत प्रियदर्शिका में भी यह मिलता है कि उसने कलिङ्ग देश का विजय किया था।[1] उदयन के साथ सम्बन्ध रखने वाली विविध घटनाओं को लेकर स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रियदर्शिका, रत्नावली आदि विविध नाटकों का रचा जाना इस बात को सिद्ध करता है कि पुरातन समय में इस राजा की बहुत ही अधिक प्रसिद्धि थी।

उदयन की दो रानियों का जिकर पहिले किया जा चुका है। पर वासवदत्ता और पद्मावती के अतिरिक्त अन्य रानियों का उल्लेख भी प्राचीन साहित्य में हुआ है। प्रियदर्शिका के अनुसार उदयन का विवाह अङ्ग देश के राजा दृढवर्मन् की कन्या के साथ भी हुआ था। बौद्ध साहित्य के अनुसार उदयन की एक अन्य रानी का नाम मागन्दीया था, जो कुरुब्राह्मण और सामवती की कन्या थी। रत्नावली में उदयन के सागरिका के साथ स्नेह का उल्लेख मिलता है।

उदयन के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वृत्तान्त लिख सकना सुगम कार्य नहीं है। पुराणों के अनुसार उदयन का उत्तराधिकारी वहीनर था।[3] कथासरित्सागर और बृहत्कथामञ्जरी के अनुसार उदयन के पुत्र का नाम नरवाहनदत्त था।[4] बौद्ध ग्रन्थों में उदयन के पुत्र का नाम बोधि लिखा

---

१. श्रीहर्ष—प्रियदर्शिका, अङ्क ४

२. भविष्यति चोदयनात् वीरो राजा वहीनरः

३. कामदेवावतारोऽयं राजन् जातः तवात्मजः।
नरवाहनदत्तं च जानीह्येनमिहाख्यया ॥ ७३ ॥

कथासरित्सागर—पृ० १०५

है ।[1] बौद्ध ग्रन्थों और पुराणों में उदयन के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में कोई उल्लेख योग्य घटना उपलब्ध नहीं होती, पर कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त के सम्बन्ध में अनेक कथायें लिखी गई हैं । इन कथाओं को संक्षिप्त रूप से उद्धृत कर सकना भी सम्भव नहीं है । ये अत्यन्त विस्तृत, असम्भव व अद्भुत बातों से परिपूर्ण हैं । पर इनका सार यह है कि नरवाहनदत्त ने अपने पिता उदयन के जीवनकाल में ही हिमालय के पार्वत्य प्रदेशों में अनेक युद्ध किये थे और कई पहाड़ी राज्यों को जीत कर अपने आधीन किया था । पर्वतीय प्रदेशों में विद्यमान आषाढ़पुर का राजा मानसवेग नरवाहनदत्त की स्त्री मदनमञ्चुका को हर कर ले गया था । इसी प्रश्न पर आषाढ़पुर के साथ संघर्ष प्रारम्भ हो गया और इस संघर्ष में न केवल आषाढ़पुर अपितु अन्य भी अनेक पहाड़ी राज्य नरवाहनदत्त की आधीनता में आगये थे ।[2]

पुराणों के अनुसार उदयन के उत्तराधिकारी निम्न लिखित हैं—वहीनर दण्डपाणी, निरामित्र और क्षेमक । क्षेमक के साथ पौरववंश, जिस में उदयन उत्पन्न हुआ था, समाप्त हो गया ।[3] उदयन के पश्चात् मगध की साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति विशेष रूप से उत्कर्ष को प्राप्त हो रही थी और पौरववंश का यह वत्सराज्य भी मगध साम्राज्यवाद का शिकार बन गया था ।

वत्सदेश के राजनीतिक इतिहास को समाप्त करने से पूर्व हम इतना और लिख देना आवश्यक समझते हैं कि इस में बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तेजी के साथ हो रहा था । वत्स की राजधानी कौशाम्बी में महात्मा बुद्ध के समय में ही बौद्ध संघ की स्थापना हो चुकी थी । स्वयं महात्मा बुद्ध अपनी

---

१. Cowell-Jatak vol vi, p. 105

२. कथासरित्सागर—पृ० ५७३—६०३

३. वहीनरात्मज श्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।
दण्डपाणे र्निरामित्रो निरामित्रात्तु क्षेमकः ॥
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥
(Pargiter p. 7-8)

नवीन धार्मिक शिक्षाओं का प्रसार करते हुवे कौशाम्बी पधारे थे । वे अपना पर्याप्त समय कौशाम्बी में व्यतीत करते थे । कौशाम्बी में निवास करते हुवे महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को जो महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये थे । उनमें से अनेक बौद्ध साहित्य में संगृहीत हैं ।

राजा उदयन पहले बौद्धधर्म के प्रति उपेक्षाभाव रखता था । उसने अपनी राजनीतिक शक्ति के आवेश में एक प्रसिद्ध बौद्धभिक्षु को निरर्थक शारीरिक कष्ट भी दिया था । इस भिक्षु का नाम था 'पिण्डोल भारद्वाज' । मातंगजातक में इसकी कथा विशदरूप से लिखी है । हम उसके कुछ अंश यहां उद्धृत करते हैं—

महात्मा बुद्ध का अन्यतम शिष्य पिण्डोल भारद्वाज कौशाम्बी में राजा उदयन के बाग में अनेक बार अपना समय व्यतीत किया करता था । एक बार की बात है, पिण्डोल भारद्वाज कौशाम्बी में आया हुआ था और राजा उदयन के इसी बाग में विश्राम कर रहा था । इसी समय राजा उदयन अपने बहुत से साथियों के साथ उसी बाग में आ पहुंचा । सात दिन से वह डट कर शराब पी रहा था । बाग में पहुंच कर वह राजशय्या पर लेट गया । चारों तरफ स्त्रियां नृत्य, गान और वादन कर रही थीं । उदयन एक स्त्री की गोद में सिर डाल कर लेटा पड़ा था । शीघ्र ही उसे नींद आगई । राजा को सोता देख स्त्रियां नाचना गाना छोड़ बाग का चक्कर काटने लगीं । उन्होंने देखा, एक भिक्षु उस बाग में बैठा हुआ विश्राम कर रहा है । वे नमस्कार कर उसके पास बैठ गई । भिक्षु ने उन्हें उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया । इतने में ही राजा की नींद खुल गई । स्त्रियों को न देख उसे बहुत क्रोध आया । अपनी स्त्रियों को उस भिक्षु के चारों ओर बैठे देख उदयन आपे से बाहर हो गया और लाल कीड़ियों से भरे हुवे एक टोकरे को उसके शरीर से बांध उसे कटाने का दण्ड दिया ।[1]

---

1. Cowell-The Jatak vol. iv. p. 235

इस प्रकार स्पष्ट है कि पहले राजा उदयन भोग विलास में मस्त रहता था और उसे बौद्धधर्म की शिक्षाओं का कोई भी ध्यान नहीं था। पर अपने जीवन के अन्तिम भाग में उसमें परिवर्तन आया और इसी पिण्डोल भारद्वाज द्वारा वह बौद्धधर्म की शिक्षाओं के प्रति आकृष्ट हुआ।[1] हम यह नहीं कह सकते कि उसने बाकायदा बौद्धधर्म को स्वीकृत कर लिया था, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसकी इस नवीन धर्म में श्रद्धा अवश्य हो गई थी। बौद्धसाहित्य में स्थान स्थान पर उदयन का उल्लेख मिलता है। चीनी अनुश्रुति के अनुसार उदयन ने महात्मा बुद्ध की एक सुवर्णप्रतिमा का निर्माण कराया था।[2] जिस समय प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यून्त्सांग भारतयात्रा करके अपने देश को वापिस गया था, तब वह अपने साथ बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएं ले गया था। उनमें चन्दन की बनी हुई एक अनुपम बुद्ध की मूर्ति भी थी। कहा जाता है कि यह उदयन द्वारा निर्मित सुवर्णप्रतिमा को ही देख कर बनाई गई थी।[3] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पीछे से उदयन बौद्धधर्म के प्रति आकर्षित होगया था और उसने बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा का भी प्रकाश किया था।

---

1. Cambridge History of India, vol. I. p. 188
2. Edkins-Chinese Buddhism, p. 49
3. Beal-Records of the Western World, vol. I, Intro. p. xx

छठा अध्याय

कोशलराज्य

महात्मा बुद्ध का समकालीन कोशलवंश का राजा पसेनदी या प्रसेनजित् था। जातक साहित्य के अनुसार इसके पिता का नाम महाकोशल था।[1] पर तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार प्रसेनजित् आरनेमि ब्रह्मदत्त का पुत्र था।[2] पुराणों के अनुसार कोशल के राजा प्राचीन ऐक्ष्वाकववंश के थे और प्रसेनजित् राहुल के बाद राजगद्दी पर बैठा था।[3] कोशल के राजाओं के इक्ष्वाकुवंश के होने की पुष्टि बौद्धसाहित्य से भी मिलती है।[4] महाकोशल के अतिरिक्त अन्य भी अनेक कोशल के राजाओं की सूचना बौद्ध साहित्य से मिलती है। इनके नाम वंक, दब्बसेन और कंस हैं।[5]

कोशलदेश के राजा भी बड़े प्रतापशाली और साम्राज्य विस्तार के पक्षपाती थे। उनका बहुत पुरातनकाल से काशीराज्य के साथ संघर्ष चल रहा था। काशी और कोशल के संघर्ष में पहले काशी अधिक प्रबल था। काशी के राजाओं की वंशक्रमानुगत उपाधि ब्रह्मदत्त थी। काशी का प्रत्येक राजा उसी

---

१. Cowell–Jatak, vol. ii, p. 164

२. Rockhill–Life of Buddha, p. 16

३ शुद्धोदनस्य भविता सिद्धार्थो राहुलस्तथा।
प्रसेनजित्ततो भाव्यः।

Pargiter–Dynasties of the Kali Age, p. 11

४. भगवापि खत्तियो अहमपि खत्तियो, भगवापि कोसलको अहमपि कोशलको, भगवापि आसीतिको अहमपि आसीतिको।

(Majjhima Nikaya ii, 124)

Law–Some Ksatriya Tribes of Ancient India, Ch. 5

५. Cambridge History of India vol. I, p, 180

प्रकार ब्रह्मदत्त कहाता था, जैसे कि प्राचीन समय में विदेह के राजा जनक कहाते थे। कोशाम्बी जातक,[१] कुनल जातक[२] और महावग्ग जातक[३] में काशी के ब्रह्मदत्त राजाओं का उल्लेख है, जिन्होंने कि कोशलदेश पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। ब्रह्मदत्त जातक[४] में काशी के एक राजा का वर्णन है, जिसने कि कोशल की राजधानी श्रावस्ती पर आक्रमण किया और वहां के राजा को कैद कर लिया। इसी प्रकार दीघीतिकोशल जातक में एक काशीराज का वर्णन आता है, जिसने कोशलदेश को जीत कर अपने अधीन कर लिया था और न केवल कोशल को जीता ही था, अपितु वहां के राजा को मार कर राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। कोशल का राजकुमार 'दीघावु' काशीराज की सेवा में रहता था। एक बार की बात है कि काशीराज सोया हुआ था और दीघावु उसके पास बैठा हुवा जाग रहा था। दीघावु के दिल में यह विचार आया कि काशीराज को कतल करने का यह अच्छा अवसर है और इस प्रकार वह अपने पिता की हत्या का बदला ले सकता है। पर सोच विचार के अनंतर उसने यही निश्चय किया कि काशीराज को न मारा जावे। पीछे जब यह बात काशीराज को ज्ञात हुई, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कोशल का राज्य दीघावु को लौटा दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि पहले काशी का पक्ष बहुत प्रबल था। परन्तु पीछे से काशी और कोशल के संघर्ष में कोशल का पक्ष प्रबल होने लगा और धीरे धीरे काशी का राज्य कोशल के अधीन हो गया। घट जातक में लिखा है कि कोशल के राजा वंक ने काशी पर आक्रमण और वहां के राजा ब्रह्मदत्त को पराजित कर अपने अधीन किया।[५] ऐसा प्रतीत होता है कि वंक के पश्चात् काशी देश का कुछ न कुछ प्रदेश

---

१. Cowell-Jatak vol. iii, p. 289
२. Cowell-Jatak, vol. v, p. 219
३. Cowell-Jatak vol. vi, p. 156
४. Cowell-Jatak vol. iii, p. 76
५. Cowell-Jatak vol. iii, p. 111

अवश्य ही कोशल के अधीन होगया था, क्योंकि प्रसेनजित् के पिता 'महाकोशल' ने जब अपनी कन्या का विवाह मगध के राजा 'बिम्बिसार' के साथ किया था, तो दहेज में स्नान और अलंकार का खर्च चलाने के लिये काशी का एक ग्राम प्रदान किया था।[१]

कोशलराज्य की राजधानी श्रावस्ती थी। बौद्धग्रन्थों में इसे सावट्ठी लिखा गया है। सावट्ठी के अतिरिक्त अन्य भी अनेक नगर कोशल में विद्यमान थे। इन में अयोध्या, साकेत, सेतव्य, और उकठ के नाम उल्लेखनीय हैं।[२]

महाकोशल के बाद कोशल की राजगद्दी पर प्रसेनजित् बैठा। इसका दूसरा नाम अग्निदत्त था। अनेक ग्रन्थों में इसे अग्निदत्त लिखा गया है।[३] बौद्ध साहित्य में इसके अनेक मन्त्रियों के नाम भी उपलब्ध होते हैं। प्रसेनजित् का प्रधान मंत्री 'दीर्घचारायण' था।[४] सम्भवतः यह वही दीर्घचारायण है, जिसका उल्लेख कौटलीय अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्र के अन्यतम आचार्य के रूप में आया है[५] इसके एक अन्य मंत्री का नाम मृगधरे था।[६] इसी प्रकार इसके एक अन्य मंत्री का भी उल्लेख आता है, जिसका नाम श्रीवृद्ध था।[७] तिब्बती अनुश्रुति में कोशलराज प्रसेनजित् की मंत्री परिषद् का उल्लेख है, जिसके सदस्यों की संख्या ५०० थी।[८] कोशल की परिषद् का उल्लेख प्राचीन साहित्य के अन्य भी अनेक ग्रन्थों में आता है।

---

१. Cowell-Jatak vol. ii, p. 164, 275. vol. iv, p. 216

२. Raychowdhary-Political History of Ancient India, p. 63

३. Rhys Davids-Buddhist India, p. 10

४ Rockhill-Life of Buddha, p. 112

५. 'तृणमिति' दीर्घश्चारायणः। कौ० अर्थ० ५।५

६. Hoernle-Uvasagadasao ii, Appendix, p. 56.

७. Majjhim Nikaya ii, p. 112

८. Rockhill-Life of Buddha p. 112

कौशल के साम्राज्यवाद ने केवल काशी को ही अपनी अधीनता में नहीं कर लिया था, अपितु अन्य अनेक राजा भी कौशल के आधिपत्य को स्वीकृत करते थे। संयुक्त निकाय में लिखा है कि एक बार जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में पधारे, तो वहां पर पांच राजा, जिन में पसेनदी प्रमुख था, विविध प्रकार के आमोद प्रमोद में व्यस्त थे।[1] पसेनदी के अतिरिक्त अन्य चार राजाओं की स्थिति अधीनवर्ती राजाओं की थी, जो कोशलराज के आधिपत्य को स्वीकृत करते थे। इसी प्रकार अन्यत्र पांच राजाओं का वर्णन है, जो दर्शन सम्बन्धी किसी विषय पर पसेनदी के साथ विवाद में व्यापृत थे।[2] इन राजाओं की अधीनता में कौन से प्रदेश विद्यमान थे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पर शाक्य और मल्ल राज्यों का, जिन में गणतन्त्र शासन प्रणाली विद्यमान थी, कौशल की अधीनता में होना बौद्ध साहित्य द्वारा प्रमाणित होता है। जिस समय कोशलराज प्रसेनजित् ने अपना राजदूत शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु में यह सन्देश लेकर भेजा था, कि मैं एक शाक्य राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहता हूं, तो शाक्य लोगों ने अपने सन्थागार में विचार करते हुवे यह कहा था—'हम एक ऐसे प्रदेश में निवास करते हैं, जो कोशल के राजा के आधिपत्य में है। यदि हम उसे कन्या देने से इन्कार करेंगे, तब उसके क्रोध का ठिकाना न रहेगा।[3] इस से स्पष्ट है कि राजा अग्निदत्त प्रसेनजित् के समय में शाक्य गणराज्य पर कोशल का आधिपत्य विद्यमान था। इसी प्रकार मल्लराज्य के भी कोशल की अधीनता में होने का प्रमाण जातक साहित्य में मिलता है।[4] परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि इन राज्यों की स्वतन्त्र सत्ता अभी तक विद्यमान थी। ये कौशलराज की अधीनता मात्र स्वीकृत करते थे। अभी तक कौशल के साम्राज्यवाद ने यह रूप धारण नहीं किया था कि इनकी स्वतन्त्र स्थिति को सर्वथा नष्ट कर दे।

---

1. Raychowdhry--Political History of Ancinet India p. 120
2. Cambridge History of India vol. I, p. 181
3. Cowell-Jatak vol. iv, p. 92
4. Cowell-Jatak vol. iv, p. 95

परन्तु कोशलराज्य की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियां इन पांच राज्यों को ही अपनी अधीनता में रखने से सन्तुष्ट नहीं थीं। वे अपने को भारत में सर्वप्रधान राज्य बनाना चाहती थीं। इधर मगध भी इसी प्रयत्न में लगा था। परिणाम यह हुआ कि मगध और कोशल में परस्पर युद्ध छिड़ गया। इस संघर्ष का वर्णन बौद्ध साहित्य में अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। हम यहां पर संक्षेप के साथ कुछ महत्व पूर्ण बातों को उपस्थित करते हैं।[१]

महाकोशल की कन्या व प्रसेनजित् की भगिनी का नाम 'कोशलदेवी' था। इस का विवाह मगध के राजा बिम्बिसार के साथ हुआ था। इसी विवाह के अवसर पर कोशल देवी के नहानचुन्नमुल्य (स्नान चूर्ण मूल्य) के रूप में काशीराज्य का एक ग्राम बिम्बिसार को दहेज में दिया गया था। जब देवदत्त की प्रेरणा से अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार का घात कर मगध का राज्य अपने अधिकार में कर लिया, तो कोशलदेवी भी देर तक जीवित नहीं रह सकी। अपने पति बिम्बिसार के शोक में ही उसका भी स्वर्गवास हो गया। अब प्रसेनजित् ने सोचा कि काशी का ग्राम कोशल देवी के ही 'नहानचुन्नमुल्य' के रूप में दिया गया था। अब मैं पितृघाती अजातशत्रु को इस ग्राम का उपयोग न करने दूंगा। यह सोच कर प्रसेनजित् ने उस ग्राम पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस ग्राम के प्रश्न पर प्रसेनजित् और अजातशत्रु में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अजातशत्रु नवयुवक था, वह बहुत बलशाली तथा महत्वाकांक्षी था। दूसरी ओर प्रसेनजित् वृद्ध हो चुका था। इस लिये पहले अनेक युद्धों में वह निरन्तर पराजित होता रहा। प्रसेनजित् अपनी पराजय से बहुत चिन्तित रहता था। एक दिन उसने अपने दरबारियों के सम्मुख इस समस्या को उपस्थित किया। उन्होंने कहा, भिक्षुओं से इस समस्या का हल पूछना चाहिये। राजा ने कुछ लोगों को भिक्षुओं की बातें सुनने के लिये नियत कर दिया। दो भिक्खु आपस में मगध और कोशल के युद्ध की चर्चा कर रहे थे। राजा प्रसेनजित् के भेजे हुवे दूत इनकी बातों को ध्यान से सुनने लगे। बातें चलते हुवे उन भिक्खुओं में से एक

१. Cowell-Jatak vol. ii, p. 275

ने कहा— यदि प्रसेनजित् मगध को जीतना चाहता है, तो उसे शकट व्यूह बना कर युद्ध कराना चाहिये। दूतों ने यह बात प्रसेनजित् तक पहुंचा दी। उसने यही किया। एक बार फिर सेना एकत्रित की गई। सेना को शकट व्यूह की पद्धति से संगठित किया गया। अब इस बार अजातशत्रु परास्त हो गया। वह केवल परास्त ही नहीं हुआ, पर प्रसेनजित् के हाथ कैद भी हो गया।

यद्यपि अन्त में प्रसेनजित् अजातशत्रु को परास्त करने में समर्थ हुआ था, पर मगध राज्य की शक्ति का उसे भली भांति परिज्ञान होगया था। उसने यही उचित समझा कि अजातशत्रु के साथ सन्धि कर ली जावे और इस सन्धि को स्थिर रखने के लिये अपनी कन्या वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया जावे। जिस प्रकार कोशलदेवी के विवाह के समय काशी का वह ग्राम, जिस की आमदनी एक लाख वार्षिक थी, दहेज में 'नहान चुन्न मूल्य' के रूप में दिया गया था, उसी प्रकार वह अब फिर वजिरा के विवाह में अजातशत्रु को प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार अजात शत्रु और कोशलराज अग्निदत्त प्रसेनजित् के देर से चले आते हुवे संघर्ष का अन्त हुवा।

राजा प्रसेनजित् की अनेक रानियां थीं। एक रानी का नाम 'मल्लिका' था। यह श्रावस्ती की मालाकार श्रेणी (Guild of the Garland-makers) के मुखिया की कन्या थी। एक बार की बात है, जब उसकी आयु १६ वर्ष की थी, वह उद्यान में पुष्प एकत्रित करने के लिये जारही थी, उस समय प्रसेनजित् अजातशत्रु से परास्त होकर अपनी राजधानी को लौट रहा था। मल्लिका के अपूर्व सौन्दर्य को देख कर प्रसेनजित् उस पर मुग्ध होगया और यद्यपि वह वृद्ध हो चुका था, तथापि उसने १६ वर्ष की युवती मल्लिका को अपनी पटरानी बना लिया।[1]

प्रसेनजित् की दूसरी रानी का नाम 'वासवखत्तिया' था। यह दासी से उत्पन्न हुई एक शाक्य राजकुमारी थी प्रसेनजित् शाक्य लोगों के साथ वैवाहिक

---

1. Cowell-Jatak vol. iii, p. 245

सम्बन्ध स्थापित करना चाहा था। इसलिये उसने अपना एक दूत शाक्यों के पास यह सन्देश ले कर भेजा था कि वे एक शाक्य राजकुमारी को विवाह के लिये प्रदान करें। पर शाक्य लोग अपनी किसी कुमारी का विवाह प्रसेनजित् के साथ करने में अपमान समझते थे। पर उनके लिये निषेध कर सकना भी कठिन था, क्योंकि इससे प्रसेनजित् के क्रोध का ठिकाना न रहता और वह आक्रमण कर उनका विनाश कर देता। अतः महानाम नाम के एक शाक्य के निर्देश पर उन्होंने एक दासी पुत्री को प्रसेनजित् के साथ विवाह करने के लिये भेज दिया। इस कुमारी का नाम वासवखत्तिया था और इसी से 'विरुद्धक व विडूडभ' की उत्पत्ति हुई थी।[1]

तिब्बती अनुश्रुति कुछ भिन्न प्रकार की है। उसके अनुसार प्रसेनजित् की दो रानियां थीं। उनके नाम थे, मल्लिका और वर्षिका। मल्लिका शाक्य कुमारी थी, जो दासी से उत्पन्न हुई थी। विरुद्धक (विडूडभ) इसी मल्लिका का पुत्र था।[2] सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में इतनी बात समान रूप से पाई जाती है कि विरुद्धक शाक्य कुमारी का पुत्र था जो कि दासी से उत्पन्न हुई थी।

जब विरुद्धक बड़ा हुआ, तो उसे अपनी माता विषयक रहस्य का परिज्ञान हुआ। जिस समय विरुद्धक १६ वर्ष का होगया, तो उसने अपने नाना के घर जाने की उत्कण्ठा प्रदर्शित की। उसकी माता ने टालने का बहुत प्रयत्न किया, पर वह नहीं माना। अन्त में विवश होकर वासवखत्तिया विरुद्धक को कपिलवस्तु भेजने के लिये तैयार होगई। जिस समय शाक्य लोगों को विरुद्धक के आगमन का समाचार ज्ञात हुआ, तब उनके सम्मुख एक विकट समस्या उत्पन्न होगई। विरुद्धक कोशलदेश का राजकुमार था। उसका स्वागत करना आवश्यक था। पर वह वासवखत्तिया का पुत्र था, जो कि दासी पुत्री थी। दासी पुत्री के लड़के का स्वागत कुलीन शाक्य लोग किस प्रकार कर सकते थे।

जब विरुद्धक कपिलवस्तु पहुंचा, उसे राजकीय अतिथि गृह में ठहराया गया। शाक्य लोग उसके पास मिलने के लिये आये और वासवखत्तिया के पिता

---

१. Cowell-Jatak vol. iv, p. 91-29

२. Rockhill-Life of Buddha p. 77

भाई तथा अन्य सम्बन्धियों का परिचय विरुद्धक को दिया गया। विरुद्धक सब को नमस्कार करता था, पर जवाब में उसे कोई नमस्कार नहीं करता था। उसे शाक्यों के इस व्यवहार पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब उसने इसका कारण पूछा, तो उसे कहा गया कि वे सब लोग तुम से अधिक आयु के हैं, ये तुम्हें नमस्कार कैसे कर सकते हैं। तुम से छोटी आयु के सब शाक्य कुमार बाहर गये हुवे हैं, वे यहां उपस्थित नहीं हैं।

एक दिन कपिलवस्तु रह कर विरुद्धक अपनी राजधानी को वापिस लौटा। अतिथि गृह में जिस स्थान पर वह ठहरा था, उसे पवित्र करने के लिये दूध मिले पानी से धोया गया। विरुद्धक का एक साथी कोई वस्तु छोड़ गया था, उसे लेने के लिये जब वह उस अतिथिगृह में वापिस आया, तो उस मकान को दूध मिले पानी से धोया जाता देख उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने इसका कारण पूछा। उसे ज्ञात हुआ कि विरुद्धक दासीपुत्री का लड़का है। जब यह बात विरुद्धक को भी पता चली, तो वह आपे से बाहर होगया। उसने क्रोध में आकर कहा—'जिस जगह पर मैं ठहरा था, उसे शाक्य लोग दूध मिले पानी से धोते हैं, पर जब मैं राजा बन जाऊंगा, तो वह जगह खून से धोई जावेगी।' विरुद्धक ने शाक्य लोगों से बदला लेने की प्रतिज्ञा करली और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि प्रसेनजित् की मृत्यु के पश्चात् उसे राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने का कब अवसर प्राप्त होता है।[1]

परन्तु विरुधक शाक्यों से बदला लेने के लिये बहुत अधिक उत्सुक था। उस के लिये अपने पिता प्रसेनजित् की मृत्यु तक प्रतीक्षा कर सकना सम्भव नहीं था। अतः उसने प्रसेनजित् के विरुद्ध षड़यन्त्र करना प्रारम्भ किया, जिस का उद्देश्य स्वयं राज्य पर अधिकार प्राप्त करना था। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार उसने मन्त्रिपरिषद् के सब सदस्यों को अपने पक्ष में करना प्रारम्भ कर दिया। मन्त्रिपरिषद् के कुल सदस्य ५०० थे। दीर्घ चारायण—जो प्रसेनजित् का प्रधान मन्त्री था—के अतिरिक्त शेष सब सदस्य विरुधक के पक्ष में हो गये। एक बार

---

१. Cowell–Jatak vol. iv, p. 92–93

जब किसी राजकीय कार्य पर दीर्घ चारायण विरुद्धक के घर आया हुआ था उसने उस से भी बात की और उसे भी अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। पर दीर्घ चारायण अपने स्वामी का अनन्य भक्त था। वह विरुधक के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं हुआ। विरुधक ने उस से यह वचन ले लिया कि वह इस बात चीत का जिकर किसी के भी साथ न करे। दीर्घ चारायण उसे बार बार यही समझाता था कि तुम गल्ती क्यों करते हो। प्रसेनजित वृद्ध हो शीघ्र मर जायगा, तब राज्य तुम्हीं को प्राप्त होगा। पर विरुधक को यह बात समझ में न आई। वह अपने प्रयत्न में लगा रहा।

एक बार की बात है कि भगवान बुद्ध मेत्सुरुदी नामक शाक्य नगर में पधारे हुवे थे। जब यह बात प्रसेनजित् को मालूम हुई, तो वह उन के दर्शनों के लिये गया। दीर्घ चारायण उस के साथ था। जब वे दोनों मेत्सुरुदी पहुंचे तो प्रसेनजित् रथ से नीचे उतर गया और पैदल ही उस स्थान पर पहुंचा, जहां महात्मा बुद्ध ठहरे हुवे थे। प्रसेनजित् ने यह उचित नहीं समझा कि बुद्ध के दर्शनों के लिये राजसी ठाठ बाट के साथ जावे। उसने अपने सम्पूर्ण राजकीय चिन्हों-राजमुकुट, खड्ग आदि—को उतार कर दीर्घ चारायण के सुपुर्द कर दिया और स्वयं सादे वेश में बुद्ध की सेवा में उपस्थित हुआ। बुद्ध और प्रसेनजित् का बड़ा पुराना परिचय था। उन दोनों की आयु भी प्रायः एक बराबर थी। उन की अनेक बार पहले भी एक दूसरे के साथ भेंट हो चुकी थी। वे बड़े प्रेम के साथ मिले और बहुत देर तक आपस में बातें करते रहे। उधर दीर्घ चारायण बाहर खड़ा हुआ प्रसेनजित् के वापिस लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। विरुधक ने उसे अपने साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित होने के लिये बहुत प्रेरणा की थी। मन्त्रि परिषद् के सब सदस्य विरुधक के पक्ष में थे। केवल अकेला वही उस के साथ नहीं था। अब उसने सोचना प्रारम्भ किया कि विरुधक का पक्ष बहुत प्रबल है। अतः उस के साथ मिल जाना ही ठीक है। सब राजकीय चिन्ह उस के पास थे ही। रथ जुता कर वह श्रावस्ती वापिस लौट गया और वहां जाकर विरुधक को राजा उद्घोषित कर दिया। विरुधक का षड्यन्त्र सफल हो गया

और वह अपने पिता के जीवित होते हुवे भी मंत्रि परिषद् की सहायता से राजा बन गया।

जब प्रसेनजित बुद्ध से बातचीत समाप्त कर बाहर निकला, तो अन्य भिक्षुओं से उसे दीर्घ चारायण के विश्वासघात का पता लगा। उसे अब राज्य प्राप्ति की कोई आशा नहीं रह गई थी। सब मन्त्री उस के पहले विरुद्ध थे। अब दीर्घ चारायण भी उस के विरुद्ध हो गया था। उसने यही उचित समझा कि राज्य के लिये प्रयत्न करने का विचार छोड़ कर मगध की तरफ प्रस्थान किया जावे। मगध का राजा अजातशत्रु उस का निकट सम्बन्धी था। उस के यहां आश्रय लेने के अतिरिक्त उसे अन्य कोई मार्ग न सूझता था। वह मगध की ओर चल पड़ा। रास्ते में मल्लिका और वर्जिका रानियां मिलीं, जो उसी की ढूंढ में पैदल ही श्रावस्ती से आरही थीं। मल्लिका का पुत्र विरुद्धक राजगद्दी पर विराजमान था, अतः प्रसेनजित् ने उसे श्रावस्ती वापिस लौटा दिया और स्वयं वर्जिका के साथ मगध राज्य की ओर प्रस्थान किया।

कुछ ही दिनों में वे मगध की राजधानी राजगृह पहुंच गये। अपने आगमन की सूचना देने के लिये उस ने वर्जिका को अजातशत्रु के पास भेजा अजातशत्रु को जब अपने श्वसुर प्रसेनजित के पधारने का समाचार मिला, तो वह बड़ी धूमधाम के साथ उस का स्वागत करने के लिये चला। पर उधर राजा प्रसेनजित की मृत्यु हो चुकी थी। भूख, प्यास और मार्ग की थकावट से पीड़ित उस वृद्ध कोशल नरेश ने अनेक अपथ्य पदार्थों का सेवन किया था। वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर जर्जरित हो चुका था। वह अधिक कष्ट सहन न कर सका। राजगृह के बाहर ही उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार कौशल राज्य के पदच्युत नरेश का अन्त हुआ।

विरुधक के प्रधान मन्त्री का नाम अम्बरीश था। वह उसका बालसखा था। जब विरुधक ने कोशल का राजसिंहासन प्राप्त कर लिया, तो अम्बरीश ने शाक्य लोगों से बदला उतारने की प्रतिज्ञा उसे स्मरण कराई। विरुधक का हृदय तो शाक्यों के प्रति विद्वेष भाव से जल ही रहा था। उसने शाक्यों

पर आक्रमण करने के किये धूमधाम के साथ तैयारी की। जब महात्मा बुद्ध को यह पता लगा कि विरुधक शाक्यों पर आक्रमण करने लगा है, तो उन्हें बहुत खेद हुआ। वे स्वयं शाक्य थे। अतः उन्हों ने कपिल वस्तु की तरफ प्रस्थान किया। मार्ग में एक छाया शून्य 'शक्रोतक' वृक्ष के नीचे अपना आसन जमाया। महात्मा बुद्ध को इस दशा में देख विरुधक को यह विचार उत्पन्न हुआ, कि बुद्ध शाक्यों के विनाश की सम्भावना से बहुत चिन्तित हैं। अतः उसने कपिल वस्तु पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। उसके हृदय में भी महात्मा बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा थी और वह उन्हें दुखी नहीं करना चाहता था।

परन्तु अम्बरीश कट्टर साम्राज्यवादी था। उसने फिर विरुधक को शाक्यों पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया। महामौद्गल्यायन के नेतृत्व में शाक्य लोगों ने अपनी राजधानी कपिलवस्तु की रक्षा के लिये तैयारी की। इस वार विरुधक शाक्यों को पराजित नहीं कर सका। वह स्वयं निराश होकर अपनी राजधानी श्रावस्ती को लौट गया।

पर अम्बरीश कब मानने वाला था। उसने तीसरी बार फिर कोशलराज को शाक्यों पर आक्रमण करने के लिये प्रेरित किया। एक बार फिर विरुधक ने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया। पर उसे इस वार भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। थोड़े से युद्ध के पश्चात् निराश होकर वह अपने राज्य को लौट आया।

अम्बरीश ने देखा कि शस्त्र युद्ध में शाक्यों को परास्त करना सम्भव नहीं है। अतः उसने भेद नीति का आश्रय लिया। उसने शाक्यों के पास निम्नलिखित सन्देश भेजा—यद्यपि मैं आप लोगों के प्रति विशेष स्नेह भाव भी नहीं रखता हूं, पर मुझे आपसे कोई विशेष द्वेष भी नहीं है। अब सब मामला खतम होगया है, अतः कृपा करके अपने दुर्ग के द्वारों को खोल दीजिये।" विरुधक के इस सन्देश पर विचार करने के लिये शाक्य लोग अपने सन्थागारे में एकत्रित हुवे। उन में इस प्रश्न पर बहुत मतभेद था। कुछ लोग कहते थे, हमें अपने द्वार खोल देने चाहियें। दूसरे इसका विरोध करते थे। अम्बरीश की भेद नीति कार्य कर रही थी। आखिर, उन्होंने बहुमत से यही निर्णय किया कि कपिलवस्तु के द्वार खोल दिये जावें।

द्वारों का खुलना था कि विरुधक की सेनाओं ने कपिलवस्तु में प्रवेश किया। शाक्य लोगों का बुरी तरह संहार किया गया। कुल मिला कर ७७००० शाक्य विरुधक की सेनाओं के हाथों से मारे गये।[1] कुछ शाक्य लोग अपनी जान बचा कर भागने में भी समर्थ हुवे। उन्होंने सुदूर पार्वत्य प्रदेशों में जाकर नवीन राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार विरुधक ने शाक्यों के महिमामय गण राज्यों का अन्त किया। इसमें सन्देह नहीं, कि इससे पूर्व भी शाक्य राज्य कोशल की आधीनता स्वीकृत करता था। महाकोशल और अग्निदत्त प्रसेनजित् के राज्य में शाक्यों का प्रदेश भी अन्तर्गत था। पर इन राजाओं ने शाक्य राज्य की स्वाधीनता को नष्ट नहीं किया था। इनके समय में शाक्य गण अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता था। पर अब विरुधक इसका पूर्णतया विनाश करता है। अम्बरीश की साम्राज्यवाद की नीति अपना कार्य कर रही थी। शाक्यों का स्वतन्त्र गणराज्य इस नीति का शिकार हो गया।

विरुधक के किसी अन्य आक्रमण व विजय का हमें परिज्ञान नहीं है। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि महात्मा बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि सात दिन में विरुधक और अम्बरीश का विनाश हो जायगा और ऐसा ही हुआ।[2] वहां इन के विनाश की जो कथा लिखी है, उसे यहां उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं। पर श्रीहर्षकृत रत्नावली से यह प्रगट होता है कि वत्सराज उदयन के सेनापति रुमण्वान् ने न केवल कोशलराज को परास्त ही किया था, अपितु उसका संहार भी किया था।[3] यह कोशलपति कौन था, इस सम्बन्ध में कोई निर्देश रत्नावली में

---

1. Rockhill–Life of Buddha p. 112-121
   और देखिये Cowell–Jatak, vol. iv, p. 93-94.
2. Rockhill–Life of Buddha p. 121
३. अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणैः कृत्तोत्तमाङ्गे रणम् ।
   व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वमद्वह्निनि ॥
   आहूयाजिमुखे स कोशलपतिर्भग्ने प्रधाने बले
   एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ॥
   (श्रीहर्ष—रत्नावली अंक ४)

उपलब्ध नहीं होता । सम्भव है, यह विरुधक ही हो । कोशलराज प्रसेनजित् का अन्त किस प्रकार हुआ था, इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है । बौद्ध साहित्य से यह अवश्य ज्ञात होता है कि शाक्य विजय के अनन्तर कुछ समय पश्चात् विरुधक का अन्त सहसा ही हो गया था । सम्भव है, उसका अन्त रत्नावली में निर्दिष्ट प्रकार से ही हुआ हो और श्रीहर्ष ने जिस कोशलपति के घात का वर्णन किया है, वह विरुधक ही हो ।

विरुधक के भिन्न भिन्न ग्रन्थों में विविध नाम पाये जाते हैं । पाली साहित्य में इसे प्रायः विडूडभ लिखा गया है ।[1] अवदान कल्पलता में इसे विरुढक लिखा है ।[2] पुराणों में इसी के लिये क्षुद्रक शब्द आया है ।[3] पुराणों के अनुसार क्षुद्रक के पश्चात् कोशल की राजगद्दी पर कुलक, सुरथ और सुमित्र विराजमान हुए ।[4] इन पिछले कोशल राजाओं के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक घटना ज्ञात नहीं है । अन्त में ये भी मगध के बढ़ते हुवे साम्राज्यवाद के शिकार हो गये ।

कोशल देश का राजा पसेनदी महात्मा बुद्ध का परममित्र और भक्त था । महात्मा बुद्ध बहुधा कोशल की राजधानी श्रावस्ती में भी पधारा करते थे और वहां पसेनदी की उन से प्रायः बातचीत हुआ करती थी । पसेनदी के साथ बुद्ध की जो बातचीत हुई थीं, वह अब तक बौद्ध साहित्य में सुरक्षित हैं और बौद्ध धार्मिक साहित्य का एक पूरा खण्ड, जिसे कोशल-संयुक्त कहते हैं, इसी बात चीत से परिपूर्ण है ।

---

1. Cowell–Jatak vol. I, p. 27

२ विरुढकेति मुख्याख्यो विद्यासु च कृतश्रमः ।

(क्षेमेन्द्र – अवदानकल्पलता पृ० ४६५)

३. प्रसेनजित् ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः

(Pargiter p. 11)

४. क्षुद्रकात् कुलको भाव्यः कुलकात् सुरथः स्मृतः ।
सुमित्रः सुरथस्यापि अन्त्यश्च भविता नृपः ॥

(Pargiter p. 11-12)

सातवां अध्याय

मगध राज्य

महात्मा बुद्ध के समय में मगध के राजसिंहासन पर बिम्बिसार विराजमान था। पुराणों में इसके वंश को शैशुनाक वंश कहा गया है।[1] शैशुनाक वंश राजा शिशुनाक के नाम से है। पर बौद्ध साहित्य के अनुसार इस राजा शिशुनाक का नाम बिम्बिसार और अजातशत्रु के पीछे आया है।[2] ऐतिहासिकों में शैशुनाक तथा उसके पीछे आने वाले नन्दवंश के सम्बन्ध में जितना विवाद है, उतना शायद तिथिक्रम सम्बन्धी किसी अन्य विषय पर नहीं है। कोई भी दो ऐतिहासिक इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है। भाण्डारकर,[3] जायसवाल,[4] रायचौधरी,[5] विन्सेन्ट ए. स्मिथ,[6] रीज़ डेविड्स,[7] प्रधान[8] आदि सभी ऐतिहासिकों ने इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। इस सम्बन्ध में इतने विवाद का कारण यह है कि पौराणिक, बौद्ध और जैन तीनों अनुश्रुतियों में इस विषय में मतभेद है। इस दशा में इस विवाद की समीक्षा कर किसी एक निर्णय पर पहुंच सकना सुगम कार्य नहीं है।

---

1. Pargiter–Dynasties of the Kali Age, p. 20-22
२ महावंश ४। १-६
3. Bhandarkar–The Carmichael Lectures 1916, Lecture II
4. Jayaswal K. P. – The Saisunaga and Mauryan Chronology in Journal of Bihar and Orissa Research Society, 1915
5. Raychowdhary-Political History of Ancient India p 122-144
6. V. A. Smith–Early History of India p. 28-50
7. Cambridge History of India vol. I, ch. vii
8. Pradhan–Chronology of Ancient India ch. xx

महावंश के अनुसार जब बिम्बिसार की आयु केवल १५ वर्ष की थी, उस समय उसके पिता ने उसे राज्य के लिये अभिषिक्त किया था ।[1] जिस समय सिद्धार्थ से बिम्बिसार की प्रथम बार भेंट हुई, तब उसे राज्य करते हुवे १५ वर्ष हो चुके थे ।[2] उसके बाद उसने ३७ वर्ष और राज्य किया ।[3] इस प्रकार महावंश के अनुसार बिम्बिसार का शासनकाल ५२ वर्ष का था । दीपवंश के अनुसार भी बिम्बिसार ने ५२ वर्ष तक राज्य किया ।[4] परन्तु वायु पुराण और मत्स्य पुराण के अनुसार बिम्बिसार का शासनकाल केवल २८ वर्ष था ।[5] पर यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि वायु पुराण और ब्रह्माण्ड पुराणों के अनुसार बिम्बिसार का उत्तराधिकारी दर्शक था ।[6] महावंश और दीपवंश में बिम्बिसार का उत्तराधिकारी अजातशत्रु को लिखा है । कई पुराणों में दर्शक का नाम बिम्बिसार और अजातशत्रु के बीच में न आकर अजातशत्रु के बाद आता है ।[7] बौद्ध साहित्य में दर्शक को सर्वथा छोड़ दिया गया है । पुराणों में दर्शक का शासन काल २५ वर्ष लिखा है ।[8] कहीं कहीं पर २४ वर्ष भी दर्शक का शासन काल लिखा गया है ।[9] ऐसा प्रतीत होता है कि बिम्बिसार के शासन काल में ही पिछले २४ व २५ वर्ष शासन की वास्तविक बागडोर दर्शक के हाथ में रही थी । यह दर्शक बिम्बिसार का पुत्र व अजातशत्रु का भाई था । अजातशत्रु ने राजगद्दी स्वाभाविक रूप से प्राप्त नहीं की थी, अपितु एक षड्यन्त्र द्वारा अपने पिता को मार कर राज्य पर अधिकार प्राप्त किया था । यह बिल्कुल सम्भव प्रतीत होता है, कि अजातशत्रु ने जब अपने पिता

---

1. Mahavamsa, translated by Geiger II, 28
2. Ibid II, 30
3. Ibid II, 30
4. Jayaswal J. B. O. R. S. 1915, p. 72
5. Pargiter p. 21
६. वायुपुराण (आनन्दाश्रम प्रेस) ६६, ३१८
7. Pargiter p. 21
8. Pargiter p. 21
९. मत्स्यपुराण (बंगवासी प्रेस) २७२, २७६

को मार कर राज्य प्राप्त किया हो, तो अपने भाई दर्शक को, जो पिछले २४ वर्ष से निरन्तर शासन सूत्र का सञ्चालन करता रहा था, भी राज्यच्युत किया हो । इस प्रकार दर्शक ने अपने पिता बिंबिसार के जीवित रहते हुवे ही २४ वर्ष तक राज्य किया । यही कारण है, कि बौद्ध ग्रन्थों में उसके नाम का पृथक् रूप से उल्लेख नहीं किया गया । पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार बिंबिसार ने २८ और दर्शक ने २४ वर्ष तक राज्य किया था, जो मिला कर ५२ वर्ष बनता है । बौद्ध साहित्य के अनुसार यही बिंबिसार के शासन का समय है । दर्शक की सत्ता केवल पौराणिक साहित्य से ही सूचित नहीं होती । भास ने अपने ग्रन्थ स्वप्नवासवदत्ता में उसका उल्लेख किया है ।[1] इसी की भगिनी पद्मावती के साथ वत्सराज उदयन का विवाह हुआ था । कथासरित्सागर में भी मगध कुमारी पद्मावती के साथ उदयन के विवाह का उल्लेख है, यद्यपि वहां दर्शक का नाम नहीं दिया गया है ।[2] इस प्रकार दर्शक की सत्ता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता । पौराणिक और बौद्ध अनुश्रुतियों में सामञ्जस्य भी इस ढंग से बड़ी सुगमता के साथ स्थापित किया जा सकता है ।

बिम्बिसार बहुत शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी राजा था । उसका विवाह कोशलदेश की राजकुमारी, महाकोशल की कन्या कोशल देवी के साथ हुआ था । इसी विवाह में दहेज में 'नहान-चुन्न मुल्य' के रूप में काशी का एक ग्राम, जिसकी आमदनी एक लाख वार्षिक थी, बिंबिसार को प्राप्त हुआ था ।[3] कोशल राज्य के साथ इस वैवाहिक सम्बन्ध के स्थापित हो जाने पर मगध को इस शक्तिशाली राज्य से कोई भय नहीं रह गया था और वह अपना ध्यान साम्राज्य विस्तार की ओर लगा सकता था । राजा बिंबिसार ने अङ्ग के राजा 'ब्रह्मदत्त' के ऊपर आक्रमण

---

१. काञ्चुकीय —एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्य अस्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम ।
(स्वप्नवासवदत्ता, अंक एक १)

2. कथासरित्सागर पृ० ८२

3. Cowell-Jatak vol. ii, p. 275

किया और उसे जीत कर अपने अधीन कर लिया ।[1] इससे कुछ समय पूर्व वत्सदेश का राजा 'शतानीक' (उदयन का पिता) अंग देश को अपनी अधीनता में ला चुका था ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि वत्स अंग को देर तक अपनी अधीनता में नहीं रख सका और वह कुछ ही समय पश्चात् स्वतन्त्र हो गया । परन्तु उसकी स्वाधीनता देर तक कायम न रह सकी और पीछे से मगधराज बिंबिसार ने उसे जीत लिया । बिंबिसार अंग राज्य से अधीनता स्वीकृत करा कर ही संतुष्ट नहीं हुआ, अपितु वहां के राजा ब्रह्मदत्त को मार कर उसे अपने राज्य के अन्तर्गत कर लिया ।[3] पीछे से बिंबिसार ने अंग की राजधानी 'चम्पा' को 'सोणदण्ड' नामक ब्राह्मण को दे दिया था, जो अपने लिये इसके कर आदि को प्राप्त करता था ।[4] इस प्रकार अंग का वह स्वतन्त्र राज्य जो किसी समय अत्यन्त शक्तिशाली था और जो किसी समय मगध को भी अपनी अधीनता में रख चुका था,[5] अब नष्ट हो गया । अंग को जीतने से मगध की शक्ति बहुत बढ़ गई । काशी का कुछ प्रदेश तो उसे पहले ही प्राप्त हो चुका था । अब अंग को अधिगत कर लेने से मगध एक अत्यन्त महत्व पूर्ण राज्य बन गया और उस साम्राज्यवाद के संघर्ष में प्रवृत्त हुआ, जिसका उग्ररूप हम अजातशत्रु के शासन में देखेंगे ।

राजा बिंबिसार का विवाह केवल कोशलदेवी से ही नहीं हुआ था । महावग्ग में लिखा है कि बिंबिसार की ५०० रानियां थीं ।[6] इतना निश्चित है कि कोशलदेवी के अतिरिक्त उसका विवाह विदेह की राजकुमारी से भी हुआ था । इसका नाम 'चेल्लना' था और यह वैशाली के अन्यतम राजा 'चेटक' की कन्या थी ।[7] बिंबिसार की अन्य रानियों के नाम ज्ञात नहीं हैं ।

---

1. Majhim Nikay, ii, 163
2. Kalpasutra (Book vi)
3. Hardy-A manual of Buddhism p. 163
4. बुद्धचर्या पृ० २४१ २४५
5. Cowell-Jatak, vi, 133
6. Mahavagga vii, I. 15
7. Rayachowdhary-Political History of Ancient India p.124

बिंबिसार के पुत्र भी अनेक थे। इन में से निम्नलिखित नाम हमें ज्ञात हैं—अभय,[1] शीलवन्त,[2] विमल कोण्डञ्ञ,[3] अजातशत्रु और दर्शक। इनमें से कुमार अभय के सम्बन्ध में यह कथा उल्लिखित है कि एक बार उसने देखा कि मट्टी के ढेर पर एक नवजात शिशु पड़ा हुआ है। यह शालवती नाम की वेश्या का पुत्र था। अभय ने उसे पाल कर बड़ा किया और उसका नाम 'जीवक' रखा। जीवक को अत्यन्त ऊंची शिक्षा दी गई और उसे पढ़ने के लिये तक्षशिला भेजा गया। तक्षशिला में जीवक ने आयुर्वेद शास्त्र की कौमारभृत्या शाखा में विशेष निपुणता प्राप्त की। विद्या को समाप्त कर जीवक अपने देश को वापिस लौटा और आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध वैद्य बना। जीवक के चिकित्सा सम्बन्धी चमत्कारों का उल्लेख अनेक स्थानों पर बौद्ध साहित्य में किया गया है।

मगध की पुरानी राजधानी कुशाग्रपुर थी। इसी को गिरिव्रज भी कहते थे। पर यह नगर मगध के उत्तर में विद्यमान वज्जि राज्य संघ के आक्रमणों से सुरक्षित न था। इस पर निरन्तर आक्रमण होते रहते थे। इन्हीं के कारण गिरिव्रज में एक बार भारी आग लग गई थी और उस से यह पुराना नगर बहुत कुछ नष्ट हो गया था। बिंबिसार ने गिरिव्रज के कुछ उत्तर में वज्जि राज्य के आक्रमणों का मुकाबिला करने के लिये एक नये नगर की स्थापना की, जिसका नाम 'राजगृह' है।[4] यही राजगृह अब गिरिव्रज के स्थान पर मगध की राजधानी बन गया। राजगृह के राजप्रासादों का निर्माण महागोविन्द नाम के भवन निर्माण कला के प्रसिद्ध ज्ञाता द्वारा किया गया था। राजगृह का निर्माण जिस उद्देश्य से किया गया था, वह सफल हुआ। कुछ समय के बाद वज्जियों के आक्रमण बन्द हो गये और वज्जिराज्य तथा मगध की सन्धि को स्थिर करने के लिये उनमें

---

1. Mahavagga viii, I. 4
2. Thera-gatha p. 269
3. Ibid, p.65
4. Pradhan-Chronology of Ancient India p. 218

वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया गया। वज्जि कुमारी चेल्लना का विवाह बिंबिसार के साथ कर दिया गया।

बिंबिसार कितना शक्ति शाली राजा था, इसका अनुमान इस बात से किया जासकता है कि महावग्ग में उसकी अधीनता में ८०००० ग्रामों का उल्लेख किया गया है, जिनके ग्रामिक उसकी राजसभा में एकत्रित हुआ करते थे।[1] एक अन्य स्थान पर बौद्ध साहित्य में उसके राज्य का विस्तार ३०० योजन लिखा गया है।[2]

बिंबिसार के पुत्रों में सब से अधिक प्रसिद्ध अजातशत्रु था। जातक साहित्य के अनुसार अजातशत्रु कोशल देश की राजकुमारी कोशल देवी से उत्पन्न हुआ था।[3] संयुक्त निकाय में कोशलराज प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को अपना भागिनेय कहा है।[4] परन्तु जैन साहित्य के अनेक ग्रन्थों में अजातशत्रु को कोशल देवी का पुत्र न लिख कर वैशाली के चेटक की कन्या चेल्लना का पुत्र लिखा है।[5] बौद्ध साहित्य में भी अजातशत्रु को वैदेही पुत्र लिखा गया है।[6] विदेह वैशाली के वज्जिराज्यसंघ के अन्तर्गत था, अतः वैदेहीपुत्र का अभिप्राय यही हो सकता है कि इन बौद्ध ग्रन्थों को भी अजातशत्रु का वैशाली की राजकुमारी का पुत्र होना अभिप्रेत है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि अनेक प्राचीन ग्रन्थों में कोशल देश के राजाओं के साथ भी वैदेह विशेषण आता है।[7] इससे हम यह समझ सकते हैं कि जहां बौद्ध ग्रन्थों ने अजातशत्रु को वैदेही पुत्र लिखा है, वहां उनका अभिप्राय यह नहीं है कि वह वैशाली की राजकन्या का पुत्र था, अपितु कोशलदेवी के पुत्र होने के कारण भी वे उसे वैदेही

1. Raychowdhary p. 125
२. बुद्धचर्या पृ० ८४
3. Cowell–Jatak vol. iii, p. 80
4. Raychowdhary–Political History of Ancient India p. 124
5. Jacobi, Introd, S. B. E. vol. xxiii
6. The Book of the Kindred sayings, p. 104
7. Vedic Index vol. I, p. 160

पुत्र लिख सकते हैं[1]। एक अन्य ग्रन्थ में अजातशत्रु की माता का नाम भद्दा लिखा गया है।[1] इस प्रकार इस सम्बन्ध में प्राचीन अनुश्रुतियों में मतभेद है।

बिंबिसार ने अपने शासन के अन्तिम भाग में अजातशत्रु को चम्पा का शासक नियत किया हुआ था।[2] यह हम पहले लिख चुके हैं कि बिंबिसार के शासन काल में पीछे से मगध के शासन का वास्तविक सूत्रधार दर्शक था। ऐसा प्रतीत होता है कि बिंबिसार ने अपने दोनों राज्यों (मगध और अंग) को अपने इन दो पुत्रों (दर्शक और अजातशत्रु) के सुपुर्द किया हुआ था। पर अजातशत्रु केवल अंग के राज्य से ही संतुष्ट नहीं था। वह सम्पूर्ण मगध साम्राज्य का अधिपति बनना चाहता था। इस लिये उसने अपने पिता बिंबिसार को मार कर स्वयं राज्य प्राप्त करने का उद्योग किया। बौद्ध ग्रन्थों में इस घटना का वर्णन जिस रूप में उपलब्ध होता है, उसे यहां उद्धृत करना हम इस बात को स्पष्ट करने के लिये आवश्यक समझते हैं—

"जिस समय अजातशत्रु ने देवदत्त के बहकाने से अपने न्यायी पिता का संहार कर राजमुकुट को अपने सिर पर धारण कर लिया था, और स्वयं राजा बन गया था, तब उसने गृहपति ज्योतिष्क को बुलाया और उसे कहा— 'गृहपति' तुम और मैं भाई हैं। अच्छा यह हो कि हम अपनी घरेलू सम्पत्ति को आपस में बांट ले। ज्योतिष्क ने सोचा— जिस अजातशत्रु ने अपने न्यायी पिता को मार कर राजमुकुट को अपने सिर पर धारण कर लिया है और स्वयं राजा बन गया है, वह सम्भवतः मुझे भी कतल कर देगा।

"तब देवदत्त कुमार अजातशत्रु के पास जाकर कुमार से बोला— 'कुमार ! पहले मनुष्य दीर्घायु होते थे। अब वे अल्पायु होते हैं। हो सकता है, कि तुम कुमार कहलाते हुवे ही मर जाओ। इस लिये कुमार ! तुम अपने पिता को मार कर स्वयं राजा बन जाओ। मैं भगवान् को मार कर बुद्ध हो जाऊंगा।'

1. Rayachowdhary–Political History of Ancient India, p. 124
2. Rockhill–Life of Buddha p. 95

"तब कुमार अजातशत्रु जांघ में छुरा बांध कर भीत, उद्विग्न, शंकित त्रस्त (की तरह) मध्याह्न में सहसा अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ । अन्तःपुर के उपचारक (रक्षक) महामात्यों ने कुमार अजातशत्रु को अन्तःपुर में प्रविष्ट होते देखा । देख कर उसे पकड़ लिया । फिर कुमार से कहा—

'कुमार ! तुम क्या करना चाहते थे ?'

'पिता को मारना चाहता था ।'

'तुझे इस कार्य के लिये किसने उत्साहित किया ?'

'आर्य देवदत्त ने ।'

तब वे महामात्य अजातशत्रु को ले, जहां राजा मगध श्रेणिक बिंबिसार था, वहां गये । जाकर राजा को यह बात सुनाई । तब राजा ने कुमार अजातशत्रु को कहा—

'कुमार ! तू मुझे किस लिये मारना चाहता था ?'

'देव ! मैं राज्य चाहता हूं ।'

'कुमार ! यदि तू राज्य चाहता है, तो यह तेरा राज्य है ।'

यह कह कर राजा ने कुमार अजातशत्रु को राज्य दे दिया ।

तब देवदत्त जहां कुमार अजातशत्रु था, वहां गया, और जाकर उससे कहने लगा—

'महाराज ! आदमियों को हुकुम दो, कि श्रमण गौतम को जान से मार दें ।'[1]

इसके पश्चात् भगवान् बुद्ध को कतल करने के लिये किये गये प्रयत्नों का वर्णन है ।

"भगवन् ! मैंने बाल (मूर्ख) की तरह, मूढ़ की तरह, अकुशल की तरह अपराध किया, जो मैंने ऐश्वर्य के कारण धार्मिक धर्मराज पिता को जान से मारा । भगवन् ! भगवान् मेरे अपराध को अपराध के तौर पर ग्रहण करें, ताकि मैं भविष्य में अपराध न कर सकूं ।[2]"

"भगवान् ने यह कथा अजातशत्रु के मार्गभ्रष्ट आचार्यों के साथ मिल कर किये गये कार्यों के सम्बन्ध में वेणुवन में कही थी । अजातशत्रु भगवान

१. देवदत्त सुत्त (बुद्धचर्या पृ० २४६)

२. सामञ्ञफल सुत्त (बुद्धचर्या पृ० ४६८)

बुद्ध के उन दुष्टात्मा तथा नीच विरोधी का अनुयायी था, जिसका नाम देवदत्त है। देवदत्त की ही दुष्टतामय शिक्षाओं का अनुकरण करते हुवे उसने अपने धर्मात्मा पिता का संहार किया था।[1]"

तिब्बती अनुश्रुति में अजातशत्रु के अपने पिता को मारने का वर्णन इस प्रकार किया गया है। इससे बौद्ध साहित्य के विविध वर्णनों का पर्याप्त रूप से समन्वय हो जाता है, अतः हम इसे यहां पूर्णरूप से उद्धृत करते हैं—

"अपनी महत्त्वकांक्षाओं को पूरा करने तथा देवदत्त के भड़काने से अजातशत्रु ने अपने पिता को तीर द्वारा मारने का प्रयत्न किया। पर वह सफल नहीं हो सका।....जब बिंबिसार को यह ज्ञात हुआ कि अजातशत्रु की आकांक्षा स्वयं राजा बनने की है, तो उसने उसे चम्पा का राजा नियत कर दिया। पर चम्पा के राज्य में देवदत्त और अजातशत्रु मिल कर जनता को लूटने लगे। परिणाम यह हुआ कि लोगों ने राजा बिंबिसार से शिकायत की।

"बिंबिसार ने सोचा कि यदि अजातशत्रु को अधिक विस्तृत राज्य दे दिया जायगा, तो वह कम अत्याचार करेगा। इसलिये उसने अजातशत्रु को राजधानी राजगृह को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण मगधराज्य का स्वामी बना दिया। परन्तु इससे भी उसके अत्याचारों में कमी नहीं आई। इस पर बिंबिसार ने राजगृह भी अजातशत्रु को दे दिया। केवल खजाने पर ही अपना अधिकार रख लिया। पर देवदत्त ने अजातशत्रु को समझाया कि जिसके पास खजाना होता है, वही असली राजा होता है। इसलिये बिंबिसार को बाधित किया गया कि वह खजाना भी अजातशत्रु के अधीन कर दे। बिंबिसार ने यह स्वीकृत कर लिया, पर साथ ही अपने पुत्र पर इस बात के लिये जोर दिया कि देवदत्त के साथ का परित्याग कर दे। इस बात से अजातशत्रु बहुत नाराज हुआ उसने अपने पिता को कैद में डाल दिया। आहार देना भी बन्द कर दिया, ताकि बिंबिसार भूख से तड़प कर मर जावे। बिंबिसार को मिलने के लिये केवल एक व्यक्ति को इजाजत दी गई थी। वह थी उसकी रानी वैदेही। वह छिप कर उसके लिये एक कटोरे में

---

1. Cowell-Jatak, vol. I, p. 319-320

भोजन ले आती थी। जब यह बात अजातशत्रु को मालूम हुई, तो उसने रानी को मारने की धमकी दे वह करने से रोक दिया। परन्तु वैदेही अपने शरीर पर एक ऐसा चूर्ण मल लाती थी, जो पोषक था। साथ ही, अपनी अंगूठियों में पानी भर लाती थी। इस प्रकार राजा बिंबिसार को कुछ समय और जीवित रखा गया। पर जब अजातशत्रु को यह बात ज्ञात हुई, तो उसने वैदेही का राजा बिंबिसार से मिलना ही बिल्कुल बन्द कर दिया। बिंबिसार बुद्ध का श्रद्धालु भक्त था। बुद्ध ने गृद्धकूट पर एक ऐसे स्थान पर आसन जमाया, जहां से बिंबिसार खिड़की के रास्ते बुद्ध के दर्शन करता रह सकता था। बुद्ध के दर्शनमात्र से ही उसका जीवन कायम रहा। पर जब अजातशत्रु को यह बात मालूम हुई तो उसने उस खिड़की को भी बन्द करवा दिया..............

"इसी समय की बात है, कि अजातशत्रु के लड़के उदयीभद्र की उंगली में एक फोड़ा था। दर्द के मारे वह चिल्ला रहा था। अजातशत्रु ने उसे गोदी में उठा लिया और उसे पुचकारने का प्रयत्न किया। फिर उसने उसकी उंगली मुंह में ले ली और उसे चूसना शुरू किया। इससे वह फोड़ा फट गया और उदयीभद्र को चैन पड़ गई। ठीक इसी समय वैदेही वहां आ पहुंची और अजातशत्रु को इस तरह करते देख कर उसे कहने लगी— 'तेरे पिता ने भी तेरे लिये एक दिन ठीक इसी प्रकार किया था।' यह सुनते ही अजातशत्रु की आंखें खुलीं। उसे ख्याल आया कि वह अपने पिता के साथ कितना अनुचित व्यवहार कर रहा है। उसने सोचा यदि मेरा पिता अब तक भी जीवित हो, तो कितनी उत्तम बात हो। उसने चिल्ला कर कहा—'ओह, यदि कोई आदमी मुझे बता सके कि मेरा वृद्ध पिता अब तक भी जीवित है, तो मैं उसे अपना सारा राज देने को तैयार हूं।' यह सुनते ही लोग जेलखाने की ओर भाग पड़े। बिंबिसार बहुत बूढ़ा था, इतने दिनों के अनशन के पश्चात् उसका शरीर मृतप्राय हो गया था। जब उसने बाहर शोर सुना तो समझा कि अजातशत्रु ने कोई नई शारीरिक व्यथा देने की व्यवस्था की है। इसको वह सहन नहीं कर सका और उसके प्राण शरीर को छोड़ गये।'[1]

---

1. Rockhill—Life of Buddha p. 89-91

इस प्रकार इन विविध बौद्ध संदर्भों से यह स्पष्ट है कि देवदत्त के भड़काने से अजातशत्रु ने अपने पिता का घात किया। बौद्धग्रन्थों में देवदत्त को एक भयंकर पापात्मा पिशाच के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जो सद्धर्म के अनुयायियों को कुपथगामी बनाने तथा बुद्ध का अनिष्ट करने के लिये सदा तत्पर रहता था। परन्तु बिंबिसार की हत्या में देवदत्त के भड़काने के अतिरिक्त अजातशत्रु की महत्वाकांक्षाओं को भी कारण बताया गया है।

अजातशत्रु की आकांक्षा थी कि वह मगध की राजगद्दी का स्वामी बने। पर वृद्ध बिम्बिसार ने दर्शक को राजा नियत किया हुआ था। हम पहले प्रदर्शित कर चुके हैं, कि दर्शक ने अपने पिता के जीवन काल में ही शासन की बागडोर सम्भाल ली थी। अतः अजातशत्रु की उस के प्रति ईर्ष्या होनी बिलकुल स्वाभाविक थी। सम्भवतः, इसी लिये उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और स्वयं राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अजातशत्रु के अन्य भाई उस के भय के मारे बौद्धभिक्षु बन गये। दर्शक, शीलवन्त, विमल आदि ने बौद्ध भिक्षुओं के पीत वस्त्रों को धारण किया।[1] इस में सन्देह नहीं कि राज्य प्राप्ति के अनन्तर अजातशत्रु को अपने कार्य पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। बौद्ध ग्रन्थों में स्थान स्थान पर उस के पश्चात्ताप का उल्लेख है।[२] जैन लेखक हेमचन्द्र ने लिखा है कि अजातशत्रु को अपने पिता की मृत्यु पर इतना दुःख हुआ कि उसने अपनी राजधानी राजगृह से परिवर्तित कर चम्पा बना ली।[३]

राजगद्दी पर विराजमान होने के अनन्तर अजातशत्रु के अन्य राज्यों के साथ युद्ध शुरु हुवे। पहला युद्ध कोशल के राजा प्रसेनजित् के साथ हुआ। इस युद्ध का कारण यह था कि राजा बिम्बिसार को कोशलदेवी के विवाह में 'नहान चुन्नमूल्य' के रूप में काशी का एक ग्राम कोशलराज की ओर से दहेज में दिया गया था। पर अब कोशलदेवी का अपने पति के वियोग की चिन्ता में स्वर्गवास हो

1. Pradhan–Chronologn of Ancrint India p. 214
२. सामञ्ञफल सुत्त (बुद्धचर्या पृ० ४६८)
३. हेमचन्द्र–स्थविरावलिचरित्र vi, ३२

गया था । अतः प्रसेनजित् चाहता था कि काशी का वह ग्राम पितृघाती अजातशत्रु के पास न रहने पावे । इसी प्रश्न पर दोनों राज्यों में परस्पर युद्ध शुरु हो गया । इस का वृत्तान्त हम पहले लिख चुके हैं, अतः यहां फिर उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं है । अन्त में प्रसेनजित् और अजातशत्रु की सन्धि हो गई और प्रसेनजित् ने अपनी कन्या 'वजिरा' का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया । वजिरा के 'नहानचुन्नमूल्य' के रूप में वह काशी ग्राम फिर अजातशत्रु को प्रदान कर दिया गया ।

कोशल के साथ सन्धि हो जाने के अनन्तर अजातशत्रु ने गङ्गा के उत्तर में विद्यमान वज्जिराज्य संघ पर आक्रमण करने का विचार किया, वज्जि संघ बहुत शक्तिशाली गणराज्य था । उस में आठ गणराज्य सम्मिलित थे, जिन में वैशाली के लिच्छवी और मिथिला के विदेह सब से अधिक प्रसिद्ध थे । वज्जिराज्यसंघ के साथ किन कारणों से युद्ध प्रारम्भ हुआ, इस विषय में प्राचीन अनुश्रुतियों में मतभेद है । जैन अनुश्रुति के अनुसार राजा बिंबिसार के वैशाली कुमारी चेल्लना से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । इन के नाम थे–'हल्ल' और 'वेहल्ल' । बिम्बिसार ने इन्हें अपना प्रिय हाथी 'सेचनक' भेंट में दिया हुआ था । और उसके साथ अठारह लड़ी वाली एक मुक्तामाला भी इन्हें प्रदान की थी । जब अजातशत्रु ने राज्य सिंहासन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया, तो उसने हल्ल और वेहल्ल से सेचनक हाथी और उस मुक्तामाला को वापिस मांगा । हल्ल और वेहल्ल ने इन्हें देने से इन्कार कर दिया । वे अपने भाई अजातशत्रु के प्रकोप से बचने के लिये अपने नाना चेटक के आश्रय में वैशाली चले गये । अजातशत्रु ने जब देखा कि शान्ति से ये उपहार उसे प्राप्त नहीं होते हैं, तो शक्ति के प्रयोग का निश्चय किया और इसी लिये वज्जिराज्य संघ के साथ युद्ध छिड़ गया ।[1] पर बौद्ध ग्रन्थों में वज्जि राज्यसंघ और अजातशत्रु के पारस्परिक युद्ध का कारण दूसरा ही लिखा है । वज्जिराज्यसंघ और मगध के बीच में गङ्गा नदी बहती थी, जो इनके बीच की सीमा का काम करती थी । गङ्गा के तट पर एक बन्दरगाह था जो एक मील लम्बा था । आधा बन्दरगाह

1. Uvasagadasao, 2, Appendix, p. 7

वज्जियों के अधिकार में था और आधा मगध के। इस बन्दरगाह के समीप ही एक पर्वत था, जिस के आंचल में बहुमूल्य पदार्थों की एक महत्त्व पूर्ण खान थी। इस खान पर भी दोनों राज्यों का अधिकार समझा जाता था। पर लिच्छवी लोग दो वर्षों से निरन्तर इस के पदार्थों का उपयोग कर रहे थे। मगध को इनका कोई भी हिस्सा नहीं मिल रहा था। अजातशत्रु को इस बात पर बड़ा क्रोध आया और उसने युद्ध द्वारा वज्जियों को परास्त करने का निश्चय किया।[1] कारण चाहे कोई हो, पर इतना स्पष्ट है कि इन दोनों राज्यों में परस्पर विद्वेष का भाव विद्यमान था। वास्तविक बात यह है कि मगध की साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति इस समय पूर्ण रूप से अपना कार्य कर रही थी, अंग और काशी के प्रदेश उस के अधीन हो ही चुके थे। कोशल व वत्स के शक्ति शाली राज्यों को जीत सकना मगध के लिये सम्भव ही नहीं था। अतः स्वाभाविक रूप से उसका ध्यान अपने उत्तर में विद्यमान वज्जिराज्य संघ की ओर गया। वज्जिसंघ को किस प्रकार मगध के साम्राज्यवाद ने अपना शिकार बनाया, इसका वृत्तान्त बहुत मनोरञ्जक तथा उपयोगी है। हम महापरिनिब्बाण सुत्त से इस वृत्तान्त को यहां उद्धृत करते हैं—

"ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते थे।

"उस समय राजा मागध वैदेहीपुत्र अजातशत्रु वज्जी पर चढ़ाई करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन वैभवशाली महानुभाव वज्जियों को उच्छिन्न करूंगा। वज्जियों का विनाश करूंगा, उन पर आफ़त ढाऊंगा।

"तब अजातशत्रु ने मगध के महामन्त्री वर्षकार ब्राह्मण को कहा—'आओ ब्राह्मण! जहां भगवान् हैं, वहां जाओ। जाकर मेरे वचन से भगवान् के पैरों में शिर से वन्दना करो। आरोग्य, अल्प आतंक, लघु उत्थान, सुखविहार पूछो। और यह कहो— 'भगवन्! राजा अजातशत्रु वज्जियों पर चढ़ाई करना चाहता है। वह ऐसा कहता है, मैं इन वज्जियों को उच्छिन्न करूंगा। भगवान्

---

१. V.C. Law-some Lsatriya Tribes of Ancient India p. 2-3

तुम्हें जैसा उत्तर दें, उसे समझ कर मुझे कहो। तथागत अयथार्थ नहीं बोल सकते।'

" 'अच्छा', कह कर वर्षकार ब्राह्मण बहुत अच्छे यान पर आरूढ़ हो राजगृह से निकला और गृध्रकूट पर जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर एक ओर बैठा और एक ओर बैठ कर राजा अजातशत्रु का सन्देश भगवान् को सुना दिया।

"उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के पीछे खड़े भगवान् को पंखा झल रहे थे। तब आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने आमंत्रित कर कहा—

'आनन्द! क्या तूने सुना है, वज्जि लोग बराबर सभा में एकत्रित होने वाले हैं (इससे अगला सन्दर्भ हम वज्जि राज्य संघ की शासन विधि पर विचार करते हुवे उद्धृत कर चुके हैं, इसलिये उसे यहां पुनः उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं)।

"तब भगवान् ने वर्षकार ब्राह्मण को संबोधन करके कहा—'ब्राह्मण! एक समय मैं वैशाली में सारन्दद चैत्य में विहार करता था। वहां मैंने वज्जियों को यह सात अपरिहाणीय धर्म कहे। जब तक ब्राह्मण! यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियों में रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय धर्मों में वज्जी लोग दिखलाई पड़ेंगे, तब तक ब्राह्मण! वज्जियों की वृद्धि ही समझना, परिहानि नहीं।

"ऐसा कहने पर वर्षकार ब्राह्मण भगवान् को बोला—'हे गौतम! एक भी अपरिहाणीय धर्म से वज्जियों की वृद्धि ही समझनी होगी, सात अपरिहाणीय धर्मों की तो बात ही क्या! हे गौतम! राजा अजातशत्रु को उपलाप (रिश्वत) या आपस में फूट डलवा कर युद्ध करना ठीक नहीं। हे गौतम! अब हम जाते हैं, हमें बहुत काम रहते हैं।'

"तब मगध का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के भाषण को अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर आसन से उठ कर चला आया।"

इससे आगे का वृत्तान्त अट्ठकथा में इस प्रकार लिखा गया है—

"वर्षकार ब्राह्मण राजा अजातशत्रु के पास गया। राजा ने उससे पूछा— 'आचार्य ! भगवान् ने क्या कहा ?' उसने उत्तर दिया— 'श्रमण गौतम के कथनानुसार तो वज्जियों को किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता। हां उपलापन (रिश्वत) और आपस में फूट डालने से लिया जा सकता है।' तब राजा ने कहा 'उपलापन से हमारे हाथी घोड़े नष्ट होंगे, भेद (फूट) का ही प्रयोग करना चाहिये। फिर कैसे किया जायगा।'

"वर्षकार ने उत्तर दिया—'तो महाराज ! तुम परिषद् में वज्जियों की बात उठाओ। तब मैं कहूंगा—'महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? इन राजाओं (वज्जिराजा गण या गणतन्त्र के सभासद) को कृषि और वाणिज्य करने दो।' तब तुमने कहना—'क्यों जी ! यह ब्राह्मण वज्जियों के सम्बन्ध में की जाने वाली बात में रुकावट डालता है।' उसी दिन मैं उन (वज्जियों) के लिये भेंट उपहार भेजूंगा। उसे भी पकड़ कर मेरे ऊपर दोषारोपण कर, बंधन, ताड़न आदि न कर, छुरे से मुंडन करा मुझे नगर से बाहर निकाल देना। तब मैं कहूंगा— 'मैंने तेरे नगर में प्राकार और परिखा बनवाई हैं, मैं इनके कमजोर स्थानों को जानता हूं, अब जल्दी तुझे सीधा करूंगा।' ऐसा सुन कर तुमने कहना— 'बेशक' तुम जाओ।'

"राजा अजातशत्रु ने यही सब किया। लिच्छवियों (वज्जियों) ने वर्षकार के निकाले जाने की बात सुन कर कहा—'यह ब्राह्मण मायावी (शठ) है, इसे गंगा न उतरने दो।' पर दूसरे लिच्छवियों की सम्मति इससे भिन्न थी। उन्होंने कहा—'इस ब्राह्मण को हमारा पक्ष लेने के कारण ही तो निकाला गया है, अतः उसे आने देना चाहिये।' लिच्छवियों ने वर्षकार ब्राह्मण से पूछा—'तुम किसलिये यहां आये हो ?' उसने सब हाल सुना दिया। लिच्छवियों ने कहा— 'इस छोटी सी बात के लिये इतना भारी दण्ड देना उपयुक्त नहीं था। फिर उन्होंने पूछा—'मगध में तुम्हारा क्या पद था ?' वर्षकार ने कहा— 'मैं वहां विनिश्चय महामात्र था।' लिच्छवियों ने निश्चय किया—'यहां भी वर्षकार का यही पद रहे।' वर्षकार वैशाली में निवास करने लगा। वह बड़ी सुन्दर रीति से न्याय कार्य

करता था। राजकुमार उसके पास विद्याग्रहण करते थे। जब उसकी वैशाली में खूब धाक जम गई, वह अपने गुणों के कारण सब में प्रतिष्ठित हो गया, तो....... उसने एक लिच्छवि को एकान्त में ले जाकर पूछा—'आप बहुत गरीब हैं न ?' उसने कहा—'आप से यह बात किसने कही ?' 'अमुक लिच्छवि ने।' इसी प्रकार दूसरे लिच्छवि से कहा—तुम कायर हो क्या ?' 'किसने कहा ?' 'अमुक लिच्छवि ने।' इस प्रकार झूठ मूठ एक दूसरे के नाम से बातें कह कर वर्षकार ब्राह्मण ने उन लिच्छवि राजाओं में तीन वर्ष के अन्दर ऐसी फूट डाल दी, कि दो एक रास्ते पर भी न जाते थे। जब वर्षकार को विश्वास हो गया कि अब लिच्छवियों में भलीभांति फूट पड़ गई है, तब उसने राजा अजातशत्रु के पास जल्दी आक्रमण करने के लिये खबर भेजी। राजा अजातशत्रु ने रण भेरी बजवाई और युद्ध के लिये चल पड़ा। जब वैशाली निवासियों ने देखा कि अजातशत्रु आक्रमण करने आरहा है, तब उन्होंने भेरी बजवाई और कहा—'आओ चलें, राजा को गंगा पार न करने दें।' भेरी सुन कर भी लिच्छवी लोग जमा नहीं हुवे। तब फिर भेरी बजवाई गई कि राजा को नगर में घुसने न दें, नगर द्वार बन्द करके रहें। पर अब भी कोई जमा नहीं हुआ। राजा अजातशत्रु खुले द्वारों से ही घुस कर सब को तबाह कर चला गया।[1]

बौद्ध साहित्य के इस वर्णन पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि वैशाली का वज्जिराज्यसंघ गंगा के उत्तर में एक बहुत ही शक्तिशाली राज्य था। उसकी उत्कृष्ट शासन प्रणाली के कारण भी उसे परास्त कर सकना बहुत कठिन था। पर गणराज्यों की सब से बड़ी निर्बलता उन में भेदनीति के सफल हो सकने की सम्भावना होती है। 'भेद' और 'प्रदान' इन दो उपायों से ही गणराज्यों का विजय शत्रु लोग करते रहे हैं।[2] कौटलीय अर्थशास्त्र में साम्राज्यवादी आचार्य चाणक्य ने इन्हीं उपायों का उपदेश अपने विजिगीषु

१. बुद्धचर्या (पृ० ५२०—५२३)
२. भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः।
(महाभारत-शान्तिपर्व)

राजाओं को संघों का नाश करने के लिये दिया है ।[1] चाणक्य से पूर्व आचार्य वर्षकार ने भी इन्हीं उपायों का अवलम्बन कर वज्जिराज्यसंघ का अन्त किया। जैन ग्रन्थ निरयावलिसुत्त के अनुसार जब कूणिक अजातशत्रु ने वैशाली के साथ युद्ध उद्घोषित किया, तो राजा चेटक ने काशी कोशल के अष्टादश गण राज्यों और मल्लों के संघ को आमन्त्रित किया और उन से अजातशत्रु का मुकाबला करने के लिये सहायता देने का अनुरोध किया।[2] यह अनुमान कर सकना कठिन नहीं है कि अजातशत्रु के साथ युद्ध में काशी कोशल और मल्ल राज्यों ने भी वज्जिराज्यसंघ की सहायता की थी, । पर मगध के साम्राज्यवाद के सम्मुख इन राज्यों की सम्मिलित शक्ति कुछ काम न आई और अन्त में इन्हें पराजित हो जाना पड़ा। सम्भवतः, वज्जिराज्यसंघ के साथ ही मल्लराज्य भी इसी समय मगध के साम्राज्यवाद का शिकार बन गया और काशी कोशल के शक्तिशाली राज्य को भी बहुत बड़ा धक्का लगा।

यद्यपि बौद्ध अट्ठकथा में यह वर्णित किया गया है, कि वर्षकार की भेदनीति के कारण अजातशत्रु युद्ध के बिना ही वैशाली पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुआ था, पर जैन अनुश्रुति के अनुसार उसे वज्जिराज्य संघ की शक्ति को नष्ट करने के लिये युद्ध की आवश्यकता हुई थी। इस युद्ध में अजातशत्रु ने 'महाशिलाकण्टक' और 'रथ मूसल' नाम के भयंकर हथियारों का उपयोग किया था।[3] वर्षकार की भेदनीति के कारण कमजोर पड़े हुवे वैशाली राज्य को युद्ध द्वारा जीत सकना अजातशत्रु के लिये सम्भव हो गया था, यही प्राचीन अनुश्रुति का निष्कर्ष है।

वज्जिराज्यसंघ को नष्ट कर चुकने तथा काशी कोशल को परास्त कर देने के अनन्तर मगध साम्राज्य की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इसी समय दूसरी तरफ

---

१. कौ० अर्थ० ११। १

२. Rayachowdhary–Political History of Ancient India p. 128

३. Ibid p. 129

अवन्ती का राज्य भी बहुत प्रबल हो रहा था । मज्झिम निकाय में लिखा है कि अवन्तीराज प्रद्योत के आक्रमण की आशंका से अजातशत्रु ने अपनी राजधानी की क़िलाबन्दी को मजबूत कराने का उद्योग किया था । इस से हम सहज में समझ सकते हैं कि अन्य छोटे राज्यों के नष्ट हो चुकने पर ये दोनों साम्राज्यवादी राज्य एक दूसरे के मुक़ाबले पर आगये थे । आगे चलकर किस प्रकार इस प्रयत्न में मगध को सफलता हुई, इस पर हम क्रमशः यथास्थान प्रकाश डालेंगे ।

अजातशत्रु ने कुल मिला कर ३२ वर्ष तक राज्य किया । यद्यपि पुराणों में इसका शासन काल २५ वर्ष लिखा गया है,[1] पर बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार यही पक्ष ठीक प्रतीत होता है कि अजातशत्रु का शासनकाल ३२ वर्ष था । जिस समय महात्माबुद्ध का निर्वाण हुआ, उस समय अजातशत्रु को शासन करते हुवे ८ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।[2]

पुराणों के अनुसार अजातशत्रु का उत्तराधिकारी दर्शक था ।[3] पर हम पहले प्रदर्शित कर चुके हैं कि दर्शक ने अजातशत्रु के पीछे शासन न कर पहले शासन किया और कुछ पुराणों में यह ठीक क्रम दिया भी गया है । बौद्ध और जैन अनुश्रुतियां इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि अजातशत्रु के बाद उसका पुत्र 'उदायी' राजगद्दी पर बैठा । महावंश के अनुसार उदायी व उदयीभद्द ने अपने पिता अजातशत्रु को मार कर राज्य पर अधिकार प्राप्त किया था ।[4] पर स्थविरावलि चरित में लिखा है कि अपने पिता की मृत्यु पर उदायी बहुत शोकातुर हुआ ।[5] उसका मन राज्य कार्य में नहीं लगता था और उसे अपने पिता की

---

१. अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत् समा नृपः ।
(Pargiter p. 21)

2. Mahavansa II. 30, 31

३. पञ्चविंशत् समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति ।
(Pargiter p. 21)

4. Mahavansa iv, I.

५. पितृव्यशुचाक्रान्तो दुर्दिनेनैव चन्द्रमाः ॥ २३ ॥
पश्यतो मे पितुः क्रीडास्थानानि व्यथते मनः ॥ २४ ॥
(हेमचन्द्र—स्थविरावलिचरित)

स्मृति बहुत अधिक व्यथित करती थी। इसी शोक के कारण उसने अपनी राजधानी चम्पा से हटा कर पाटलिपुत्र को बनाया था।[1] 'पाटलिपुत्र' का संस्थापक उदायी था, इस बात की पुष्टि पौराणिक साहित्य से भी होती है।[2] इस नवीन नगर का नाम पाटलीपुत्र या कुसुमपुर क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में भी जैन अनुश्रुति से सहायता मिलती है। हेमचन्द्र ने लिखा है कि जिस जगह इस नगर की स्थापना की गई थी, वहां एक लाल फूलों वाला पाटलीद्रुम विद्यमान था। उसी के कारण इसका नाम पाटलीपुत्र पड़ा और उसके उन सुन्दर फूलों के कारण यह कुसुमपुर भी कहलाया।[3] अजातशत्रु ने अपनी राजधानी चम्पा बनाली थी, यह पहले लिखा जा चुका है। उसके समय में चम्पा ही मगध राज्य की राजधानी रही। पर उदायी ने पाटलीपुत्र की स्थापना की और उसे अपनी राजधानी बनाया। मगध का साम्राज्य अब बहुत विस्तृत हो चुका था। इस दशा में चम्पा जैसा एक कोने में विद्यमान नगर मगध की उपयुक्त राजधानी नहीं हो सकता था। उदायी ने गङ्गा के तट पर एक नये नगर की स्थापना की और उसे अपनी राजधानी बनाया। भारत के इतिहास में पाटलीपुत्र का विशेष महत्व है। इसे वही गौरव प्राप्त है, जो पाश्चात्य संसार के इतिहास में रोम को है। इस 'भारतीय रोम' की स्थापना का यह वृत्तान्त विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये।

उदायी भी अजातशत्रु के समान पितृघाती था वा नहीं, इस सम्बन्ध में ऐतिहासिकों में मतभेद है। उदायी का अपने पिता की मृत्यु पर शोकातुर होना उसके पितृघाती न होने के लिये प्रमाण रूप स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

---

१. तत्रांकिते भूप्रदेशे नृपः पुरमकारयत् ॥ १८० ॥
राजा तत्राकरोद्राज्य मुदाय्युदयभाक् श्रिया ॥ १८४ ॥
(हेमचन्द्र – स्थविरावलिचरित पृ० १६६)

२. उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः।
स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति।
(Pargiter p. 22)

३. हेमचन्द्र—स्थविरावलिचरित पृ० १६०

अजातशत्रु भी इसी प्रकार अपने पिता बिम्बिसार का घात कर शोकसंतप्त हुआ था । जायसवाल लिखते हैं कि गर्ग संहिता में उदायी के साथ 'धर्मात्मा' विशेषण दिया गया है । अतः इस 'धर्मात्मा' से कैसे आशा की जासकती है कि उसने अपने पिता का घात किया हो ।[१] हमारी सम्मति में इस बात को न मानने में कोई कारण नहीं है, कि उदायी ने भी अपने पिता के पदचिन्हों का अनुसरण कर अजातशत्रु का घात किया हो । साम्राज्यवाद के विकास के इस काल में यह प्रवृत्ति राजकुमारों में विराजमान थी । कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजपुत्रों को इन प्रवृत्तियों से बचाने के लिये अनेक उपायों का प्रतिपादन किया है । राजपुत्र कहीं अपने पिता को मार कर राज्य प्राप्ति के लिये षड्यन्त्र तो नहीं कर रहे हैं, इस बात की जानकारी रखने के लिये अनेक प्रकार की व्यवस्थायें की गई हैं ।[२] कौटिल्य का मत यह है, कि राजपुत्र कर्कट के समान होते हैं, जो अपने पिता को खा जाते हैं ।[३] सम्भवतः कौटिल्य ने यह मत शैशुनाक वंश के इन्हीं राजाओं को देख कर बनाया था ।

स्थविरावलिचरित के अनुसार उदायी बहुत शक्तिशाली राजा था । वह अन्य राजाओं पर आक्रमण करता रहता था । अन्य राजा उसके कारण तंग थे । वे समझते थे कि जब तक यह उदायी जीता रहेगा, तब तक हमें राज्यसुख प्राप्त नहीं हो सकता ।[४] उदायी बचपन से ही कितना युद्धप्रिय तथा साहसी था, इस सम्बन्ध में तिब्बती अनुश्रुति की एक कथा बड़ी उपयोगी है—

---

१. Jayaswal–The saisunaka and Maurya chronology
(J. B. O. R. S. 1915, p. 75)

२. कौ० अर्थ० १ । ११

३. 'कर्कटसधर्माणो हि जनकभक्षाः राजपुत्राः'
कौ० अर्थ० १।११

४. राजानोऽत्यन्तमाक्रान्तास्ते तु सर्वे व्यचिन्तयन् ।
यावज्जीवत्युदाय्येष तावद्राज्यसुखं न नः ॥ ८८ ॥
(स्थविरावलिचरित पृ० १६१)

"एक वार की बात है । पूर्णिमा की रात थी । चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी । गर्मियों के दिन थे । राजा अजातशत्रु अपने राजप्रासाद की छत पर गया । और दरबारियों के साथ उस अनुपम दृश्य का आनन्द लेने लगा । अजातशत्रु ने अपने दरबारियों को सम्बोधन करके कहा—'कैसी सुहावनी रात है । गर्मियों की मौसम है । पूर्ण चन्द्रमा निकला हुआ है—सब ओर चांदनी छाई हुई है । इसका किस प्रकार सदुपयोग करना चाहिये ?'

राजदरबार की एक स्त्री ने इस प्रकार उत्तर दिया—'इस रात को खूब मौज उड़ानी चाहिये, खूब आनन्द मंगल करना चाहिये ।'

एक अन्य स्त्री ने कहा—'ऐसी रात का आनन्द उठाने के लिये पहले संपूर्ण राजगृह को सजाना चाहिये और फिर मौज करनी चाहिये ।'

पर कुमार उदायिभद्र ने कहा—'इस अनुपम रात की स्मृति में किसी नवीन राज्य पर आक्रमण करना चाहिये ।'[1]

उस रात का उपयोग अजातशत्रु ने उदायीभद्र के निर्देश के अनुसार नहीं किया, पर इसमें सन्देह नहीं कि जब वह स्वयं राजा बना, तो उसने अपनी कुमारावस्था की आकांक्षाओं को क्रिया में परिणत करने के लिये अनुपम अवसर प्राप्त कर लिया ।

स्थविरावलिचरित के अनुसार उदायी ने किसी समीपवर्ती राजा पर आक्रमण कर उसके राज्य को छीन लिया । वह राजा भी इसी युद्ध में मारा गया ।[2] परन्तु उस राजा के पुत्र ने उज्जैनी के राजा के पास जा कर आश्रय लिया और उससे उदायी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये सहायता की याचना की ।

---

१. Rockhill–Life of Buddha, p. 96.

२. इतश्च राज्ञः कस्यापि कस्मिंश्चिदागसि ।
आच्छेद्युदायिना राज्ञा प्राज्यविक्रमवज्रिणा । १८६ ॥
आच्छिन्नराज्यो राजा स नश्यन्नेव व्यपद्यत । १६० ॥
(हेमचन्द्र—स्थविरावलि चरित)

इस समय भारतवर्ष में साम्राज्य निर्माण करने के लिये जो राज्य संघर्ष कर रहे थे, उनमें मगध और अवन्ती ही सब से प्रबल थे । मगध ने अंग, काशी, वज्जिराज्य संघ आदि को जीत कर अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया था । दूसरी ओर अवन्ती की शक्ति भी बहुत अधिक थी । वत्स और अवन्ती न केवल वैवाहिक सम्बन्ध से बद्ध थे, पर यदि कथासरित्सागर की बात स्वीकृत की जावे, तो उन दोनों राज्यों का शासन भी इस समय एक ही राजा के हाथ में था । अवन्ती के आक्रमण की आशंका से ही मगधराज अजातशत्रु ने राजगृह की किलाबन्दी की थी ।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस समय साम्राज्यवाद के क्षेत्र में मगध और अवन्ती ही मुख्य प्रतिद्वन्द्वी थे । अतः यह बिलकुल स्वाभाविक है कि उदायी द्वारा पदाक्रान्त राज्य के राजकुमार ने अवन्ती के राजा का आश्रय लिया और उसकी सहायता से अपने परास्त राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया ।

अवन्ती के राजा ने सहायता देना स्वीकृत कर लिया । पर उदायी को युद्ध द्वारा परास्त कर सकना सुगम बात न थी । अतः एक चाल चली गई । उदायी जैन धर्म में श्रद्धा रखता था । जैन साधु उसके पास आते जाते रहते थे । इस पदच्युत राजकुमार ने जैनसाधु का वेश बनाया और पाटलिपुत्र जा पहुंचा । जो जैनगुरु उदायी के राजप्रासाद में आते जाते थे, उन में से एक का यह शिष्य बन गया और स्वयं भी प्रासाद में आने जाने लगा । एक दिन अवसर पाकर, जब राजा सो रहा था, इसने उस पर आक्रमण किया और उसका सिर धड से अलग कर दिया ।[2] इस प्रकार अजातशत्रु के उत्तराधिकारी तथा पाटलीपुत्र के संस्थापक उदायी का अन्त हुआ ।

---

१. Pradhan–Chronology of Ancient India p. 216

२. स मायाश्रमणो राज्ञः सुप्तस्य गलकन्दले ।

तां कर्त्रिकां लोहमयीं यमजिह्वोपमां न्यधात् ॥ २०८ ॥

कण्ठो राज्ञस्तयाकर्ति कदलीकाण्डकोमलः ॥ २०९ ॥

स्थविरावलि चरित पृ० १९२

महावंश के अनुसार उदायी ने कुल सोलह वर्ष तक राज्य किया।[1] परन्तु पुराणों के अनुसार उसका शासन काल ३३ वर्ष है।[2] इन मतों में से कौन सा ठीक है, इस पर हम आगे चल कर प्रकाश डालने में समर्थ हो सकेंगे।

उदायी के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में प्राचीन अनुश्रुतियों में बहुत मतभेद है। पुराणों के अनुसार उस के पश्चात् क्रम से नन्दिवर्धन और महानन्दिन राजगद्दी पर बैठे।[3] महावंश के अनुसार उदायी के उत्तराधिकारी इस प्रकार हैं—अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक। दिव्यावदान के अनुसार उदायी के बाद मुण्ड और फिर काकवर्ण मगध के राजा बने।[4] इसी प्रकार अन्य अनुश्रुतियों में भी इस सम्बन्ध में पृथक् पृथक् मत उपलब्ध होते हैं।

हेमचन्द्र ने उदायी के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में अद्भुत कथा लिखी है। उसके अनुसार उदायी के कोई सन्तान नहीं थी। वह बिना पुत्र के ही मृत्यु को प्राप्त हो गया था। अतः यह समस्या उत्पन्न हुई कि अब राजगद्दी पर किसे बिठाया जावे। इस लिये मंत्रियों ने पांचों राजचिन्हों—हाथी, घोड़ा, छत्र, कुम्भ और चमर-का एक जलूस निकला।[1] इसी समय दूसरी ओर से नन्द नाम के एक नापित पुत्र के विवाह का जुलूस आ रहा था। पांचों राजचिन्हों ने

1. Mahavansa iv, 1-2

२. उदायी भविता तस्मात् त्रयिस्त्रंशत् समा नृपः।
(Pargiter p. 22)

३. चत्वारिंशत् समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव महानन्दि भविष्यति ॥
(Pargiter p. 22)

४. राजगृहे नगरे बिम्बिसारो राजा राज्यं कारयति। राज्ञो बिम्बिसारस्य अजातशत्रुः पुत्रः। अजातशत्रो रुदायी। उदायिभद्रस्य मुण्डः। मुण्डस्य काकवर्णः।
(Cowell-Divyavadan, xxvi, p. 369

५. उदाय्यपुत्रगोत्री हि परलोक मगादिति।
तत्रान्तरे पंचदिव्यान्यभिषिक्तानि मन्त्रिभिः ॥ २३६ ॥
पट्टहस्ती प्रधानाश्वश्छत्रं कुम्भोऽथ चामरौ।
(स्थविरावलिचरित पृ० १९६)

स्वयं निर्दिष्ट किया कि राजकीय पद का अधिकारी नन्द है । इस लिये मन्त्रियों ने भी यही निश्चित कर लिया कि राजा के पद पर नन्द को ही अभिषिक्त किया जायगा । राज्य के सब प्रधान पुरुषों, पौर और जानपदों ने मिल कर उसे राजा स्वीकृत कर लिया ।[1] इस प्रकार नापितपुत्र नन्द मगध का राजा बना । इसी नन्द के वंशज उस समय तक मगध के राजसिंहासन पर विराजमान रहे, जब कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने इनके शासन का अन्त कर मौर्य चन्द्रगुप्त को राजपद पर अधिष्ठित किया । स्थविरावलिचरित (हेमचन्द्र कृत) के अनुसार नन्द महावीर स्वामी के निर्वाण के ६० वर्ष पश्चात् मगध का राजा बना था ।[2] चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्य प्राप्ति का काल इसी ग्रन्थ के अनुसार महावीर स्वामी के १५५ वर्ष बाद रखा गया है ।[3] इस प्रकार नन्दवंश का कुल शासन काल (१५५-६०=९५) पचानवे वर्ष है । पुराणों ने भी नन्दों के शासन का काल स्थूल रूप से १०० वर्ष लिख दिया है ।

जैन और पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार उदायी के पश्चात् अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक का उल्लेख नहीं किया गया । बौद्ध अनुश्रुति से उन का यह भारी भेद है । पर इन राजाओं की सत्ता में सन्देह करना सम्भव नहीं है । कारण यह है कि इन में से अन्यतम मुण्ड के सम्बन्ध की अन्य घटनायें हमें ज्ञात हैं । दिव्यावदान में इसका उल्लेख है । और अंगुत्तर निकाय में अपनी रानी भद्रादेवी के स्वर्गवासी हो जाने पर उस के विलाप करने तथा शोकातुर होने का भी वर्णन है । अंगुत्तर निकाय में ही यह लिखा है कि इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी । मुण्ड के कोशाध्यक्ष का भी जिकर आता है, जिस का नाम प्रियक था ।[4]

---

१. ततः प्रधानपुरुषैः पौरैर्जानपदेन च ।
चक्रे नन्दस्य सानन्दमभिषेकमहोत्सवः ॥
(स्थविरावलिचरित पृ० १६७)

२. अनन्तरं वर्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात् ।
गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः ॥

३. एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते ।
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥

४. Pradhan–Chronology of Ancient India p. 218-219

महावंश के अनुसार अनिरुद्ध और मुण्ड का सम्मिलित शासन काल आठ वर्ष है। सम्भवतः, इनके शासन में कोई महत्त्वपूर्ण घटनायें नहीं हुई। इसी लिये शायद इन्हें पौराणिक अनुश्रुति में छोड़ दिया गया है।

महावंश में मुण्ड का उत्तराधिकारी 'नागदासक (नाग का दास)' लिखा गया है। सम्भवतः, यह इसका असली नाम नहीं था। इसे नागदासक इस लिये कहा जाता था, क्योंकि शक्तिशाली नाग (जो आगे चल कर मगध का राजा बना) के हाथ में यह दास मात्र था। इस राजा का वास्तविक नाम क्या था, इस सम्बन्ध में कोई निर्देश हमें नहीं मिलता। महावंश के अनुसार नागदासक का उत्तराधिकारी शिशुनाग था। इसने राज्य किस प्रकार प्राप्त किया, इस सम्बन्ध में महावंश का वृत्तान्त ध्यान देने योग्य है। वहां लिखा है कि पुष्पपुर के पौरों, मन्त्रियों और अमात्यों ने नागदासक को राजगद्दी से च्युत कर 'साधुसम्मत अमात्य सुसुनाग (शिशुनाक)' को राज्य में अभिषिक्त किया।[1] स्थविरावलिचरित में भी यही बात लिखी गई है, पर यह सुसुनाग के सम्बन्ध में न लिखकर नन्द के सम्बन्ध में लिखी गई है। स्थविरावलिचरित्र ने उदायी के पश्चात होने वाले अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक राजाओं को छोड़ दिया है, और उस पुरातन अनुश्रुति को, जिसे महावंश ने सुसुनाग के सम्बन्ध में लिखा है, नन्द के सम्बन्ध में लिख दिया है। स्थविरावलि चरित का यह नन्द पुराणों का नन्दिवर्धन ही है। हेमचन्द्र नन्द और नन्दिवर्धन में ध्वनि साम्य होने से उन को भेद नहीं कर सका है, और नन्दवंश के नन्द (महापद्म) को नन्दिवर्धन के साथ मिला दिया है।

पुराणों में भी उदायी के पश्चात् अनुरुद्ध, मुण्ड और नागदासक को छोड़ कर उदायी का उत्तराधिकारी नन्दिवर्धन को लिखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है, कि पुराणों का नन्दिवर्धन और महावंश का सुसुनाग एक ही व्यक्ति थे। सुसुनाग नन्दिवर्धन की उपाधि थी। उसका पूर्ण नाम नन्दिवर्धन सुसुनाग

---

१. नागदासकराजानमयजेत्वा समागताः।
सुसुनागेति पञ्जानं अमच्चं साधुसंगतम्।
रज्जं समभिसिञ्चिसु सब्बेसं हितमानसम्॥
(महावंश)

(शिशुनाग) था। यह नन्दिवर्धन व सुसुनाग मगध राज्य का एक महत्वपूर्ण राजपदाधिकारी (अमात्य) था, और स्वयं राज्याभिषिक्त होने से पूर्व भी राज्य सञ्चालन में महत्त्व पूर्ण हाथ रखता था। इस से पहला राजा नागदासक इसके हाथ में कठपुतली मात्र था। सम्भवतः, इसी लिये पुराणों में नागदासक को पृथक् राजा न लिखकर इस शिशुनाग नन्दिवर्धन के शासनकाल को ४२ वर्ष लिख दिया गया है।[१] महावंश के अनुसार नागदासक का शासन काल २४ वर्ष और सुसुनाग का काल १८ वर्ष है, इनका योग ४२ (२४+१८=४२) बनता है। सुसुनाग ने २४ वर्ष तक अमात्य रूप से और फिर १८ वर्ष राजा रूप से मगध राज्य का सञ्चालन किया। पुराणों में इस भेद को आंखों से ओझल कर इस (सुसुनाग नन्दिवर्धन) के शासनकाल को ४२ वर्ष लिख दिया गया है। यह शिशुनाग नन्दिवर्धन बहुत शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी राजा था। इसे मगध के प्रधान पुरुषों ने योग्यता के कारण ही राजा बनाया था। राजगद्दी पर बैठ कर इसने मगध साम्राज्य को विस्तृत करने के लिये पूर्ण उद्योग किया और इसके शासन काल में मगध साम्राज्यवाद के क्षेत्र में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने में समर्थ हुआ।

पुराणों में शिशुनाग और उसके पुत्र काकवर्ण का नाम राजा बिंबिसार से पूर्व दिया गया है। सम्भवतः, इस अंश में पौराणिक अनुश्रुति वास्तविक तथ्य के अनुकूल नहीं है। ऐतिहासिकों में इस सम्बन्ध में बहुत विवाद है। यद्यपि जायसवाल महोदय ने पौराणिक अनुश्रुति की संगति लगाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है, पर उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। श्रीयुत भाण्डारकर, रायचौधरी, प्रधान आदि सभी विद्वानों ने उसके मत को अस्वीकृत किया है और बौद्ध अनुश्रुति को ठीक माना है। इसके कारण निम्नलिखित हैं—पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार राजा शिशुनाग ने प्रद्योतों की शक्ति को नष्ट किया था।[२]

---

१. Pradhan–Chronology of Ancient India p. 223

2. अष्टात्रिंशच्छतं भाव्याः प्रद्योताः पञ्च ते सुताः।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति॥ (Pargiter p. 19-21)

प्रद्योत अवन्ती का राजा था और राजा बिंबिसार का समकालीन था। प्रद्योत के पश्चात् भी अवन्ती के अनेक राजाओं का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इनके नाम हैं—पालक, आर्यक, अवन्तिवर्धन और विशाखयूप। इस प्रकार प्रद्योत वंश राजा बिंबिसार के बाद भी कायम रहा। अतः यदि प्रद्योतवंश का शिशुनाग द्वारा अन्त होने की पौराणिक अनुश्रुति सत्य हो, तो शिशुनाग बिंबिसार से पहले कैसे आ सकता है। इसके अतिरिक्त कालाशोक (काकवर्ण) के सम्बन्ध में लिखा गया है, कि उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र को बनाया था। पर कालाशोक (काकवर्ण) यदि उदायी से—जिसने पाटलीपुत्र की स्थापना की थी—पहले हुवा, तो वह पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी कैसे बना सकता था! महालंकारवत्थु के अनुसार सुसुनाग की एक राजधानी वैशाली थी, उसने राजगृह की अपेक्षा वैशाली में अधिक रहना शुरू कर दिया था, इस लिये राजगृह का पतन प्रारम्भ होगया था और इस पतन से राजगृह का फिर कभी उद्धार नहीं हुआ।[१] अब यदि शिशुनाग वैशाली के विजेता अजातशत्रु से पहले होता, तो वह उसे अपनी राजधानी कैसे बना सकता था? इसी प्रकार राजगृह का पतन यदि शिशुनाग के समय से प्रारम्भ हो गया था, तो वह बिंबिसार और अजातशत्रु से पूर्व कैसे हो सकता है, क्योंकि इन राजाओं के समय में राजगृह उत्कर्ष की चरम सीमा को पहुंचा हुआ था। यही कारण हैं, जिन से आधुनिक ऐतिहासिक पौराणिक अनुश्रुति को ठीक न मान बौद्ध अनुश्रुति को स्वीकृत करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि शिशुनाग और काकवर्ण को यदि बिंबिसार से पहले रख दिया जावे, तो उपर्युक्त कठिनाइयों को दूर कर सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता है। अतः अच्छा यही है कि हम महावंश तथा अन्य बौद्ध अनुश्रुति का अनुसरण कर इन राजाओं को उदायी के निर्बल उत्तराधिकारियों के पीछे ही स्थान दें।

महावंश के अनुसार सुसुनाग का लड़का कालाशोक था। दिव्यावदान में इसी को काकवर्ण लिखा गया है। पुराणों में भी शिशुनाग का उत्तराधिकारी काकवर्ण उल्लिखित है। कालाशोक और काकवर्ण की एकता को प्रायः सभी ऐति-

---

१. Rayachowdhary–Political History of Ancient India p.134

हासिकों ने स्वीकार किया है। कालाशोक (काकवर्ण) के शासनकाल की दो घटनायें ध्यान देने योग्य हैं । प्रथम तो यह कि इस के समय में मगध की राजधानी फिर पाटलीपुत्र बनाई गई । दूसरी घटना यह है कि इस के शासन के दसवें वर्ष में बौद्ध धर्म की द्वितीय महासभा वैशाली में हुई । कालाशोक के दसवें वर्ष में महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुवे पूरे १०० वर्ष पूर्ण हो चुके थे । इस वर्ष में बौद्धधर्म की यह दूसरी महासभा वैशाली में संगठित की गई । यह महासभा किस राजा के शासनकाल में हुई, इस सम्बन्ध में बौद्ध अनुश्रुति के निम्नलिखित उद्धरण ध्यान देने योग्य हैं ।

"तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ अपने 'बौद्ध धर्म के इतिहास' में लिखता है—भिक्षु यश ने राजा नन्दी की संरक्षता में वैशाली के कुसुमपुरी विहार में ७०० भिक्षुओं की सभा को संगठित किया ।"[1]

महावंश में लिखा है कि राजा कालाशोक की संरक्षता में जो बौद्धों की महासभा वैशाली में हुई, उस में भिक्षु यश भी एक प्रमुख स्थविर था । इस महासभा के लिये थेर रेवत ने ७०० भिक्षुओं को निर्वाचित किया था ।[2]

दिव्यावदान के वर्णन में भी वैशाली की इस महासभा का वर्णन करते हुवे भिक्षु यश और ७०० भिक्षुओं का उल्लेख पाया जाता है ।[3]

महाबोधिवंश में वैशाली के वालुकाराम में हुई । इस बौद्ध महासभा का वर्णन करते हुवे ७०० भिक्षुओं और स्थविर यश का उल्लेख है ।[4] इसी प्रकार बौद्ध साहित्य के अन्य ग्रन्थों में भी एक समान रूप से ही इस महासभा का वर्णन मिलता है ।

अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस बौद्ध महासभा का वर्णन एक जैसा होते हुवे भी यह किस राजा के शासनकाल में हुई, इस सम्बन्ध में बौद्ध

---

1. Jayaswal (J. B. O. R. S. 1915, p. 78)
2. Mahavansa iv, 61-63
3. Cowell–Divyavadan p. 281
4. Mahabodhivansa p. 96

ग्रन्थों में एक नाम नहीं पाया जाता । इस सम्बन्ध में दो नाम आते हैं—काला-शोक और नन्दी । क्या हम यह कल्पना सुगमता के साथ नहीं कर सकते कि नन्दी और कालाशोक एक ही राजा के दो नाम हैं ? जिस राजा को महावंश में कालाशोक लिखा गया है, उसी को तारानाथ ने नन्दी लिख दिया है । दिव्यावदान ने उसी काकवर्ण लिखा है । अब यह देखिये कि पुराणों में नन्दि वर्धन (शिशु-नाग) का उत्तराधिकारी महानन्दी को लिखा गया है । क्या हम यह नहीं समझ सकते कि पुराणों का यह महानन्दी महावंश का कालाशोक (काकवर्ण) ही है ? हम इसे काकवर्ण महानन्दी कहें, तो कुछ अनुचित न होगा । पुराणों ने गलती यही की है कि नन्दिवर्धन (शिशुनाग) और महानन्दी काकवर्ण को उदायी के बाद लिखने के साथ साथ बिंबिसार से पूर्व भी लिख दिया है ।

महावंश के अनुसार कालाशोकने २८ वर्ष तक राज्य किया । ऐसा प्रतीत होता है कि इस कालाशोक महानन्दी का अन्त भी एक षड्यन्त्र द्वारा हुआ । प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हर्ष चरित' में इस षड्यन्त्र का निर्देश किया है । वह लिखता है, कि काकवर्ण को नगर से बाहर गले में छुरी भोंक कर कतल कर दिया गया था ।[1] इस प्रकार शैशुनाग के अन्य बहुत से राजाओं का अन्त जिस प्रकार षड्यन्त्रों द्वारा हुआ, उसी प्रकार इस काकवर्ण का भी हुआ ।

महावंश के अनुसार काकवर्ण के दस पुत्र थे; जिन्होंने एक साथ२२ वर्ष तक राज्य किया ।[2] महाबोधि वंश में इन दस पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे गये हैं—भद्रसेन, कोरण्डवर्ण, मंगुर, सर्वञ्जह, जालिक, उभक, सञ्जय, कोरव्य, नन्दिवर्धन और पञ्चमक ।[3]

---

१. हर्ष चरित—उच्छ्वास ६
'काकवर्णः शैशुनागिश्च नगरोपकण्ठे कण्ठे निचकृते निस्त्रिंशेन'

२ कालासोकस्स पुत्ता तु अहेसुं दस भातिका ।
बावीसति ते वस्सानि रज्जं समनुसासिसुम् ॥
(महावंश ५ । ९९)

३. महाबोधि वंश पृ० ९८

काकवर्ण के इन दस पुत्रों के पश्चात् महावंश के अनुसार नव नन्दों ने २२ वर्ष तक राज्य किया।[1] महाबोधिवंश में इन नवनन्दों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—उग्रसेन, पाण्डुक, पाण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपति, गोविषाणक, दससिद्धक, कैवर्त और धन।[2]

काकवर्ण महानन्दिन् के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में पौराणिक अनुश्रुति इस प्रकार है—महानन्दी का एक पुत्र था, जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उस का नाम महापद्मनन्द था और वह अत्यन्त बलवान् था। उसने क्षत्रियों को विनाश कर अपने अधिकार को विस्तृत किया। उसका संपूर्ण पृथिवी पर एकच्छत्र शासन स्थापित था और उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला कोई न था। उसने द्वितीय परशुराम के समान पृथिवी का शासन किया। उस के समय से सब राजा 'शूद्रप्राय' और 'अधार्मिक' हुवे। उसके आठ पुत्र थे, जिन में प्रमुख सुकल्प (सुमाल्य) था इन्हों ने क्रमशः १२ वर्ष तक राज्य किया। महापद्म का शासन काल ८८ वर्ष था। इस प्रकार महापद्म और उस के पुत्रों ने मिल कर १०० वर्ष तक राज्य किया। इन नन्दों का विनाश कौटिल्य नामक ब्राह्मण द्वारा किया गया, उसके पीछे फिर मौर्य राजाओं का शासन हुआ।[3]

---

१. नव भातरो ततो आसुं कमेनेव नराधिप
तेऽपि बावीसवस्सानि रज्जं समनिसासिसुम् ॥
(महावंश ५। १५)

२. महाबोधिवंश पृ० ९८

३. महानन्दिसुतो राजन् शूद्रागर्भोद्भवो बली।
महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् ॥
ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः
स एकच्छत्रं पृथिवी मनुल्लङ्घितशासनः ॥
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥
तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्य प्रमुखाः सुताः
य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥
नव नन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नान् उद्धरिष्यति
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ Pargiter p. 25-26

इस प्रकार काकवर्ण के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में बौद्ध और पौराणिक अनुश्रुतियों में बहुत भिन्नता है। पर इस अंश में दोनों अनुश्रुतियों में समता है कि शैशुनाग वंश के राजाओं के पश्चात्—जिन का अन्त काकवर्ण नन्दिवर्धन व उसके पुत्रों के साथ हो गया था—नन्द वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। साथ ही, बौद्ध और पौराणिक दोनों अनुश्रुतियों में नवनन्दों का उल्लेख है। पुराणों में महापद्मनन्द को पिता और सुमाल्य आदि आठ नन्दों को उस का पुत्र लिखा गया है। बौद्ध अनुश्रुति में यह बात नहीं मिलती। पर जिस प्रकार डा० भाण्डारकर ने कल्पना की है, हम उग्रसेन को पिता तथा शेष पाण्डुक आदि को उस के पुत्र समझ सकते हैं।[1] इन नव नन्दों के इतिहास के सम्बन्ध में ग्रीक साहित्य से अनेक काम की बातें उपलब्ध होती हैं। कर्टियस ने लिखा है—

"उसका (अग्रमस या क्सैन्द्रमस का) पिता वस्तुतः नाई था, वह अपनी दैनिक कमाई से बड़ी कठिनता के साथ अपना पेट पालता था। परन्तु देखने में वह बहुत सुन्दर था। इस लिये रानी का उस पर अत्यधिक आकर्षण था और इस रानी के प्रभाव से ही उस ने उस समय के राजा पर बहुत अधिक काबू प्राप्त कर लिया था। पीछे से उसने विश्वासघात कर के राजा का घात कर दिया और राज पुत्रों के नाम से वस्तुतः स्वयं शासन करना प्रारम्भ कर दिया। आगे चल कर उस ने इन राज पुत्रों को भी मार दिया और राज गद्दी पर अपना अधिकार जमा लिया।[2]

अब इस ग्रीक वृत्तान्त के प्रकाश में भारतीय अनुश्रुति पर विचार कीजिये। काकवर्ण महानन्दिन् का अन्त एक षड्यन्त्र द्वारा हुआ था उस के बाद उसके दस पुत्रों ने २२ वर्ष तक राज्य किया। फिर नवनन्दों का शासन हुआ। ग्रीक वृत्तान्त के अनुसार अग्रमस के पिता ने स्वयं राजा बनने से पूर्व उन राज पुत्रों के संरक्षक रूप से राज्य किया था, जिन के पिता को उस ने षड्यन्त्र द्वारा मारा था। क्या हम ग्रीक और भारतीय वृत्तान्त को मिला कर यह सुगमता के साथ नहीं समझ

१. Bhandar-kar The Carmichael Lectures (1916) p. 83

२. Mecrindle The Invasion of India by Alexander. p. 222

सकते कि इस नापित व शूद्र राजा महापद्मनन्द ने रानी का कृपा पात्र बन कर पहले काकवर्ण महानन्दिन को कतल किया और फिर २२ वर्ष तक महानन्दिन के दस पुत्रों के संरक्षक के रूप में शासन करता रहा और फिर उन को भी मार कर स्वयं राजा बन गया। इस के अनन्तर कुछ समय तक इस महापद्म नन्द ने स्वयं और कुछ समय तक उस के आठ पुत्रों ने राज्य किया।

पुराणों में महानन्दी का उत्तराधिकारी महापद्म नन्द लिखा गया है। उस के दस पुत्रों के शासन का उल्लेख नहीं किया गया। इसका कारण शायद यही है कि पुराण लेखकों की दृष्टि में महापद्मनन्द ही उस समय में वास्तविक शासक था। अतः उन्होंने उसके हाथों में कठपुतली के रूप में विद्यमान उन दस राजपुत्रों का जिकर करने की आवश्यकता नहीं समझी।

निस्सन्देह, पुराणों में महापद्मनन्द का शासनकाल ८८ वर्ष और उसके लड़कों का १२ वर्ष लिखा गया है। इस प्रकार नन्दों का कुल शासनकाल १०० वर्ष हो जाता है। पर इसका समाधान इस प्रकार से किया जा सकता है। वायु पुराण के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों में महापद्मनन्द का शासनकाल २८ वर्ष और उसके पुत्रों का १६ वर्ष लिखा गया है।[1] इस प्रकार नन्दों का शासनकाल वायु पुराण के अनुसार ४४ (२८+१६=४४) वर्ष है जो महावंश के साथ ठीक मिल जाता है। महावंश के अनुसार २२ वर्ष तक महानन्दिन काकवर्ण के पुत्रों ने शासन किया, (जिनके समय में वास्तविक शक्ति इसी महापद्मनन्द के पास थी) और फिर २२ वर्ष तक नवनन्दों ने। इन नवनन्दों के शासन काल में यह कल्पना करना असंगत नहीं है, कि ६ वर्ष तक महापद्मनन्द (उग्रसेन) ने शासन किया और १६ वर्ष तक उसके पाण्डुक आदि पुत्रों ने। इस प्रकार यदि वायुपुराण के पाठ को स्वीकृत किया जावे, तो पौराणिक और बौद्ध अनुश्रुति में पूर्णतया समाधान होजाता है।

प्राचीन भारतीय अनुश्रुति में महापद्मनन्द को बहुत शक्तिशाली राजा लिखा गया है। भागवत पुराण की टीका में लिखा है कि नन्द दस पद्म सैनिकों

1. Pradhan–Chronology of Ancient India p. 227

और दस पद्म सम्पत्ति का स्वामी था। इसी लिये उसका नाम महापद्म पड़ा।[1] भागवत टीका की संख्याओं को स्वीकृत कर सकना तो सम्भव नहीं है, पर उन से यह भलीभांति प्रदर्शित हो जाता है कि महापद्म के पास अनन्त सेना विद्यमान थी। इसीलिये शायद बौद्ध अनुश्रुति में उसे उग्रसेन लिखा गया है।[2] कलियुग-राजवृत्तान्त के अनुसार महापद्म ने ऐक्ष्वाक, पाञ्चाल, कौरव्य, हैहय, शूरसेन, मैथिल आदि अनेक राज्यों को जीत कर अपने अधीन किया था।[3] सब पुराणों में महापद्मनन्द को क्षत्रियवंशों का अन्त करने वाला लिखा गया है। उसे दूसरा परशुराम बताया गया है और 'एकराट्' लिखा गया है।[4] भारतवर्ष में जो अनेक स्वतन्त्र राज्य इस समय तक विद्यमान थे। उन्हें नष्टकर अपनी अधीनता में ले आने के लिये अनेक साम्राज्यवादी राजा प्रयत्न कर रहे थे। इन में सफलता मगध के राजाओं को ही प्राप्त हुई। हम देख चुके हैं, कि किस प्रकार बिंबिसार, अजातशत्रु, उदायी, शिशुनाग, नन्दिवर्धन आदि सम्राटों के समय में मगध की शक्ति का विस्तार हुआ। महापद्मनन्द के समय में मगध की यह शक्ति चरम सीमा को पहुंच गई। इस शक्तिशाली राजा ने कोशल का अन्त किया, यह बात कथासरित्सागर से भी पुष्ट होती है, जिसमें कि नन्द के अयोध्या में स्थित

---

१. "नन्दोनाम कश्चिन्महापद्मसंख्यायाः सेनायाः धनस्य वा पतिर्भविष्यति अतएव महापद्म इत्यपि तस्य नाम,

भा० पु०। १२ स्कन्ध। अध्याय १। श्लोक ८ की टीका में।

२ महाबोधिवंश पृ० ९८

३. अतिलुब्धोऽप्यतिबलो सर्वक्षत्रान्तको नृपः।
ऐक्ष्वाकांश्च पांचालान् कौरव्यांश्च हैहयान्॥
कालकानेकलिङ्गांश्च शूरसेनांश्च मैथिलान्॥
जित्वा चान्यांश्च भूपालान् द्वितीय इव भार्गवः।

(कलियुगराजवृत्तान्त भाग० ३। अध्याय २)

४. एकराट् स महापद्मः एकच्छत्रो भविष्यति॥

(Pargiter p. 25)

कटक (कैम्प) का उल्लेख किया गया है।[1] दक्षिण में प्राप्त अनेक शिलालेखों से यह ज्ञात होता है कि आधुनिक बौम्बे प्रान्त के अन्तर्गत अनेक प्रदेशों पर नन्द का शासन था।[2] खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में नन्दराज का उल्लेख कलिङ्ग के साथ सम्बद्ध एक बांध के प्रसंग में किया गया है। इसी शिलालेख से यह भी सूचित होता है कि नन्दराज कलिङ्ग पर आक्रमण कर वहां से जिन की एक मूर्ति मगध ले गया था।[3] इस प्रकार खारवेल राजा के शिलालेख से महापद्मनन्द की अधीनता में कलिङ्गदेश की सत्ता भी सूचित होती है। निस्सन्देह महापद्मनन्द एक अत्यन्त शक्तिशाली सम्राट् था और उसने भारत के बहुत से राज्यों की शक्ति को नष्ट कर उन्हें अधीन कर लिया था। मगध साम्राज्य की शक्ति नन्द द्वारा बहुत बढ़ गई थी।

महापद्मनन्द के सम्बन्ध में बहुत से कथानक प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध होते हैं। कथासरित्सागर में इस प्रकार के अनेक कथानकों का संग्रह है।[4] परन्तु उन्हें यहां उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं। उनका ऐतिहासिक उपयोग बहुत कम है। स्थविरावलिचरित के अनुसार नन्द के प्रधान मन्त्री का नाम कल्पक था। नन्द के साम्राज्य विस्तार में इस कल्पक का बड़ा हाथ था। इस की बुद्धि तथा प्रयत्नों का यह परिणाम था, कि नन्द अपने साम्राज्य को इतना विस्तृत कर सका।[5]

महापद्म के पश्चात् उसके आठ पुत्रों ने शासन किया। इनके शासन के साथ सम्बन्ध रखने वाली कोई घटना हमें ज्ञात नहीं है। पर अन्तिम नन्द

---

१. इतिनिश्चित्य नन्दस्य भूपतेः कटकं वयम्
अयोध्यास्थमगच्छाम त्रयः सब्रह्मचारिणः ॥ ६७ ॥
(कथासरित्सागर पृ० ११)

२. Rice—Mysore and Coorg from the Inscriptions, p. 3

३. Jayaswal—J. B. O. R. S. 1917, p 447-458

४. कथासरित्सागर (पृ० ८-१२)

५. नन्दराज प्रतापाग्नेः वृद्धि मुत्पादयन्पराम् ।
तस्य बुद्धिप्रपञ्चोऽभूत्सचिवस्य महानलः ॥ स्थविरावलिचरित पृ० २०७

धननन्द था, जिसे मार कर मौर्य चन्द्रगुप्त ने चाणक्य कौटिल्य की सहायता से मगध साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित किया। बौद्ध, जैन और पौराणिक सब अनुश्रुतियां इस सम्बन्ध में एकमत हैं। नन्दवंश का विनाश करके चाणक्य ने किस प्रकार मौर्य चन्द्रगुप्त को राजा बनाया, इस का बहुत विस्तृत वर्णन महावंश कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। बौद्धकाल के राजनीतिक इतिहास को लिखते हुवे उसे उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां इतना लिखना ही पर्याप्त होगा, कि मगध के सम्राट् भारत में अपना एकच्छत्र आधिपत्य स्थापित करने का जो प्रयत्न कर रहे थे, मौर्य सम्राटों के समय में वह जारी रहा और चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार तथा अशोक—इन तीन सम्राटों के समय में मगध साम्राज्य निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहा। अशोक के समय में प्रायः सम्पूर्ण भारत मगध साम्राज्य के अन्तर्गत हो चुका था। इन मौर्य सम्राटों का वृत्तान्त लिखना इस ग्रन्थ के क्षेत्र से बाहर है। अतः मगध सम्राटों के राजनीतिक इतिहास को हम धननन्द के साथ समाप्त करते हैं।

मगध के अनेक सम्राट् बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। राजा बिंबिसार की महात्मा बुद्ध के साथ अत्यन्त घनिष्ट मित्रता थी। अनेक बार महात्मा बुद्ध राज गृह में आये और राजा बिम्बिसार ने उनके साथ भेंट की। बौद्ध साहित्य में बुद्ध और बिंबिसार की बात चीत का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। इसी प्रकार राजा अजातशत्रु भी आगे चलकर बुद्ध का भक्त बन गया था। यद्यपि पहले उस ने देवदत्त के बहकावे में आकर बुद्ध को कतल करने का भी प्रयत्न किया था, पर पीछे से उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह महात्मा बुद्ध का परम भक्त बन गया। राजगृह में अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण महात्मा बुद्ध के समय में ही हो गया था। उदयीभद्र के भी बौद्ध होने के निर्देश बौद्ध साहित्य में आते हैं। शैशुनाग वंश के अन्य राजाओं के धर्म के सम्बन्ध में कोई निश्चित ज्ञान हमें नहीं है।

बौद्ध, जैन और पौराणिक अनुश्रुतियों में मगध के राजाओं का वर्णन किस क्रम से उपलब्ध होता है । इसकी तालिका हम यहाँ उपस्थित करते हैं । गत अध्याय के विचार को समझने में इस तालिका से बहुत सहायता मिलेगी ।

पौराणिक अनुश्रुति		बौद्ध अनुश्रुति (महावंश)		जैन अनुश्रुति (स्थविरावलि चरित)
शिशुनाग	४० वर्ष	... ...		... ...
काकवर्ण	३६	... ...		... ...
क्षेमधर्मन्	२०	... ...		... ...
क्षत्रौज	४०	... ...		... ...
बिम्बिसार	२८	बिम्बिसार	५२	श्रेणिक
दर्शक	२४	... ...		... ...
अजातशत्रु	२५	अजातशत्रु	३२	कूणिक
उदायी	३३	उदायी	१६	उदायी
... ...		अनुरुद्ध }	८	... ...
... ...		मुंड }		... ...
... ...		नागदासक	२४	... ...
नन्दिवर्धन	४२ (४०)	सुसुनाग	१८	... ...
महानन्दी	४३	कालाशोक	२८	नन्द और उसके वंशज (९५)
महापद्मनन्द	८८ (८८)	कालाशोक के दस पुत्र	२२	
सुमाल्य आदि आठनन्द	१६	नवनन्द	२२	

इस ग्रन्थ में वत्स, अवन्ती, कोशल और मगध के राजाओं को जिस क्रम से स्वीकृत किया गया है, उनकी तालिका निम्न लिखित है । इन चार राज्यों के समकालीन राजा एक दूसरे के सामने प्रदर्शित किये गये हैं—

मगध	कोशल	अवन्ती		वत्स
बिम्बिसार श्रेणिक	महाकोशल	... ...		शतानीक
अजातशत्रु कूणिक	प्रसेनजित्	प्रद्योत		उदयन
उदायी	विरुधक (क्षुद्रक)	पालक		वहीनर-नरवाहन-बोधि
अनुरुद्ध	कुलक			दण्डपाणी
मुण्ड	सुरथ	आर्यक }	विशाखयूप	निरमित्र
नागदास				
शिशुनाग-नन्दिवर्धन	सुमित्र	अवन्तिवर्धन }		क्षेमक
काकवर्ण-महानन्दी				
महापद्म नन्द				

चौथा भाग
बौद्ध कालीन भारत

पहला अध्याय

शासन का स्वरूप

बौद्धकाल के गणतन्त्र राज्यों में शासन की क्या विधि थी, इस पर हम पहले प्रकाश डाल चुके हैं। इस अध्याय में हम राजतन्त्र राज्यों के शासन विधान पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे। पर यह ध्यान में रखना चाहिये, कि सब राज्यों में एक ही प्रकार का शासन प्रचलित नहीं था। भिन्न भिन्न राजतन्त्र राज्यों में राजा की स्थिति भिन्न भिन्न प्रकार की थी। यही कारण है, कि जातक साहित्य तथा अन्य बौद्ध ग्रन्थों में इस विषय में विविध तथा परस्पर विरोधी विचार उपलब्ध होते हैं। हम यहां सब विचारों को प्रदर्शित करने का यत्न करेंगे।

राजा की स्थिति—बौद्ध साहित्य के अनुसार राजा राज्य का स्वामी नहीं होता था, उसका कार्य केवल प्रजा का पालन तथा अपराधियों को दण्ड देना ही समझा जाता था। वह व्यक्तियों पर कोई अधिकार नहीं रखता था। जातक कथा के अनुसार एक बार एक राजा की प्रिय रानी ने अपने पति से यह वर मांगा कि मुझे राज्य पर अमर्यादित अधिकार प्रदान कर दिया जावे। इस पर राजा ने अपनी प्रिय रानी से कहा—'भद्रे! राष्ट्र के सम्पूर्ण निवासियों पर मेरा कोई भी अधिकार नहीं है, मैं उनका स्वामी नहीं हूं। मैं तो केवल उनका स्वामी हूं जो राजकीय नियमों का उल्लंघन कर अकर्तव्य कार्य को करते हैं अतः मैं तुम्हें राष्ट्र के सम्पूर्ण निवासियों का स्वामित्व प्रदान करने में असमर्थ हूं।'[1] इससे स्पष्ट है, कि

---

१. 'भद्दे मह्यं सकल रट्ठवासिनो न किञ्चि होन्ति नाहं तेसां सामिको। ये पन राजानं कोपेत्वा अकत्तब्बं करोति तेसञ्ञेवाहं सामिको ति इमिना कारणेन न सक्का तुह्मं सकलरट्ठे इस्सरियञ्च आणञ्च दातुं ति।'
V. Fausboll-The Jatak vol. I, p. 398

जातक साहित्य के समय में राजा का अधिकार मर्यादित माना जाता था और वे सम्पूर्ण जनता पर अबाधितरूप से शासन नहीं कर सकते थे।

राज्य व राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विचार बौद्ध साहित्य में पाये जाते हैं, वे भी इसी विचार को पुष्ट करने वाले हैं। बौद्ध साहित्य के अनुसार पहले राज्यसंस्था नहीं थी, अराजक दशा थी। जब लोगों में लोभ और मोह उत्पन्न हो जाने के कारण 'धर्म' नष्ट होगया, तो उन्हें राज्य संस्था के निर्माण की आवश्यकता अनुभव हुई। इसके लिये वे एक स्थान पर एकत्रित हुवे, और अपने में जो सबसे अधिक योग्य, बलवान्, बुद्धिमान और सुन्दर व्यक्ति था, उसे राजा बनाया गया। एक योग्यतम व्यक्ति को राजा बना कर सब ने उसके साथ निम्न प्रकार से 'समय' किया—"अब से तुम उस व्यक्ति को दण्ड दिया करो, जो दण्ड देने योग्य हो और उसे पुरस्कृत किया करो, जो पुरस्कृत होने योग्य हो। इसके बदले में हम तुम्हें अपने क्षेत्रों की उपज का एक भाग प्रदान किया करेंगे।[1]" इसके आगे लिखा गया है—"क्योंकि यह व्यक्ति सब द्वारा सम्मत होकर अपने पद पर अधिष्ठित होता है, इसलिये इसे 'महासम्मत' कहते हैं। क्योंकि यह क्षेत्रों का रक्षक है और हानि से जनता की रक्षा करता है, अतः 'क्षत्रिय' कहाता है। क्योंकि यह प्रजा का रञ्जन करता है, इस लिये इसे 'राजा' कहा जाता है।[2]" राजा के सम्बन्ध में ये विचार बहुत महत्व पूर्ण हैं। इसी ढंग के विचार महाभारत, शुक्रनीति आदि प्राचीन नीति ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते हैं। पर यहां हम यही प्रदर्शित करना चाहते हैं कि बौद्धकाल में भी राजा के सम्बन्ध में जो विचार प्रचलित थे, वे उसे जनता व राज्य का अमर्यादित स्वामी नहीं बनने दे सकते थे, वे उसकी शक्ति को मर्यादित रखने का ही प्रयत्न करते थे।

पर बौद्ध काल के सभी राजा शासन में इन उदात्त सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं करते थे। जातक कथाओं में अनेक इस प्रकार के राजाओं का

---

१. Rockhill–Life of Buddha p. 3-7

2. Ibid p. 7

भी उल्लेख आया है, जो अत्याचारी, क्रूर और प्रजापीडक थे। महापिङ्गल जातक में बनारस के एक राजा का उल्लेख आया है, जिसका नाम था महापिंगल। यह अधर्म से प्रजा का शासन करता था। दण्ड, कर आदि द्वारा यह जनता को इस प्रकार पीसता था, जैसे कोल्हू में गन्ना पीसा जाता है। यह बड़ा क्रूर, अत्याचारी और भयंकर राजा था। दूसरों के प्रति इसके हृदय में दया का लवलेश भी न था। अपने कुटुम्ब में भी यह अपनी धर्मपत्नी, सन्तान आदि पर तरह तरह के अत्याचार करता रहता था।[1]

इसी प्रकार केलिशील जातक में वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त का वर्णन करते हुवे लिखा है, कि वह बड़ा स्वेच्छाचारी तथा क्रूर राजा था। उसे पुरानी वस्तुओं से बड़ा द्वेष था। न केवल पुरानी चीजों को ही नष्ट करने में व्यापृत रहता था, पर साथ ही वृद्ध स्त्री पुरुषों को तरह तरह के कष्ट देकर उन्हें मारने में उसे बड़ा आनन्द प्रतीत होता था। जब वह किसी बूढ़ी स्त्री को देखता, तो उसे बुला कर पिटवाता था। बूढ़े पुरुषों को वह इस ढंग से जमीन पर लुढ़काता था, मानो वे धातु के बरतन हों।[2]

इसी प्रकार अन्यत्र भी जातक कथाओं में अत्याचारी और क्रूर राजाओं का वर्णन है। पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि अधिकांश राजा धार्मिक और प्रजापालक होते थे। ऊपर जिन राजाओं का जिक्र हमने किया है, वैसे राजा जातक कथाओं में बहुत कम हैं। बौद्ध काल के राजा प्रायः अपनी 'प्रतिज्ञा' पर दृढ़ रहने वाले होते थे। जो राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे, उनके विरुद्ध विद्रोह भी होते रहते थे। जातक कथाओं में अनेक राजाओं के विरुद्ध किये गये विद्रोहों तथा राजाओं के पदच्युत किये जाने के उल्लेख मिलते हैं। कुछ उदाहरण हम यहां उपस्थित करते हैं—

सच्चङ्किर जातक में एक राजा की कथा आती है, जो बड़ा क्रूर और अत्याचारी था। आखिर, लोग उसके शासन से तंग आगये और ब्राह्मण, क्षत्रिय

---

१. Cowell-The Jatak vol. II, p. 166

२. Cowell-The Jatak vol. II, p. 99

तथा अन्य सब देशवासियों ने मिल कर निश्चय किया कि. इस राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जावे । इसी के अनुसार एक बार जब वह अत्याचारी राजा हाथी पर जा रहा था, उस पर आक्रमण किया गया और उसे वहीं कतल कर दिया गया । राजा को मार कर जनता ने स्वयं बोधिसत्व को अपना राजा निर्वाचित किया ।[1] इसी प्रकार पदकुशलमाणव जातक में एक अत्याचारी राजा के विरुद्ध जनता के विद्रोह का वर्णन आता है । इस राजा के विरुद्ध भड़काते हुवे जनता को निम्न लिखित बात कही गई थी—'जानपद और निगम में एकत्रित जनता मेरी बात पर ध्यान दे । जल में अग्नि प्रज्वलित हो उठी है । जहां से हमारी रक्षा होनी चाहिये, वहीं से अब रक्षा के स्थान पर भय हो गया है । राजा और उसका ब्राह्मण पुरोहित राष्ट्र पर अत्याचार कर रहे हैं । अब तुम लोग अपनी रक्षा स्वयं करो । जहां तुम्हें शरण मिलनी चाहिये, वही स्थान अब भयंकर हो गया है ।[2]

जनता को यह बात समझ में आगई । उन्होंने मिल कर राजा का घात कर दिया और इस प्रकार उस अत्याचारी शासन का अन्त हुआ । खण्डहल जातक में पुष्पवती नगरी के राजा की कथा आती है, जिसका पुरोहित खण्डहाल नाम का ब्राह्मण था । इस खण्डहाल के प्रभाव में आकर राजा बहुत पथभ्रष्ट हो गया और उस ने स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा से अपनी स्त्रियों, बच्चों और प्रजा के मुख्य व्यक्तियों की बलि देने का विचार करना प्रारम्भ किया । उसने सब तैयारी भी कर ली । पर जब इस महान् हत्याकाण्ड का अवसर उपस्थित हुआ, तो जनता इसे सह न सकी और उसने विद्रोह कर दिया । पुरोहित खण्डहाल कतल कर दिया गया । और जनता ने राजा पर भी आक्रमण किया । पर शक्र के हस्ताक्षेप

---

1. Cowell–Jatak, vol. I, p. 180

२ सुनन्तु मे जानपदा नेगमा च समागता
यदोदकं तदादित्तं, यतो खेमं ततो भयम् ।
राजा विलम्पते रट्ठं ब्राह्मणो च पुरोहितो
अत्तगुत्ता विहरथ, जातं सरणतो भयम् ।

Fausboll–Jatak vol. iii, p. 513

करने पर जनता उसे प्राणदान देने के लिये उद्यत हो गई । राजा की जान बच गई, पर उसके सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गई कि उसे राज्य से च्युत किया जावे और पुष्पवती से बहिष्कृत कर बाहर चाण्डालों के साथ बसने की अनुमति दी जावे । ऐसा ही किया गया और जनता के विरोध से पुष्पवती के इस अत्याचारी और पथभ्रष्ट राजा के शासन का अन्त हुआ ।[1] इन उदाहरणों से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है, कि बौद्धकाल में अत्याचारी राजाओं के शासन को जनता सहन नहीं कर सकती थी, और अवसर पाकर उन्हें पदच्युत करने में कभी नहीं चूकती थी ।

बौद्धकाल के राजतन्त्र राज्यों में राजा प्रायः वंशक्रमानुगत होते थे । पर राजसिंहासन पर विराजमान होने के लिये उन्हें यह सिद्ध करना आवश्यक होता था कि वे राज्य कार्य का सञ्चालन करने के लिये उपयुक्त योग्यता रखते हैं । गामणिचण्ड जातक में कथा आती है कि जब बनारस के राजा जनसन्ध की मृत्यु हो गई, तो अमात्यों ने विचार किया कि राजकुमार की आयु बहुत कम है, अतः उसे राजा नहीं बनाना चाहिये । फिर विचार के अनन्तर उन्होंने यह निर्णय किया कि राजगद्दी पर बिठाने से पूर्व कुमार की परीक्षा करना आवश्यक है । कुमार को न्यायालय (विनिश्चय स्थान) में ले जाया गया और वहां उसकी अनेक प्रकार से परीक्षा ली गई । जब उस ने यह सिद्ध कर दिया कि राजा के लिये आवश्यक सब गुण उस में विद्यमान हैं, तभी उसे वह पद दिया गया ।[2]

पादञ्जलि जातक की कथा इस सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण है । हम उस के मुख्य कथानक को यहां पर उपस्थित करते हैं — बनारस के राजा का नाम ब्रह्मदत्त था । उसने अपने 'अर्थधर्मानुशासक अमात्य' के पद पर बोधिसत्व को नियत किया हुआ था । राजा का एक लड़का था, उस का नाम था पादञ्जलि । यह बहुत आलसी और सुस्त आदमी था । कुछ समय पश्चात् राजा ब्रह्मदत्त की मृत्यु हो गई और अमात्यों ने पादञ्जलि को राजा बनाने के लिये विचार करना प्रारम्भ

1. Cowell-Jatak, vol. vi, p. 79
2. Ibid vol. ii, p. 207-215

किया। पर 'अर्थ-अनुशासक अमात्य' बोधिसत्व ने उन्हें कहा —'यह पादञ्जलि अत्यन्त आलसी और सुस्त आदमी है। क्या यह उचित है कि हम इसे राजा बनावें ?'

अमात्यों ने निश्चय किया कि उसकी परीक्षा लेकर इस बात का निर्णय किया जावेगा। वे उसे विनिश्चय स्थान (न्यायालय) में ले गये और एक अभियुक्त के मुकदमे का अशुद्ध फैसला कर पादञ्जलि से बोले—'कुमार ! क्या हमने ठीक निर्णय किया है !'

पादञ्जलि ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने ओठों को चलाता रहा।

बोधिसत्व ने सोचा—यह एक बुद्धिमान लड़का है, उसने यह बात भांप ली है कि हमने अशुद्ध निर्णय किया है। इसी लिये वह अपने ओंठ इस प्रकार चला रहा है।

अगले दिन फिर पादञ्जलि को न्यायालय में लाया गया। फिर एक अभियुक्त का मुकदमा पेश किया गया। पर इस दिन उसका निर्णय ठीक ठीक किया गया। मुकदमे की समाप्ति पर फिर कुमार से पूछा गया, कि 'कुमार, क्या हमने ठीक फैसला किया है !'

पादञ्जलि फिर उसी तरह चुप बैठा रहा और अपने ओठों को चबाता रहा। अब बोधिसत्व को ज्ञात हो गया कि पादञ्जलि वज्रमूर्ख है। उस में सच व झूठ को विवेक करने की शक्ति नहीं है।

अन्त में अमात्यों ने यही निश्चय किया कि उसे राजा न बनाया जावे। उन्होंने राजपुत्र होते हुए भी पादञ्जलि को राजगद्दी नहीं दी और बोधिसत्व को राजा निश्चित किया।'[१]

इस कथा से बिलकुल स्पष्ट है कि राजा बनने की योग्यता का निर्णय अमात्य लोग किया करते थे। सामान्य दशा में राजा का लड़का ही राजगद्दी पर बैठता था। पर यदि वह योग्य न हो, या उसकी योग्यता के सम्बन्ध में

---

१. Cowell-Jatak vol. ii, p. 183-184

विवाद हो, तो अमात्य लोग उसकी परीक्षा लेते थे और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर किसी अन्य को राज्य प्रदान कर सकते थे।

शासन करने की योग्यता के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी राजा के लिये ध्यान में रखी जाती थीं। अन्धे व विकलाङ्ग व्यक्ति को राजा नहीं बनाया जाता था। शिविजातक में अरिट्ठपुर के राजा शिवि की कथा आती है, जो बड़ा दानी था। उसके दान की कीर्ति सब ओर फैली हुई थी। एक बार एक अन्धे भिक्षुक ब्राह्मण ने उससे आंखों की भिक्षा की। राजा शिवि तैयार होगया और उसने अपनी आंखें उस भिक्षुक को प्रदान कर दीं। स्वयं अन्धा होजाने पर राजा शिवि ने सोचा कि अन्धे आदमी को राजसिंहासन पर बैठने का क्या लाभ है। वह अपने अमात्यों के हाथ में राज्य को सुपुर्द कर स्वयं वन में चला गया और वहां तापस के रूप में जीवन को व्यतीत करने लगा[1] इसी प्रकार सम्बुल जातक में बनारस के राजकुमार सोठ्ठिसेन की कथा आती है, जो कोढ़ से पीड़ित था और इसी रोग से ग्रस्त होने के कारण राजप्रासाद को छोड़ कर जङ्गल में चला गया था। वह तब तक अपने राज्य में वापिस नहीं लौटा, जब तक कि उसकी धर्मपत्नी सम्बुला की सेवा से उसका रोग पूर्णतया दूर नहीं होगया। कोढ़ से पीड़ित होने के कारण वह अपने को राजसिंहासन के योग्य नहीं समझता था।[2]

सामान्यतया राजतन्त्र राज्यों में राजा का बड़ा लड़का ही राजगद्दी पर बैठता था। इसी लिये राजा लोग सन्तान के लिये बहुत उत्सुक रहते थे। सन्तान की इच्छा से वे बहुविवाह में भी संकोच नहीं करते थे। पर यदि राजा के कोई सन्तान न हो, तो राजगद्दी राजा के भाई को प्राप्त हो सकती थी।[3] अनेक बार जामाता को भी राजगद्दी प्राप्त हो सकती थी।[4] कुछ दशाओं में राजा की विधवा रानी अमात्यवर्ग की सहायता से राज्य का संचालन करती थी। उदय

1. Cowell—The Jatak vol. iv. p. 254
2. Ibid vol. v. p. 48 – 53
3. Ibid vol. II p. 251-260
4. Ibid vol. II p. 224

जातक में कथा आती है कि राजा उदय के पश्चात् उसकी रानी उदयभद्रा ने शासन किया और अमात्यों की सहायता से वह सफलता पूर्वक शासन करती रही।[१] इसी प्रकार घट जातक में एक स्त्री के शासन का उल्लेख है।[२]

यह पहले प्रदर्शित किया ही जा चुका है कि अनेक बार जब राजकुमार शासन करने के अयोग्य हो, तो अमात्य लोग उसे पदच्युत कर किसी अन्य व्यक्ति को राजगद्दी पर बिठा सकते थे। पर कई बार राजगद्दी का प्रश्न बहुत विवादग्रस्त होजाता था और विविध लोग इस बात पर एक मत नहीं हो सकते थे कि राजा किसे बनाया जाय। इस दशा में एक बड़े अद्भुत उपाय का अवलम्बन किया जाता था। अमात्य लोग एक पुष्परथ निकालते थे, जिसके साथ राज्यत्व के पांचों चिन्ह रहते थे। ये पांच राजचिन्ह निम्नलिखित होते थे— हाथी, घोड़ा, छत्र, चामर और कुम्भ। यह रथ चलते चलते जिस व्यक्ति के समीप ठहर जाता था, उसे राजा बना दिया जाता था। जातक साहित्य में अनेक राजाओं के इसी पद्धति से राज्याभिषिक्त होने की कथा मिलती है। दरीमुख जातक के अनुसार बनारस का राजा सन्तानहीन था। जब उसकी मृत्यु हो गई, तो अमात्यों के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न हुई कि राजा किसे बनाया जावे। अन्त में पुष्परथ की पद्धति का आश्रय लिया गया और उससे बोधिसत्व का राजा बनाया जाना निश्चित हुआ।[3] निग्रोध जातक में कुमार निग्रोध की कथा आती है, जो बहुत गरीब घर का था। वह तक्षशिला से शिक्षा समाप्त कर कुछ साथियों के साथ, अपने घर को वापिस जा रहा था। मार्ग में काशी में ठहर गया। वहां, राजा कौन हो, इस समस्या का हल करने के लिये पुष्परथ निकाला गया था। पुष्परथ कुमार निग्रोध के पास आकर ठहर गया और उसे ही काशी का राजा बना दिया गया।[4] मगध के राजा उदायी के उत्तराधिकारियों के

---

१. Cowell–Jatak vol.iv p.67

२ Ibid vol.iv p.50

३. Ibid vol.iii p. 157

४. Ibid vol.iv p. 25

सम्बन्ध में भी हेमचन्द्र ने इसी प्रकार की कथा लिखी है। उदायी के सन्तान न होने पर मगध के राजसिंहासन पर किसे अभिषिक्त किया जाय, यह समस्या उत्पन्न हुई और इसका निर्णय पुष्परथ द्वारा ही किया गया। इसी पद्धति से उदायी का उत्तराधिकारी नन्द को निश्चित किया गया।[1]

बौद्ध काल के अनेक राज्यों में राजकुमार लोग अपने पिता के जीवित होते हुवे भी स्वयं राज्य प्राप्त करने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर देते थे। हम मगध का राजनीतिक इतिहास लिखते हुवे प्रदर्शित कर चुके हैं कि मगध के अनेक सम्राट् पितृघाती थे, उन्होंने अपने पिता को मार कर राज्य प्राप्त किया था। प्रसिद्ध सम्राट् अजातशत्रु ने राज्य प्राप्त करने के लिये अपने पिता बिम्बिसार का का घात किया था। कौटलीय अर्थशास्त्र से भी हम इस प्रवृत्ति को प्रदर्शित कर चुके हैं। जातक कथाओं में भी अनेक कुमारों का उल्लेख है, जिन्हों ने अपने पिता के जीवित काल में ही स्वयं राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न किया। संकिच्च जातक के अनुसार बनारस के राजा का नाम ब्रह्मदत्त था। उसका एक लड़का था, उसका नाम भी ब्रह्मदत्त रखा गया। जब कुमार ब्रह्मदत्त तक्षशिला से अपनी शिक्षा समाप्त कर वापिस आया, तो उसने सोचा—'मेरे पिता की आयु अभी बहुत कम है, वह तो मेरे बड़े भाई के समान है, यदि मैं उसकी मृत्यु तक राज्य के लिये प्रतीक्षा करूंगा, तो राजा बनने तक मैं बूढ़ा हो जाऊंगा। बूढ़ा होकर राजा बनने से क्या लाभ होगा? मैं अपने पिता का घात कर दूंगा और इस प्रकार राजगद्दी पर अधिकार प्राप्त कर लूंगा। उसने यही किया और एक षड्यन्त्र द्वारा अपने पिता को मार कर स्वयं राजा बन गया।[2]

इसी प्रकार की अनेक अन्य कथायें जातक साहित्य में उपलब्ध होती हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि भारत के अनेक राज्यों में उस समय यह प्रवृत्ति प्रादुर्भूत हो चुकी थी, पर दूसरी तरफ़ ऐसे राज्य भी थे, जिनमें राजाओं

---

१. स्थविरावलि चरित पृ० १८६

२. Cowell–Jatak vol. v, p. 135

के लिये 'वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां' का प्राचीन आदर्श प्रयोग में आरहा था, और राजा लोग वृद्धावस्था के आते ही अपना राज्य कार्य लड़के को प्रदान कर स्वयं मुनिवृत्ति धारण कर लेते थे। शंखपाल जातक में राजगृह के एक राजा का उल्लेख है, जिसने वृद्धावस्था में पदार्पण करते ही अपना राज्य राजकुमार दुर्योधन को प्रदान कर दिया था और स्वयं नगर से बाहर तापस का जीवन बिताना प्रारम्भ किया था।[१] इसी प्रकार निमि जातक में मिथिला के राजा मखादेव की कथा आती है। उसने अपने नाई को कहा हुआ था कि जब वह उसके सिर पर कोई सफेद बाल देखे, तो उसे सूचना दे। शुरू शुरू में जब नाई ने राजा को सफेद बालों की सूचना दी, तो राजा ने आज्ञा दी कि इन्हें उखाड़ कर मेरे हाथ में देते जाओ। कुछ समय तक नाई यही करता रहा। पर जब राजा ने अनुभव किया कि बाल निरन्तर श्वेत होते जा रहे हैं, और पूर्णतया वृद्धावस्था आगई है, तो उसने अपने बड़े लड़के को बुलाया और राज्य संचालन के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश देकर स्वयं तापस जीवन स्वीकृत कर लिया। न केवल राजा मखादेव, अपितु उसके पुत्र पौत्र आदि ने भी इसी प्रकार स्वयं वृद्धावस्था में राज्य का परित्याग किया था।[२] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत की प्राचीन परम्परा बौद्धकाल में भी अवशिष्ट थी।

यद्यपि बौद्धकाल में अच्छे और बुरे सब प्रकार के राजा विद्यमान थे, पर प्रयत्न इसी बात का रहता था कि उन्हें सन्मार्ग पर लाया जावे। एकपण्ण जातक में एक राजकुमार की कथा आती है। वह बहुत पथभ्रष्ट तथा भयंकर प्रकृति का था। अमात्यों, ब्राह्मणों और जनपदवासियों ने बहुत प्रयत्न किया कि उसे दुरुस्त करें, पर वह किसी के काबू में नहीं आया। आखिर, बोधिसत्त्व ने उसे शिक्षा दी। वह उसे एक नीम के छोटे से पौदे के पास ले गया और उसे कहा—'कुमार, इस पौदे के एक पत्ते को चख कर तो देखो, यह कैसा लगता है?

१. Cowell-Jatak vol. v, p. 84

२. Ibid vol. vi, p. 53

कुमार ने ऐसा ही किया। ज्यों ही उसने उस पत्ते को मुंह में डाला, कड़वाहट से उसका सारा मुंह भर गया और उसने उसे थूक कर बाहर फेंक दिया। इतना ही नहीं, उसने उस छोटे से पौदे को भी उखाड़ लिया और तोड़ मोड़ कर, हाथ से मसल कर फेंक दिया। बोधिसत्व ने पूछा—'कुमार, यह क्या करते हो?' कुमार ने उत्तर दिया— 'अभी तो यह पौदा इतना छोटा है, जब यह अभी से इतनी कड़वाहट उत्पन्न करता है, तो आगे चल कर तो पता नहीं कितना जहर उगलेगा।' यह सुन कर बोधिसत्व ने कहा— 'कुमार यह सोच कर कि यह कड़वा पौदा आगे चलकर कितना जहर उगलेगा, तुमने इसे उखाड़ कर मसल कर फेंक दिया है। तुमने जो व्यवहार इस पौदे के साथ किया है, वही इस राज्य के निवासी तुम्हारे साथ करेंगे। यह सोचकर कि यह पथभ्रष्ट, भयंकर प्रकृति का कुमार आगे चल कर कितना अनर्थ करेगा, वे तुम्हें भी राजगद्दी पर बिठाने के बजाय उखाड़ कर फेंक देंगे। इस लिये इस पौदे से शिक्षा ग्रहण करो और आगे से दया और स्नेह का बरताव करो।'[1] इस में सन्देह नहीं, कि जनता के विद्रोह का भय बौद्ध काल के राजाओं को सदा बना रहता था, और इस डर से कि कहीं जनता हमें पदच्युत न कर दे, वे सन्मार्ग पर कायम रहते थे।

बौद्ध साहित्य में राजा के दस धर्मों का स्थान स्थान पर उल्लेख किया गया है। वे दस धर्म निम्न लिखित हैं— दान, शील, परित्याग, आर्जव, मार्दव, तप, अक्रोध, अविहिंसा, क्षान्ति, और अविरोधन।[2] राजाओं में इन गुणों की सत्ता बहुत आवश्यक और लाभकर मानी जाती थी। राजाओं से दानशीलता की आशा उस समय बहुत अधिक की जाती थी। जातक साहित्य में अनेक राजाओं की दानशक्ति का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। चुल्लपद्म जातक में वाराणसी के राजा पद्म की कथा आती है, जो अत्यन्त दानी था। उस ने वहां

---

१. Cowell-Jatak vol. i, p. 318-319

२ दानं सीलं परिच्चागं अज्जवं मद्दवं तपम्
अक्कोधं अविहिंसा च खान्ति च अविरोधनम्॥
Fausboll-Jatak vol. iii, p. 274

छः दानगृह बनवाये हुवे थे । चार दानगृह वाराणसी के चारों द्वारों पर बने हुवे थे, एक नगर के ठीक बीच में और छठा राजप्रासाद के सामने । इन दान गृहों से प्रतिदिन छः लाख मुद्रायें दान दी जाती थीं ।[1] इसी प्रकार का वर्णन अन्य अनेक राजाओं के सम्बन्ध में भी आता है ।

बौद्धकाल के राजा बड़े वैभव और शान शौकत के साथ निवास करते थे । जातक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर उनके जुलूसों, सवारियों तथा राजप्रासादों का वर्णन आता है । राजा लोग तमाशों, खेलों और संगीत आदि का भी बहुत शौक रखते थे । शिकार उनके आमोद प्रमोद का महत्व पूर्ण साधन होता था । राजाओं के अन्तःपुर भी बहुत बड़े होते थे । अन्तःपुर में प्रचुर संख्या में स्त्रियों को रखना एक शान की बात समझी जाती थी । सुरुचि जातक के अनुसार बनारस के राजा ने निश्चय किया कि वह अपनी कन्या का विवाह ऐसे कुमार के साथ ही करेगा, जो एकपत्नीव्रत रखने का प्रण करे । मिथिला के कुमार सुरुचि के साथ इस कुमारी, जिसका नाम सुमेधा था, के विवाह की बात चल रही थी । मिथिला के राजदूतों ने एकपत्नीव्रत होने की शर्त को सुना, तो वे कहने लगे — 'हमारा राज्य बहुत बड़ा है । मिथिला नगरी का सात योजन विस्तार है । सारे राज्य का विस्तार ३०० योजन है । ऐसे राज्य के राजा के अन्तःपुर में कम से कम सोलह हजार रानियां अवश्य होनी चाहियें ।'[2] जातक कथाओं में बहुत से ऐसे राजाओं का वर्णन आता भी है, जिनके अन्तःपुर में हजारों स्त्रियां रहती थीं ।

राजतन्त्र राज्यों में राजा के अतिरिक्त अमात्यों का शासन में बहुत महत्व-पूर्ण स्थान होता था । जातक साहित्य में स्थान स्थान पर अमात्यों का जिक्र आता है । ये अमात्य संख्या में बहुत होते थे और राजा को शासन सम्बन्धी सब विषयों में परामर्श देने के कार्य करते थे । अमात्यों के लिये सब विद्याओं व शिल्पों

---

१. Cowell-Jatak vol. ii, p. 83

२. Ibid vol. iv, p. 199

में निष्णात होना आवश्यक माना जाता था।[1] राजा की मृत्यु के अनन्तर राज्य का सञ्चालन अमात्य लोग करते थे। सात दिन के पश्चात् जब स्वर्गीय राजा की और्ध्वदेहिक क्रियायें समाप्त हो जाती थीं, तब वे ही इस बात का निश्चय करते थे कि राजगद्दी पर कौन विराजमान हो।[2] राजा की अनुपस्थिति या शासन कार्य में असमर्थता की दशा में भी वे शासन सूत्र को अपने हाथों में कर लेते थे।[3] प्राचीन भारत में राजतन्त्र राज्यों में मन्त्रिपरिषद् का बड़ा महत्व होता था।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि जातक कथाओं में जिन 'अमात्यों' का उल्लेख आता है, वे इसी प्राचीन मन्त्रिपरिषद् को सूचित करते हैं। अमात्यों में सब से प्रधान स्थान पुरोहित का होता था। पुरोहित राजा के 'धर्म और 'अर्थ' दोनों का अनुशासक होता था। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार प्रथम राजा, जिसे 'महासम्मत कहा गया है—को भी पुरोहित नियुक्त करने की आवश्यकता हुई थी।[5] पुरोहित का पद प्रायः वंशक्रमानुगत होता था। एक ही परिवार के व्यक्तियों को वंशक्रमानुगत रूप से पुरोहित के महत्व पूर्ण पद पर नियत किया जाता था।[6] पर राजा की तरह पुरोहित का पद भी पूर्णरूप से एक वंश में नहीं रह पाता था। अनेक बार पुरोहित की नियुक्ति पर वादविवाद भी होते थे।[7] और नये व्यक्तियों को इस पद पर नियत कर दिया जाता था।[8]

पुरोहित के सम्बन्ध में जो विचार प्राचीन नीति ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, उनकी पुष्टि जातक साहित्य द्वारा भी होती है। पुरोहित का अनुसरण राजा

---

1. Cowell-Jatak vol. ii, p. 51
2. Ibid vol. iii, p. 157
3. Ibid vol. iv, p. 233
४. कौ० अर्थ० १, १५
5. Cowell-Jatak vol iii, p. 272
6. Ibid vol. iii, p. 237
7. Ibid vol. ii, p. 33
8. Ibid vol. iii, p. 123

को उसी प्रकार करना चाहिये, जैसे पुत्र पिता का या शिष्य गुरु का करता है।[1] जातक कथाओं के अनुसार भी पुरोहित राजा को पथभ्रष्ट होने की दशा में सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता था, इसके लिये डांटता डपटता भी था।[2] तिलमुट्ठि जातक के अनुसार बनारस के राजा ब्रह्मदत्त ने तक्षशिला के अपने आचार्य को पुरोहित के पद पर नियत किया था और वह उसका उसी प्रकार अनुसरण करता था, जैसे पुत्र अपने पिता का करता है।[3]

पुरोहित के अतिरिक्त अन्य भी अनेक अमात्यों के नाम जातक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इनमें सेनापति, भाण्डागारिक, विनिश्चयामात्य और रज्जुक के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। सेनापति का कार्य जहाँ सैन्य का सञ्चालन करना होता था, वहां साथ ही वह एक मन्त्री के रूप में भी कार्य करता था। एक कथा से यह भी सूचित होता है कि वह मुकदमों का निर्णय करने का भी कार्य करता था।[4] एक स्थान पर सेनापति को अमात्यों का प्रमुख भी लिखा गया है।[5] विनिश्चयामात्य न्यायमन्त्री को कहते थे। यह जहां मुकदमों का फैसला करता था, वहां राजा को धर्म तथा कानून सम्बन्धी मामलों में परामर्श भी देता था।[6] भाण्डागारिक कोषाध्यक्ष को कहते थे। भाण्डागारिक प्रायः किसी अत्यन्त सम्पत्तिशाली व्यक्ति को बनाया जाता था। एक भाण्डागारिक की सम्पत्ति ८० करोड़ लिखी गई है।[7] रज्जुक सम्भवतः भूमि की पैमाइश आदि करके मालगुजारी वसूल करने वाले अमात्य को कहते थे। इनके अतिरिक्त दोणमापक, हिरण्यक, सारथी, दौवारिक आदि अन्य अनेक राजकर्मचारियों के नाम भी जातक साहित्य में उपलब्ध होते हैं।

---

1. कौ० अर्थ० १, १०
2. Cowell–Jatak, vol. iii, p. 197
3. Ibid vol. ii, p. 186
4. Ibid vol. ii, p. 139
5. Ibid vsl. v, p. 92
6. Ibid vol. ii, p. 259
7. Ibid vol. i, p. 286

बौद्धकाल में शहर के कोतवाल को नगरगुत्तिक कहते थे। यह नगर की शान्ति रक्षा का उत्तरदायी होता था। इसे एक स्थान पर 'रात्रि का राजा' भी कहा गया है। पर पुलीस के ये कर्मचारी बौद्धकाल में भी रिश्वतों से मुक्त नहीं थे। सुलसा जातक में कथा आती है कि सुलसा नामक वेश्या ने सत्तक नामक डाकू के रूप पर मुग्ध हो कर उसे छुड़ाने के लिये पुलीस के कर्मचारी को एक हजार मुद्रायें रिश्वत के रूप में दी थीं और इस धनराशि से वह सत्तक को छुड़वाने में सफल भी हो गई थी।[१]

जातक कथाओं से बौद्धकाल की सेनाओं के सम्बन्ध में भी कुछ निर्देश मिलते हैं। सेनायें प्रायः अपने राज्य के निवासियों द्वारा ही बनी होती थीं। विदेशी सैनिकों व नये सैनिकों को पसन्द नहीं किया जाता था। स्वदेशी और पितृपैतामह सैनिकों को उत्तम माना जाता था। धूमकारि जातक में कथा आती है कि कुरु देश के इन्द्रपत्तन नगर के राजा धनञ्जय ने अपने पुराने सैनिकों की उपेक्षा कर नवीन सैनिकों को सेना में भर्ती करना प्रारम्भ कर दिया। जब उसके सीमाप्रान्त पर युद्ध प्रारम्भ हुआ, तो उसे इन नये सैनिकों के कारण परास्त होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि उसे अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ, और उसने फिर पुरानी सेनाओं के बल पर विजय प्राप्त की।[२] बौद्ध कालीन राज्यों में सीमा प्रदेशों पर सदा कुछ न कुछ अव्यवस्था कायम रहती थी। जातक कथाओं में स्थान स्थान पर सीमावर्ती विद्रोहों व युद्धों का उल्लेख आता है।

बौद्ध काल में भी राज्य पुर और जनपद इन दो विभागों में विभक्त किये जाते थे। पुर राजधानी को कहते थे और राजधानी के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण राज्य को जनपद कहा जाता था। जनपद में विद्यमान विविध ग्रामों का शासन किस प्रकार होता था, इस सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण निर्देश जातक साहित्य में उपलब्ध नहीं होते। ग्राम के शासक को ग्रामभोजक कहते थे। ग्रामभोजक बहुत महत्वपूर्ण पद समझा जाता था, इसी लिये इसके साथ अमात्य विशेषण भी

---

१. Cowell–Jatak vol. iii, p. 261
२. Ibid vol. iii, p. 242

आता है ।[1] ग्रामभोजक ग्राम सम्बन्धी सब विषयों का सञ्चालन करता था। उसे न्याय सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त थे ।[2] शराबखोरी को नियन्त्रित करना तथा शराब की दुकान के लिये लाइसेन्स देना भी उसी के अधिकार में था ।[3] दुर्भिक्ष पड़ने पर गरीब जनता की सहायता करना ग्रामभोजक का ही कार्य था।[4] एक स्थान पर यह भी जिक्र आता है कि ग्रामभोजक ने पशुहिंसा और शराब का सर्वथा निषेध कर दिया था ।[5] ग्रामभोजक की स्थिति राजा के आधीन होती थी। उसके शासन के विरुद्ध राजा के पास अपील की जासकती थी, और राजा उसे पदच्युत कर किसी अन्य व्यक्ति को उसके स्थान पर नियुक्त कर सकता था।[6] पानीय जातक में कथा आती है कि काशीराज्य के दो ग्रामभोजकों ने अपने २ ग्रामों में पशुहिंसा तथा शराब पीने का सर्वथा निषेध कर दिया था । इस पर उन ग्रामों के निवासियों ने राजा से प्रार्थना की कि हमारे ग्रामों में यह प्रथा देर से चली आरही है और इन्हें इस प्रकार निषिद्ध नहीं करना चाहिये। राजा ने ग्रामवासियों की प्रार्थना को स्वीकृत कर लिया और ग्रामभोजकों की वे आज्ञायें रद्द कर दीं ।[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामभोजकों के शासन पर राजा का नियन्त्रण पूर्णरूप से विद्यमान था।

बौद्ध काल में न्यायव्यवस्था का क्या स्वरूप था, इस सम्बन्ध में भी कुछ महत्वपूर्ण निर्देश जातक कथाओं में मिलते हैं। उस काल में न्याय इतनी पूर्णता को पहुंचा हुवा था, कि बहुत कम मुकद्मे न्यायालयों के सम्मुख पेश होते थे। राजोवाद जातक में लिखा है कि बनारस के राज्य में न्याययुक्त शासन के

---

1. Fausball–The Jatak vol. i, p. 354
2. Ibid vol. i, p. 483
3. Ibid vol. i, p. 198
4. Ibid vol. ii, p. 135
5. Ibid vol. iv, p. 115
6. Ibid vol. i, p. 354
7. Ibid vol. iv, p. 14

कारण एक भी अभियोग न्यायालय के सम्मुख उपस्थित नहीं होता था।' इसी प्रकार की बात अन्यत्र भी जातकों में लिखी गई है। उस काल में न्याय कितना पूर्ण तथा निष्पक्षपात होता था, इसका एक दृष्टान्त चुल्लवग्ग में मिलता है। श्रावस्ती में एक गृहपति निवास करता था, उसका नाम था सुदत्त। वह अनाथों का बड़ा सहायक था, इसी लिये उसे 'अनाथपिण्डक' भी कहते थे। श्रावस्ती के राजकुमार का नाम था जेत। कुमार जेत के पास एक उद्यान था, जो शहर के न बहुत समीप था, न बहुत दूर। यहां आने जाने की बहुत सुविधा थी और यह एकान्तवास के लिये बहुत उपयुक्त था। अनाथपिण्डक ने महात्मा बुद्ध को श्रावस्ती पधारने के लिये निमन्त्रित किया हुवा था। उसके सम्मुख यह समस्या थी, कि महात्माबुद्ध के ठहरने के लिये किस स्थान पर प्रबन्ध किया जावे। उसने सोचा कुमार जेत का उपवन इस कार्य के लिये बहुत उपयुक्त है। वह कुमार के पास गया और उससे कहा—'कुमार, यह उद्यान मुझे दे दो, मैं इसमें आराम का निर्माण करूंगा।' कुमार जेत ने उत्तर दिया—'गृहपति! यह उद्यान तब तक नहीं बिक सकता, जब तक इस के लिये सौ करोड़ मुद्रा प्रदान न की जावे।'

'मैं इस कीमत पर इस उद्यान को खरीदता हूं।'

'नहीं, गृहपति, यह उद्यान नहीं बिक सकता।'

अनाथपिण्डक सुदत्त का खयाल था कि, जब वह कुमार जेत द्वारा मांगी हुई कीमत को देने के लिये तैयार होगया, तो उद्यान उसका होगया। पर कुमार जेत यह स्वीकृत नहीं करता था। आखिर वे इस बात का फैसला कराने के लिये व्यावहारिक महामात्रों के पास गये। उन्होंने मुकद्दमे को सुन कर यह निर्णय

---

१. 'उपसङ्कमित्वा जेतं कुमारं एतद् अवोच—देहि मे अय्यपुत्त उय्यान आरामं कातुम् ति। अदेय्यो गहपति आरामो अपि कोटिसन्थरेना ति। गहितो अय्यपुत्त आरामो ति। न गहपति गहितो आरामो ति। गहितो न गहितो ति वोहारिके महामत्ते पुच्छिंसु। महामत्ता एवम् आहंसु यतो तया अय्यपुत्त अग्घो कतो गहितो आरामो ति।'

Chull vagga vi, 4, 9

किया—'कुमार ने जो मूल्य निश्चित किया था, वह गृहपति देने को तैयार है, अतः उद्यान बिक गया है।

इस मुकदमे में यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें एक राजकुमार और एक सामान्य गृहपति वादी और प्रतिवादी थे। पर न्यायाधीशों ने राजकुमार का पक्ष न लेकर निष्पक्ष रूप से निर्णय करने का प्रयत्न किया और गृहपति सुदत्त के पक्ष में फैसला दिया। इससे स्पष्ट है कि बौद्धकाल के न्यायाधीश अपना कार्य करते हुवे व्यक्तियों का खयाल नहीं करते थे। निष्पक्ष न्याय ही उनकी दृष्टि में सब से महत्त्वपूर्ण विचार होता था।

इस काल में यद्यपि न्याय निष्पक्ष तथा उचित होता था, पर दण्ड बड़े भयंकर दिये जाते थे। दण्ड देते हुवे शारीरिक कष्ट तथा अंग भंग को अनुचित नहीं समझा जाता था। एक डाकू को यह सजा दी गई कि उसके हाथ, पैर, नाक, कान काट कर एक नौका में डाल दिया जाय और नौका को गंगा में बहा दिया जाय।[1] एक डाकू को दी गई सजा के अनुसार काँटेदार कोड़ों से बुरी तरह पीटा गया, कुल मिलाकर एक हजार कोड़े मारे गये।[2] हाथी द्वारा कुचलवा कर मारने का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर आता है।[3]

---

1. Fausball-The Jatak vol. ii, p. 117
2. Ibid vol. vi, p. 4
3. Ibid vol, i, p, 200

दूसरा अध्याय

आर्थिक दशा

वर्तमान समय में हमें जो बौद्ध साहित्य उपलब्ध होता है, वह प्रायः सभी धार्मिक है। उसमें महात्मा बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा शिक्षाओं का ही विशेष रूप से वर्णन है। उस का प्रयोजन अपने समय की स्थिति पर प्रकाश डालना नहीं है। पर प्रसङ्गवश उस में कहीं कहीं ऐसे निर्देश उपलब्ध हो जाते हैं, जिन से कि उस समय की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक दशा पर उत्तम प्रकाश पड़ता है। आर्थिक स्थिति का अनुशीलन करने के लिये जातक कथाओं का विशेष महत्व है। 'जातक' नाम से जो बहुत सी कथायें बौद्धों के धार्मिक साहित्य में विद्यमान हैं, उन में महात्मा बुद्ध के पूर्व जीवनों का वृत्तान्त है। यह वृत्तान्त अत्यन्त मनोरञ्जक कथाओं के रूप में दिया गया है। जब इन कथाओं का निर्माण हुआ था, उस समय में भारत की आर्थिक व सामाजिक स्थिति क्या थी—इसका विवेचन इन से बहुत अच्छी प्रकार किया जा सकता है। हम इस अध्याय में बौद्धकाल की आर्थिक दशा को प्रदर्शित करते हुवे मुख्यतया इन जातक ग्रन्थों का ही आश्रय लेंगे। अन्यत्र, बौद्ध साहित्य में भी आर्थिक दशा के जो निर्देश मिलते हैं उनका भी यथास्थान उल्लेख किया जायगा।

व्यवसाय

बौद्धकालीन भारत में कौन कौन से मुख्य व्यवसाय प्रचलित थे इस का परिचय दीर्घ निकाय के एक संदर्भ से बहुत अच्छी तरह मिलता है। जब महात्मा बुद्ध धर्मोपदेश करते हुवे राजगृह पहुंचे, तो मगधसम्राट् अजातशत्रु ने उन से प्रश्न किया—

"हे भगवन्! ये जो भिन्न भिन्न व्यवसाय हैं, जैसे हस्ति-आरोहण, अश्वारोहण, रथिक, धनुर्धर, चेलक (युद्ध-ध्वज धारण), चलक (व्यूह-रचन), पिंडदायिक

(पिंड काटने वाले), उग्र राजपुत्र (वीर राजपुत्र), महानाग (हाथी से युद्ध करने वाले), शूर, चर्म योधी (ढाल से युद्ध करने वाले); दासपुत्र, आलारिक (बावर्ची), कल्पक (हज्जाम), नहापक (स्नान कराने वाले), सूद (पाचक), मालाकार, रजक, रंगरेज, नलकार (टोकरे बनाने वाले), कुम्भकार (कुम्हार), गणक, मुद्रिक (गिनने वाले), और जो दूसरे इसी प्रकार के भिन्न भिन्न शिल्प (व्यवसाय) हैं, उनसे लोग इसी शरीर में प्रत्यक्ष जीविका करते हैं, उस से अपने को सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं । पुत्र स्त्री को सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं । मित्र आमात्यों को सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं । ऊपर लेजाने वाला, स्वर्ग को लेजाने वाला, सुख विपाक वाला, स्वर्गमार्गीय, श्रमण ब्राह्मणों के लिये दान स्थापित करते हैं । क्या भगवन् इसी प्रकार श्रामण्य (भिक्षुपन) का फल भी इसी जन्म में प्रत्यक्ष बतलाया जासकता है ।[1]

सम्राट् अजातशत्रु ने इस प्रश्न में बहुत से व्यवसायियों का नाम लिया है । एक राजा के लिये यह प्रश्न कितना स्वाभाविक है । उसके चारों तरफ जो सांसारिक जन निवास करते हैं, वे अपने अपने कार्यों का इसी जन्म में फल प्राप्त करते हैं, वे स्वयं सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुवे दान द्वारा परलोक के लिये भी प्रयत्न करते हैं । हमारे लिये इस सन्दर्भ में आये हुवे व्यवसाय विशेष रूप से उपयोगी हैं । इसमें निम्नलिखित व्यवसायों का नाम आया है—

(१) हस्तिसेना के हाथी पर सवारी करने वाले योद्धा लोग

(२) घुड़सवार लोग

(३) रथ पर चढ़कर लड़ने वाले रथारोही लोग

(४) धनुर्धर योद्धा

(५) युद्ध की ध्वजा का धारण करने वाले 'चेलक' लोग

(६) व्यूह रचना में प्रवीण 'चलक' लोग

(७) पिंड काटने वाले पिंडदायिक लोग

(८) वीर योद्धा 'उग्र राजपुत्र' लोग

---

१. दीर्घनिकाय—सामञ्ञफल सुत्त

(९) हाथी से युद्ध करने में प्रवीण 'महानाग' लोग

(१०) सामान्य शूरवीर सैनिक

(११) ढाल से लड़ने वाले 'चर्मयोधी लोग

ये ग्यारह तो सैन्य व युद्ध सम्बन्धी पेशे करने वाले लोगों के इनके अतिरिक्त जिन अन्य व्यवसायियों का नाम अजातशत्रु ने दिया है, वे निम्नलिखित हैं—

(१२) दासपुत्र—सामान्य दास लोग

(१३) आलारिक—बावर्ची

(१४) कल्पक—हजाम, नाई

(१५) नहापक—स्नान कराने वाले

(१६) सूद—पाचक, हलवाई

(१७) मालाकार—माला बेचने वाले

(१८) रजक—कपड़े धोने वाले धोबी

(१९) रंगरेज

(२०) नलकार—टोकरे बनाने वाले

(२१) कुम्भकार—कुम्हार

(२२) गणक—हिसाब किताब रखने वाले

(२३) मुद्रिक— गिनने वाले

ध्यान में रखना चाहिये कि अजातशत्रु द्वारा दी हुई व्यवसायों की यह सूचि पूर्ण नहीं है । इस में स्वाभाविकरूप से उन व्यवसायों का परिगणन है, जो कि किसी राजपुरुष के विचार में एक दम आ सकते हैं । इनके अतिरिक्त अन्य व्यवसाय, जिनका जिकर अन्यत्र बौद्ध साहित्य में आता है, निम्नलिखित हैं—[1]

---

1. Rhys Davids – Buddhist India तथा Cambridge History of India (vol. I) में Economic conditions in Buddhist India विषयक अध्याय.

(१) वर्धकि या बढ़ई—बौद्ध साहित्य में वर्धकि व कम्मार शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थों में हुआ है। इस से केवल सामान्य बढ़ई का ही ग्रहण नहीं होता, अपितु जहाज बनाने वाले, गाड़ी बनाने वाले, भवन निर्माण करने वाले आदि विविध प्रकार के मिस्त्रियों का भी ग्रहण होता है। वर्धकि के अतिरिक्त विविध प्रकार के अन्य मिस्त्रियों के लिये थपति, तच्छक, भमकार, आदि शब्द भी जातक ग्रन्थों में आते हैं। वर्धकि लोगों के बड़े बड़े गांवों का भी वर्णन आता है।

(२) धातु का काम करने वाले—सोना, चांदी लोहा आदि विविध धातुओं की विविध वस्तुएं बनाने वाले कारीगरों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में आता है। लोहे के अनेक प्रकार के औजार बनाये जाते थे— युद्ध के विविध हथियार, हलके फलके, कुल्हाड़े, आरे, चक्कू, फावड़े आदि विविध उपकरण जातकों में उल्लिखित हैं। इसी प्रकार सोना चांदी के विविध कीमती आभूषणों का भी वर्णन मिलता है। सूचि जातक में सुइयां बनाने का जिक्र है। कुस जातक में एक शिल्पी का वर्णन है, जो सोने की मूर्तियां बनाता था।

(३) पत्थर का काम करने वाले—ये लोग पत्थरों को काट कर उन की शिलायें, स्तम्भ, मूर्ति आदि बनाते थे। कारीगरी करने का काम बौद्धकाल में बहुत उन्नति कर चुका था। पत्थरों पर तरह तरह से चित्रकारी करना, उन्हें खोद कर उन पर बेल बूटे व चित्र बनाना उस समय एक महत्वपूर्ण शिल्प माना जाता था। इसी प्रकार पत्थर के प्याले, बर्तन आदि भी बनाये जाते थे।

(४) जुलाहे—बौद्धकाल में कपास, ऊन, रेशम और रेशेदार पौदों का वस्त्र बनाने के लिये उपयोग किया जाता था। मज्झिम निकाय में विविध प्रकार के वस्त्रों के निम्नलिखित नाम दिये गये है—गोनक, चित्तिक, पटिक, पटलिक, तुलिक, विकटिक, उड्डुलोमि, एकन्तलोमि, कोसेय्य और कुट्टकम्। इन विविध शब्दों से किन वस्त्रों का ग्रहण होता था, यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है, पर इस से यह सहज में अनुमान किया जा सकता है कि उस समय वस्त्रव्यवसाय पर्याप्त उन्नत था। थेरीगाथा से ज्ञात होता है कि रेशम और महीन मलमल के लिये बनारस उन दिनों में भी बहुत प्रसिद्ध था। जातक ग्रन्थों में बनारस के समीप में

कपास की प्रभूत मात्रा में उत्पत्ति और वहां के सूती वस्त्रों का उल्लेख है। इसी प्रकार महावग्ग से ज्ञात होता है कि शिविदेश के सूती कपड़े भी बहुत प्रसिद्ध थे।

(५) चमड़े का काम करने वाले—ये लोग चमड़े को साफ कर उस के अनेक प्रकार के जूते, चप्पल तथा अन्य वस्तुएं बनाते थे।

(६) कुम्हार—ये लोग अनेक प्रकार की मिट्टियों के भांति भांति के बर्तन बनाते थे। बौद्धकाल के अनेक बरतनों के अवशेष वर्तमान समय में उपलब्ध भी हुवे हैं।

(७) हाथी दांत का काम करने वाले—आधुनिक समय में भी भारतवर्ष हाथी दांत की कारीगरी के काम के लिये प्रसिद्ध है। प्राचीनकाल में हाथी दांत को रत्नों में गिना जाता था और इस से अनेक प्रकार की वस्तुवें बनाई जाती थीं, उन पर बहुत सुन्दर चित्रकारी भी की जाती थी।

(८) रंगरेज—कपड़ों को रंगने का काम करते थे।

(९) जौहरी—कीमती धातुओं तथा रत्नों से विविध प्रकार के आभूषण बनाते थे। बौद्धकाल के कुछ आभूषण वर्तमान समय में उपलब्ध हुवे हैं।

(१०) मछियारे— नदियों में मछली पकड़ने का काम करते थे।

(११) बूचड़— बूचड़खानों तथा मांस की दुकानों का अनेक स्थानों पर बौद्धसाहित्य में उल्लेख मिलता है।

(१२) शिकारी—बौद्ध काल में शिकारी दो प्रकार के होते थे। एक वे लोग जो जंगलों में रहते थे, और वहां जीवजन्तुओं का शिकार कर तथा जंगल की कीमती वस्तुओं को एकत्रित कर बाजार में बेचते थे। दूसरे शिकारी वे होते थे, जो नगरों में बसने वाले कुलीन लोग होते थे, परन्तु जिन्होंने शिकार को एक पेशे के रूप में स्वीकृत किया हुवा था।

(१३) हलवाई और रसोइये

(१४) नाई तथा प्रसाधक

(१५) मालाकार और पुष्प विक्रेता

(१६) मल्लाह तथा जहाज चलाने वाले-बौद्ध साहित्य में नदी, समुद्र तथा महासमुद्र में चलने वाले जहाजों तथा उनके विविध कर्मचारियों का उल्लेख आता है। यह व्यवसाय उस काल में बहुत उन्नत था।

(१७) रस्सी तथा टोकरे बनाने वाले।

(१८) चित्रकार

व्यवसायियों के संगठन

बौद्धकाल के व्यवसायी लोग 'श्रेणियों' (Guilds) में संगठित थे, इस बात के अनेक प्रमाण बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। प्राचीन भारत में श्रेणियों की सत्ता के प्रमाणों की कमी नहीं है। 'श्रेणियों' द्वारा बनाये गये कानून प्राचीन भारत में राज्य द्वारा स्वीकृत किये जाते थे।[1] श्रेणियों के साथ सम्बन्ध रखने वाले मुकदमों का फैसला उन्हीं के अपने कानूनों के अनुसार होता था। उन्हें अपने मामलों को स्वयं फैसला करने का भी अधिकार था। श्रेणियों के न्यायालय राज्य द्वारा स्वीकृत थे, यद्यपि उनके फैसलों के विरुद्ध अपील की जासकती थी। बौद्ध साहित्य में व्यवसायी लोग 'श्रेणियों' में संगठित थे, इसके प्रमाणों का निर्देश करना यहां उपयोगी होगा। निग्रोध जातक में एक भाण्डागारिक का वर्णन है, जिसे सब 'श्रेणियों' के आदर के योग्य बताया गया है।[2] उरग जातक में 'श्रेणी प्रमुख' और दो राजकीय अमात्यों के झगड़ों का उल्लेख है।[3] इससे सूचित होता है कि 'श्रेणी' के मुखिया को 'प्रमुख' कहते थे। अन्य स्थानों पर 'श्रेणी' के मुखिया को 'जेट्ठक' शब्द से कहा गया है। डा० फिक ने व्यवसायियों के संगठन पर बड़े विस्तार से विचार किया है। वे लिखते हैं, कि तीन कारणों

---

१. जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥

(मनुस्मृति ८। ४१)

2. Cowell-Jatak, vol. iv, p. 22

3. Ibid vol. ii, p. 9

से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि बौद्ध काल में भी व्यवसायियों के संगठन बन चुके थे।[1] हम उन कारणों को यहां उपस्थित करते हैं।

(१) बौद्ध काल में विविध व्यवसाय वंशक्रमानुगत हो चुके थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र उसी व्यवसाय को करता था। अपनी कुमारावस्था से ही लोग अपने क्रमानुगत व्यवसाय को सीखना प्रारम्भ कर देते थे, ज्यों ज्यों समय गुजरता जाता था, अपने पिता तथा अन्य गुरुजन की देख रेख में उस व्यवसाय में अधिक अधिक प्रवीणता प्राप्त करते जाते थे। अपने व्यवसाय की वारीकियों से उनका अच्छा परिचय हो जाता था। इसी लिये जब पिता की मृत्यु होती थी, तो उसकी सन्तान उसके व्यवसाय को बड़ी सुगमता से सम्भाल लेती थीं, उन्हें किसी प्रकार की दिक्कत अनुभव न होती थी। बौद्ध साहित्य में कहीं भी ऐसा निर्देश नहीं मिलता, जिससे यह सूचित होता हो, कि किसी व्यक्ति ने अपने वंशक्रमानुगत व्यवसाय को छोड़ कर किसी अन्य व्यवसाय को अपनाया हो। इस के विपरीत इस बात के प्रमाणों की कमी नहीं है कि लोग अपने वंशक्रमानुगत व्यवसाय का ही अनुसरण करते थे।

(२) बौद्ध काल के किसी व्यवसाय का अनुसरण करने वाले लोग एक निश्चित स्थान पर बस कर अपने व्यवसाय का अनुसरण करने की प्रवृत्ति रखते थे। नगरों में भिन्न भिन्न गलियों में भिन्न भिन्न व्यवसायी बसते थे। उदाहरण के लिये दन्तकारों (हाथी दांत का काम करने वालों) की अपनी गली होती थी, जिस से दन्तकार वीथी कहते थे।[2] इसी प्रकार कुम्हारों, लुहारों, आदि की भी अपनी अपनी पृथक् वीथियां होती थीं। नगरों के अन्दर की गलियों के अतिरिक्त विविध व्यवसायी नगरों के बाहर उपनगरों में भी निवास करते थे। कुलीनचित्त जातक में लिखा है कि बनारस के समीप ही एक वड्ढकि गाम था, जिस में ५०० वर्धकि परिवार निवास करते थे।[3] इसी प्रकार एक अन्य महावड्ढकि

१ Fick's Social Organisation translated by S. K. Maitra' Chapter x.

२. Cowell–Jatak vol. i, p. 176

३. Ibid vol. ii, p. 18

ग्राम का उल्लेख है, जिस में एक हजार वर्धकि परिवारों व कुलों का निवास था। इसी प्रकार बनारस के ही समीप एक अन्य ग्राम या उपनगर का उल्लेख है, जिस में केवल कुम्हारों के ही कुल रहते थे। केवल बड़े नगरों के समीप ही नहीं, अपितु देहात में भी इस प्रकार के ग्राम विद्यमान थे, जिन में किसी एक व्यवसाय का ही अनुसरण करने वाले लोग बसते थे। सूचि जातक में कुम्हारों के दो गांवों का वर्णन है, जिन में से एक में एक हजार कुम्हार परिवारों का निवास था।[१] इसी प्रकार के अन्य भी अनेक निर्देश जातक कथाओं से संगृहीत किये जा सकते हैं।

(३) व्यवसायियों की श्रेणियों के मुखियाओं का, जिन्हें 'प्रमुख' या (जेट्ठक) कहते थे, अनेक स्थानों पर उल्लेख आता है। इन जेट्ठकों के उल्लेख से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि व्यवसायियों के संगठन बौद्ध काल में विद्यमान थे। जातक कथाओं में कम्मार जेट्ठक, मालाकार जेट्ठक आदि शब्दों की सत्ता इस बात को भली भांति स्पष्ट कर देती है। जेट्ठक के आधीन संगठित श्रेणियों में अधिक से अधिक कितने व्यवसायी सम्मिलित हो सकते थे इस सम्बन्ध में भी एक निर्देश मिलता है। समुद्द वणिजजातक में लिखा है, कि एक गांव में एक हजार वड्ढकि परिवार निवास करते थे, उन में पांच पांच सौ परिवारों का एक एक जेट्ठक था। इस प्रकार इस गांव में दो वड्ढकि जेट्ठक विद्यमान थे। इन जेट्ठकों की समाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजदरबार में भी इन्हें सम्मान प्राप्त होता था। सूचिजातक में लिखा है कि एक सौ कम्मार कुलों का जेट्ठक राज दरबार में बड़ा सम्मानित था। वह बहुत समृद्ध तथा ऐश्वर्यशाली था।[२] एक अन्य स्थान पर जातकों में आया है कि एक राजा ने कम्मार जेट्ठक को अपने पास बुलाया और उसे स्वर्ण की एक स्त्रीप्रतिमा बनाने के लिये नियुक्त किया।

इन बातों से डा० फिक ने यह परिणाम निकाला है कि बौद्धकाल के व्यवसायी श्रेणियों में प्रायः उसी ढंग से संगठित थे, जैसे कि मध्यकालीन यूरोप

---

१. Cowell–Jatak vol. iii, p. 178.

२. Ibid vol. iii, p. 178.

के व्यवसायी 'गिल्ड' में संगठित होते थे। यदि हम प्राचीन भारतीय साहित्य का अनुशीलन करें, तो व्यवसायियों के संगठन (श्रेणियों) की सत्ता में कोई सन्देह नहीं रहा जाता। प्रो० रमेशचन्द्रजी मजूमदार ने इस विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया है और सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रेणियों के सम्बन्ध में जो निर्देश मिलते हैं, उन्हें एकत्रित कर इन के स्वरूप को भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है।[1] बौद्ध साहित्य में श्रेणियों के स्वरूप पर विस्तार से कुछ नहीं लिखा गया, पर जो थोड़े बहुत निर्देश उस में मिलते हैं, उन से इन की सत्ता के सम्बन्ध में कोई भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

नगर और ग्राम

बौद्ध कालीन भारत में नागरिक जीवन का समुचित विकास हो चुका था। यद्यपि जनता का अधिक भाग ग्रामों में निवास करता था, तथापि अनेक छोटे बड़े नगर इस काल में विकसित हो चुके थे। बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से अनेक नगरों का परिचय मिलता है। हम यहां पर इनका संक्षिप्त रूप से उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं—

(१) अयोध्या—यह कोशलदेश में सरयू नदी के तट पर स्थित था। प्राचीन समय में इसका महत्व बहुत अधिक था। रामायण के समय में यह कोशल की राजधानी था। पर बौद्धकाल में इसकी महत्ता कम हो चुकी थी। इसका स्थान श्रावस्ती ने ले लिया था, जो अब कोशल देश की राजधानी था। सरयू के तट पर स्थित प्रसिद्ध अयोध्या के अतिरिक्त दो अन्य अयोध्याओं का निर्देश भी बौद्ध ग्रन्थों में आता है। एक गंगा के तट पर और दूसरा पश्चिमीय भारत में। एक नाम के अनेक नगरों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(२) वाराणसी या बनारस—यह गंगा नदी के तट पर स्थित था। बौद्धकाल में यह बहुत ही उन्नत तथा समृद्ध नगर था। मगध और कोशल के साम्राज्यवाद से पूर्व महाजनपद काल में काशी भी एक स्वतन्त्र राज्य था। उस

1. R. C. Majumdar—Corporate Life in Ancient India, Ch. I,

समय में इसकी राजधानी वाराणसी का महत्व बहुत अधिक था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार इस नगर का विस्तार ८५ वर्ग मीलों में लिखा गया है। यह कोई असम्भव बात नहीं है। यदि उपपुरों सहित वाराणसी का विस्तार ८५ वर्ग मीलों में हो, तो आश्चर्य नहीं। बौद्धकाल में वाराणसी न केवल विद्या का महत्वपूर्ण केन्द्र था, पर साथ ही व्यापारिक दृष्टि से भी बहुत उन्नत था। वाराणसी के व्यापारियों का अनेक स्थानों पर उल्लेख आता है।

(३) चम्पा—यह अंग देश की राजधानी थी और चम्पा नदी के तट पर स्थित थी। भागलपुर से २४ मील पूर्व यह नगरी विद्यमान थी, वर्तमान समय में यह नष्ट हो चुकी है और इसके भग्नावशेषों पर कुछ ऐसे ग्राम विद्यमान हैं, जिनके नाम चम्पा का स्मरण दिलाते हैं।

(४) काम्पिल्य—यह उत्तर पाञ्चाल राज्य की राजधानी थी।

(५) कोशाम्बी—यह वत्स व वंश राज्य की राजधानी थी। यह जमुना के तट पर बनारस से २३० मील की दूरी पर स्थित थी।

(६) मधुरा या मथुरा— यह शूरसेन देश की राजधानी थी और जमुना के तट पर स्थित थी। जमुना के तट पर विद्यमान मधुरा के अतिरिक्त दो अन्य मधुराएं भी उस काल में विद्यमान थीं, एक टिनेवली के समीप, जिसे आजकल 'मदुरा' कहते हैं और दूसरी अत्यन्त उत्तर में। उत्तर में विद्यमान मधुरा का उल्लेख जातक कथाओं में आता है।

(७) मिथिला यह विदेह की राजधानी थी। बौद्ध साहित्य में इसका विस्तार पचास मीलों में लिखा गया है।

(८) राजगृह— यह बौद्धकाल में मगध की राजधानी था। महात्मा बुद्ध के समय में यह अत्यन्त समृद्ध और उन्नत नगर था। साम्राज्यवाद के संघर्ष में मगध को असाधारण सफलता प्राप्त हो रही थी, अतः यह बिलकुल स्वाभाविक था कि उसकी राजधानी राजगृह भी विशेपरूप से उन्नति को प्राप्त हो। शैशुनाग वंश के शासनकाल में ही राजगृह के स्थान पर पाटलिपुत्र को मगध की राजधानी बना लिया गया था। उसके बाद से राजगृह का पतन प्रारम्भ होगया और

यह एक सामान्य नगर ही रह गया। राजगृह के प्राचीन दुर्ग की दीवारों के अवशेष वर्तमान समय में भी उपलब्ध होते हैं। इनकी परिधि तीन मील के लगभग है।

(९) रोरुक या रोरुव—यह सोवीर देश की राजधानी था। यह भारत के पश्चिमीय समुद्र तट पर विद्यमान था और बौद्धकाल में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बन्दरगाह माना जाता था। भारत के सभी प्रधान नगरों से काफले व्यापार के लिये यहां आते थे और भारत का माल जहाजों द्वारा यहां से ही विदेशों में पहुंचाया जाता था।

(१०) सागल या साकल— यह मद्रदेश की राजधानी था। अनेक विद्वान इसे आधुनिक सियालकोट के साथ मिलाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बौद्धकाल में यह उत्तरपश्चिमीय भारत का एक अत्यन्त प्रसिद्ध नगर था।

(११) साकेत—यह कोशल राज्य में स्थित था और कुछ समय के लिये उसकी राजधानी भी रहा था। बौद्ध सुत्तों में इसे भारत के सब से बड़े नगरों में से एक माना गया है। यह श्रावस्ती से ४५ मील के लगभग दूर था। अनेक विद्वानों ने इसे संयुक्तप्रान्त के उन्नाव जिले में सई नदी के तट पर स्थित सुजानकोट के साथ मिलाया है।

(१२) श्रावस्ती या सावत्थी—यह उत्तर कोशल राज्य की राजधानी थी। इसे भी बौद्धकाल के सब से बड़े छः राज्यों में गिना जाता था। बौद्धकाल में कोशल का राज्य अत्यन्त उन्नतिशाली था, अतः श्रावस्ती भी समृद्ध और उन्नत था।

(१३) उज्जैनी—यह अवन्ती की राजधानी थी। बौद्धकाल में इसका भी बहुत महत्त्व था।

(१४) माहिष्मती—बौद्धकाल में कुछ समय के लिये माहिष्मती भी अवन्ती की राजधानी रही थी।

(१५) वैशाली—यह प्रसिद्ध वज्जिराज्य संघ की राजधानी थी।

(१६) पाटलिपुत्र—इस की स्थापना शैशुनागवंश के सम्राट् उदायी के समय में हुई थी और आगे चल कर यह मगध की राजधानी बन गया था।

(१७) प्रतिष्ठान या पैठन—यह दक्षिण का एक प्रसिद्ध नगर था।

इन प्रसिद्ध नगरों के अतिरिक्त अन्य भी अनेक पत्तनों, निगमों व ग्रामों के नाम बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। इनमें उक्कट्ठ, अट्ठक, अस्सपुर, कीटगिरि, हलिद्दवंश, भारुकच्छ और सुप्पारक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जैन ग्रन्थों में अनेक नगरों के नाम आये हैं। प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ उवासगदसाओ में निम्नलिखित नगरों के नाम उपलब्ध होते हैं—वनिअग्राम, चम्पा, बाराणसी, पोलसपुर, राजगिह, सेतव्य, काम्पिल्लपुर, सावट्ठी, वैशाली, मिथिला, अलवी, कोशाम्बी, उज्जेनी, तक्खशिला, सगुल, सुंसुमार, कपिलवस्तु, साकेत, इन्दपत्त, उक्कट्ठ, पाटलिपुत्तक और कुसीनारा।

बौद्ध और जैन साहित्य के आधार पर हमने जिन नगरों के नाम यहां लिखे हैं, वे उस समय में बहुत प्रसिद्ध थे। पर उनके अतिरिक्त अन्य नगरों की सत्ता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इन बौद्ध और जैन ग्रन्थों का उद्देश्य धार्मिक है। उनमें प्रसंग वश ही उस समय के कुछ नगरों के नाम भी आगये हैं।

बौद्धकाल में नगरों का निर्माण किस ढंग से होता था और उनके विविध मकान किस प्रकार के बने होते थे, इस सम्बन्ध में बौद्ध साहित्य से बहुत कम निर्देश प्राप्त होते हैं। श्रीयुत रीज डेविड्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बुद्धिस्ट इन्डिया' में बौद्ध साहित्य के आधार पर इस विषय पर जो प्रकाश डाला है, उसकी कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को यहां उल्लिखित करना अप्रासंगिक न होगा।

उस समय के नगर प्रायः दुर्गरूप से बनाये जाते थे। नगरों के चारों ओर दीवार होती थी। दुर्ग में राजप्रासाद, राज्य सम्बन्धी इमारतें, बाजार तथा प्रमुख मनुष्यों के निवासस्थान रहते थे। दुर्ग से बाहर बहुत से उपनगर होते थे, जिनमें सर्वसाधारण जनता निवास करती थी।

मकान बनाने के लिये पत्थर, ईंट और लकड़ी—तीनों का प्रयोग होता था। तीनों प्रकार की सामग्री से बनाये गये मकानों का बौद्ध साहित्य में उल्लेख

है। मकान बनाने वाले राजों की कला इस काल में पर्याप्त उन्नति कर चुकी थी। विनय पिटक में उस मसाले का जिक्र आता है, जिससे बौद्धकाल के मकानों की दीवारों पर 'प्लास्तर' किया जाता था। पानी तथा अन्य गन्दकी को निकालने के लिये किस प्रकार का प्रबन्ध किया जावे इसका उल्लेख भी इन ग्रन्थों में आता है। जातक कथाओं में अनेक स्थानों पर सात मञ्जिलों वाले मकानों (सत्तभूमक पासाद) का वर्णन आता है। सात मञ्जिल वाले मकानों का बनना यह सूचित करता है कि उस समय भवननिर्माणकला पर्याप्त उन्नत हो चुकी थी। बौद्ध काल में स्नानशालाओं का विशेष महत्त्व था। अनेक प्रकार की स्नानशालाओं का वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में आता है।[1] पर सर्वसाधारण जनता इन 'सत्तभूमक पासादों' या स्नान शालाओं का उपभोग नहीं कर सकती थी। वह एक मञ्जिले सामान्य मकानों में रह कर ही जीवन व्यतीत करती थी। बौद्ध काल की (मौर्य काल से पूर्व की) इमारतों के अवशेष वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हुवे हैं, अतः उन के सम्बन्ध में हम साहित्यिक वर्णनों से ही कल्पना कर सकते हैं।

बौद्धकाल में ग्राम दो प्रकार के होते थे—सामान्य ग्राम और व्यवसायिक ग्राम, जिन में किसी एक ही व्यवसाय को करने वाले कारीगर लोग बसे होते थे। इन के अतिरिक्त इस प्रकार के भी ग्राम थे, जिन में किसी एक ही वर्ण व जाति के लोग बसे होते थे। बौद्ध ग्रन्थों में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों व शूद्रों के ग्रामों का वर्णन आता है। इसी प्रकार किसी एक प्रकार के व्यवसायियों यथा बढ़ई, कुम्हार आदि से ही बसे हुवे ग्रामों का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर है। अलीनचित्त जातक में एक ग्राम का वर्णन है, जिस में केवल वर्धकि लोग बसते थे और उनके घरों की संख्या ५०० थी।[2] इसी प्रकार कुम्हारों, मछियारों, शिकारियों, चाण्डालों, डाकुओं आदि के ग्रामों का भी विविध स्थानों पर उल्लेख आता है।

---

1. Cowell–Jatak vol. ii, p. 14

2. Rhys Davids–Buddhist India p. 63-86.

सामान्य ग्रामों में सब प्रकार के लोग बसते थे, परं अधिक संख्या किसानों की होती थी। किसान लोग खेती करते थे और अन्य लोग अपना अपना पेशा करते थे, विविध पेशे वाले लोगों के अपने अपने संगठन होते थे, जिन्हें 'श्रेणि' कहा जाता था।

बौद्ध कालीन ग्रामों के भी स्वरूप को श्रीयुत रीज़डेविड्स ने प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं कि ग्राम के मध्य में ग्राम निवासियों के घर होते थे, जिन के चारों ओर की भूमि कृषि के लिये प्रयोग में आती थी। ग्राम के निवासी अपनी भूमि पर स्वयं खेती करते थे, इस के लिये दास आदि का प्रयोग नहीं किया जाता था। कृषि के काम में आने वाली भूमि के अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम में चरागाह होते थे। इन में सब के पशु स्वच्छन्दता पूर्वक चर सकते थे। चरागाह भूमि पर सम्पूर्ण ग्राम का सम्मिलित अधिकार माना जाता था। गांव भर के पशुओं को ग्वाले लोग चराने के लिये इस चरागाह में ले जाते थे। ये ग्वाले सम्पूर्ण ग्राम की ओर से नियुक्त होते थे। ग्वाले के लिये निम्न लिखित गुणों की आवश्यकता बौद्ध ग्रन्थों में बताई गई है—उस में प्रत्येक पशुओं को पहिचानने की क्षमता होनी चाहिये। किस पशु पर कौन से चिन्ह हैं, इसका भी उसे परिज्ञान होना चाहिये। पशुओं की खाल पर मक्खियां अण्डे न दे सकें इसका उसे ध्यान रखना चाहिये। पशुओं की बीमारियों तथा उन के घावों का इलाज भी उसे आना चाहिये। पशुओं को मक्खी, मच्छर, आदि से बचाने के लिये धुवें आदि का प्रयोग करना चाहिये, उसे यह भी ज्ञात होना चाहिये कि नदी को किस स्थान से पार किया जा सकता है, पीने का पानी कहां मिल सकता है और कौन से चरागाह उत्तम हैं। निःस्सन्देह, इस प्रकार के कुशल ग्वालों के संरक्षण में बौद्ध कालीन ग्रामों के पशु अच्छी हालत में रहते होंगे।

चरागाह के अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम की सीमा पर जंगल होते थे। जंगलों की उस समय में कमी न थी। इन जंगलों से ग्राम के निवासी लकड़ी, बांस, फूंस, काना आदि पदार्थों को बिना किसी बाधा के, स्वच्छन्दता के साथ ले सकते थे। इन पर किसी प्रकार का कर नहीं होता था।[1]

1. Rhys Davids–Buddhist India p. 42-51.

ग्राम के निवासियों में सामूहिक जीवन की कमी नहीं थी। वे अनेक प्रकार के कार्यों को सम्मिलित रूप से करते थे। कुआं खोदना, सड़कें बनाना, बांध बांधना आदि अनेक कार्य वे सम्मिलित रूप से ही करते थे। कुलावक जातक में एक ग्राम का उल्लेख है, जिसमें तीस परिवार निवास करते थे। इस ग्राम के निवासी अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले सामूहिक कार्यों का सम्पादन स्वयं करते थे। इसके निवासियों द्वारा सम्मिलित रूप से बनाये जाने वाले कूप, बांध तथा मन्दिर का उल्लेख भी इस जातक में मिलता है।[१] इसी प्रकार के वर्णन लोशक जातक[२], तक्क जातक[३] और महा-उक्कग जातक[४] में भी मिलते हैं।

अनेक ग्रामों के चारों ओर भी मट्टी की दीवार व कांटों का घेरा आदि रहता था। इसी लिये अनेक स्थानों पर जातकों में ग्राम द्वारों का उल्लेख किया गया है। खेतों की रक्षा करने के लिये रखवाले नियुक्त किये जाते थे, जो सम्पूर्ण ग्राम की तरफ से नियत होते थे। खेतों के आकार प्रायः बड़े नहीं होते थे। एक परिवार जितनी जमीन को सुगमता के साथ स्वयं जोत सके, उतने ही खेत प्रायः होते थे। पर अनेक बड़े खेतों का वर्णन भी बौद्ध साहित्य में आता है। जातककथाओं में एक इस प्रकार के खेत का उल्लेख है, जिसका विस्तार १००० करीष था। एक अन्य स्थान पर ब्राह्मण काशीभारद्वाज का वर्णन है, जिसके पास ५०० हलों की खेती थी। इन खेतों में भृति पर काम करने वाले मजदूरों का भी उपयोग होता था।[५]

व्यापार और नौका नयन

बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से उस समय के व्यापार तथा नौका नयन के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण और मनोरञ्जक बातें ज्ञात होती हैं। उस समय

---

१. Cowell-Jatak vol. i, p. 77-84
२. Ibid vol. i, p. 105
३. Ibid vol. i, p. 166
४. Ibid vol. vi, p. 156
५. S.K. Das-Economic History of Ancient India p. 80 81

में भारत के व्यापारी महासमुद्र को पार कर दूर दूर देशों में व्यापार के लिये जाया करते थे। समुद्र को पार करने के लिये जहाज बहुत बड़ी संख्या में बनते थे और उस समय में जहाज बनाने का व्यवसाय अत्यन्त उन्नत दशा में था। समुद्द वणिज जातक में एक जहाज का उल्लेख है, जिस में वर्धकियों के सहस्र परिवार बड़ी सुगमता के साथ बैठ कर सुदूरवर्ती किसी द्वीप में चले गये थे। वर्धकियों के ये एक सहस्र परिवार ऋण के बोझ से बहुत दबे हुवे थे और अपनी दशा से असन्तुष्ट होने के कारण इन्होंने यह निश्चय किया था कि किसी सुदूर प्रदेश में जाकर बस जावें।[1] सचमुच वह जहाज बहुत विशाल होगा, जिस में एक हजार परिवार सुगमता के साथ यात्रा कर सकें। वलाहस्स: जातक में पांच सौ व्यापारियों का उल्लेख है, जो जहाज के टूट जाने के कारण लंका के समुद्रतट पर आ लगे थे और जिन्हें पथभ्रष्ट करने के लिये वहां के निवासियों ने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये थे।[2] सुप्पारक जातक में ७०० व्यापारियों का उल्लेख है, जिन्होंने एक साथ एक जहाज पर समुद्रयात्रा के लिये प्रस्थान किया था।[3] महाजनक जातक में चम्पा से सुवर्ण भूमि को प्रस्थान करने वाले एक जहाज का वर्णन आता है, जिसमें बहुत से व्यापारी अपना माल लाद कर व्यापार के लिये जारहे थे। इस जहाज में सात सार्थवाहों का माल लदा हुआ था और इसने सात दिन में सातसौ योजन की दूरी तय की थी।[4] संख जातक में संख नाम के एक ब्राह्मण की कथा आती है, जो बहुत दान करता था। उसने दान के लिये छः दानशालायें बनाई हुई थीं। इनमें वह प्रतिदिन छः लाख मुद्राओं का दान करता था। एक वार उसके दिल में आया कि धीरे धीरे मेरी सम्पत्ति का भण्डार समाप्त होता जाता है और जब सम्पत्ति समाप्त हो जायगी, तो मैं क्या दान करूंगा ? यह सोच कर उसने एक जहाज द्वारा सुवर्णभूमि (बर्मा का एक प्रान्त)

---

1. Cowell--Jatak vol. iv, p. 100
2. Ibid vol. ii, p. 89-90.
3. Ibid vol. iv, 87-90.
4. Ibid vol. vi, p. 22

मुद्राओं में बिका । दूसरी बार जब वे व्यापारी फिर व्यापार करते हुवे बावेरुदेश पहुंचे, तो जहाज पर अपने साथ एक मोर को ले गये, मोर को देख कर बावेरु के निवासियों को और भी अधिक आश्चर्य हुआ और वह वहां पर एक सहस्र मुद्राओं में बिका ।[1] इस विषय में सब विद्वान सहमत हैं कि बावेरु का अभिप्राय बैबिलोन से है और इस जातक में यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध काल में भारतीय व्यापारी सुदूरवर्ती बैबिलोनिया के राज्य में भी व्यापार के लिये जाया करते थे । बैबिलोन के मार्ग में विद्यमान फारस की खाडी और फारस का समुद्र तट उन के जहाजों द्वारा भलीभांति आलोडित हुवे थे, इस बात में भी किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता ।

भारत से इन देशों तक पहुंचने के लिये अनेक जलमार्ग विद्यमान थे । भारत की नदियां उस समय मार्ग के तौर पर व्यवहृत होती थीं । चम्पा और बनारस उस समय में अच्छे बन्दरगाह माने जाते थे, जहां से जहाज पहले नदी में और फिर समुद्र में जाते थे । कुमार महाजनक ने सुवर्ण भूमि के लिये चलते हुवे चम्पा से प्रस्थान किया था ।[2] इसी प्रकार सीलानिसंस जातक में समुद्र में जहाज के टूट जाने पर जल मार्ग द्वारा यात्रियों को बनारस पहुंचाने का उल्लेख है ।[3] पर सुदूरवर्ती देशों में जाने के लिये चम्पा और बनारस जैसे नदी तटवर्ती नगर विशेष उपयुक्त नहीं हो सकते थे । इसके लिये उस समय में समुद्र तट पर अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह विद्यमान थे । इन बन्दरगाहों के सम्बन्ध में भी कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश बौद्ध साहित्य में मिलते हैं । हम उन्हें यहां निर्दिष्ट करना आवश्यक समझते हैं ।

लोसक जातक में समुद्रतट पर विद्यमान एक बन्दरगाह का वर्णन है, जिसका नाम गम्भीरपत्तन था । यहां पर जहाज किराये पर मिल सकते थे । गम्भीर पत्तन से जहाजों के चलने और उनके महासमुद्र में जाने का वर्णन इस

---

१. Cowell-Jatak vol. iii, p. 83-84

२. Ibid vol. vi, p. 22

३. Ibid vol. ii, p. 78

जातक में उपलब्ध होता है।[1] सुस्सोन्दि जातक में भारुकच्छ नाम के बन्दरगाह का उल्लेख है। भारुकच्छ से जहाज में जाने वाले व्यापारियों का विशदरूप से वर्णन इस जातक में किया गया है।[2] इसी प्रकार सुप्पारक जातक में भी भारुकच्छ पत्तन का उल्लेख है, और वहां यह भी लिखा है कि यह समुद्रतट पर विद्यमान एक बन्दरगाह था।[3] इसी प्रकार अन्यत्र बौद्ध साहित्य में ताम्रलिप्ति, सुप्पारक, रोरुक, कविर पत्तन आदि बन्दरगाहों का भी उल्लेख है।

समुद्र में जहाजों द्वारा होने वाले विदेशी व्यापार के अतिरिक्त बौद्ध-कालीन भारत में आन्तरिक व्यापार की भी कमी न थी। भारत एक बहुत बड़ा देश है। उसके विविध प्रदेशों में पारस्परिक व्यापार अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता था। यह आन्तरिक व्यापार स्थल और जल दोनों द्वारा होता था। भारत में व्यापार के प्रमुख स्थल और मार्ग कौन से थे, इस पर हम आगे चल कर प्रकाश डालेंगे। पर यहां यह बताना आवश्यक है, कि स्थल मार्गों द्वारा होने वाले व्यापार का स्वरूप क्या होता था। यह आन्तरिक व्यापार सार्थों (काफलों) द्वारा होता था। बहुत से व्यापारी परस्पर साथ मिल कर काफलों में व्यापार करते थे। उस समय भारत में जंगलों की अधिकता थी। रास्ते बहुत सुरक्षित नहीं थे। इस कारण किसी व्यापारी के लिये यह सम्भव नहीं होता था कि वह अकेला सुदूरवर्ती प्रदेशों में व्यापार के लिये जा सके। वे बड़े बड़े काफले बना कर एक साथ व्यापार के लिये जाया करते थे। जातक साहित्य में बहुत से काफलों और उन की यात्राओं के वर्णन संगृहीत हैं। अनेक काफलों में तो ५०० से लेकर १००० तक गाड़ियां होती थीं।[4] जातक कथाओं में जिन काफलों (सार्थों) का वर्णन है, वे बैलगाड़ियों द्वारा व्यापार करते थे। सार्थ के नेता को सार्थवाह कहते थे। काफलों की यात्रा निरापद नहीं होती थी। उन्हें लूटने के लिये डाकुओं

---

१. Cowell-Jatak vol. i, p. 110
२. Ibid vol. iii, p. 124
3. Ibid vol, iv, p, 86
4. Ibid vol i, p. 4-5

के विविध दल हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। सत्तिगुम्ब जातक में डाकुओं के एक ग्राम का उल्लेख है, जिस में ५०० डाकू निवास करते थे।[१] सार्थों को इन डाकुओं का सामना करने तथा उन से अपने माल की रक्षा करने की उचित व्यवस्था करनी पड़ती थी। इस के लिये वे अपने साथ शस्त्रयुक्त पहरेदारों को रखते थे। ये पहरेदार व योद्धा सार्थ पर होने वाले हमलों का वीरता के साथ मुकाबला करते थे। सार्थों की रक्षार्थ साथ चलने वाले पहरेदारों का जगह जगह पर जातक कथाओं में वर्णन है।[२] डाकुओं के अतिरिक्त अन्य भी अनेक प्रकार की आपत्तियों का मुकाबला इन सार्थों को करना होता था। अपण्णक जातक में इन विपत्तियों का विशद रूपसे वर्णन है।[३] डाकुओं के अतिरिक्त जंगली जानवर, पानी की कमी, भूत पिशाच आदि की सत्ता और आहार का अभाव—ये सब आपत्तियां थीं, जिनका समुचित प्रबन्ध किये बिना कोई सार्थ सफलता के साथ अपनी यात्रा नहीं कर सकता था।

स्थल मार्ग से व्यापार करने वाले ये सार्थ बड़ी लम्बी लम्बी यात्रायें किया करते थे। गन्धार जातक में एक सार्थ का वर्णन है, जिस ने विदेह से गन्धार तक की यात्रा की थी।[४] इन दोनों नगरों का अन्तर १२०० मील के लगभग है। बनारस उस समय व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। बनारस के साथ बहुत से नगरों और देशों के व्यापार का उल्लेख जातकों में मिलता है। काम्बोज, काम्पिल्य, कपिलवस्तु, कोशल, कुरुक्षेत्र, कुरु, कुशीनारा, कौशाम्बी, मिथिला, मथुरा, पाञ्चाल, सिन्ध, उज्जैन, विदेह आदि के साथ बनारस के व्यापार का वर्णन इस बात को सूचित करता है, कि उस समय में बनारस व्यापार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र था, जहां से सार्थ विविध देशों में व्यापार के लिये

---

१. Cowell–Jatak vol. iv, p 268

२. Ibid vol. iv, p 228-231

३. Ibid vol. i, p. 5

४. Ibid vol. iii, p. 221

जाया करते थे।[१] बनारस से काम्बोज, सिन्ध और उज्जैन बहुत दूर हैं, इतनी दूर व्यापार के लिये जाने वाले सार्थों की सत्ता इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बौद्ध काल में भारत का आन्तरिक व्यापार बहुत उन्नत दशा में था।

स्थल मार्ग के अतिरिक्त आन्तरिक व्यापार के लिये नदियों का भी प्रयोग होता था। उस समय में गंगा नदी जहाजों के आने जाने के लिये प्रयोग में लाई जाती थी। जातक कथाओं में बनारस आने वाले जहाजों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। महाजनक जातक से सूचित होता है, कि बौद्धकाल में गंगा में बहुत से जहाज आते जाते रहते थे। गंगा के अतिरिक्त अन्य भी अनेक नदियां व्यापारिक मार्ग के रूप में प्रयुक्त होती थीं।

बौद्धकाल में स्थलमार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारी किन मार्गों से आया जाया करते थे, इस सम्बन्ध में भी कुछ महत्वपूर्ण निर्देश जातक कथाओं में मिलते हैं। प्रो० रीजडेविड्स ने बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर इन मार्गों को इस प्रकार निश्चित किया है[२]—

(१) उत्तर से दक्षिण पश्चिम को—यह मार्ग सावट्ठी से पतिट्ठान जाता था। इसमें मुख्यतया निम्नलिखित पड़ाव आते थे—पतिट्ठान से चल कर माहिष्मती, उज्जैनी, गोनद्ध, विदिशा, कोशाम्बी और साकेत होते हुवे फिर सावट्ठी पहुंचते थे।

(२) उत्तर से दक्षिण पूर्व को—यह मार्ग सावट्ठी से राजगृह जाता था। यह रास्ता सीधा नहीं था, अपितु सावट्ठी से हिमालय के समीप समीप होता हुवा वैशाली के उत्तर में हिमालय की उपत्यका में पहुंचता था और वहां से दक्षिण की तरफ मुड़ता था। इसका कारण शायद यह था कि हिमालय से निकलने वाली नदियों को ऐसे स्थान से पार किया जा सके, जहां कि उनका विस्तार अधिक न हो। नदियां पहाड़ों के समीप बहुत छोटी होती हैं, वहां वे अधिक

---

१. S.K. Das—Economic History of Ancient India p. 122-123.

२. Rhys Davids—Buddhist India p. 103-104

गहरी भी नहीं होतीं। इस मार्ग से सावट्ठी से चल कर सेतव्य, कपिलवस्तु, कुसीनारा, पावा, हत्थिगाम, भण्डगाम, वेशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा रास्ते में आते थे। यह रास्ता आगे गया की तरफ़ चला जाता था। वहां यह एक अन्य मार्ग से जा कर मिल जाता था, जो कि बनारस से ताम्रलिप्ति (समुद्रतट पर) की तरफ़ जारहा होता था।

(३) पूर्व से पश्चिम को—यह मार्ग भारत की प्रसिद्ध नदी गंगा और यमुना के साथ साथ जाता था। इन नदियों में नौकायें और जहाज भी चलते थे, यह हम पहले लिख चुके हैं। बौद्धकाल में गंगा नदी में सहजाती नामक नगर तक तथा यमुना में कोशाम्बी तक जहाज आया जाया करते थे। इस मार्ग में कोशाम्बी का बहुत महत्त्व था, यहां पर उत्तर से दक्षिण पश्चिम को जाने वाला मार्ग भी मिल जाता था और नौकाओं तथा जहाजों से आने वाला माल यहां उतार दिया जाता था और उसे गाड़ियों पर लाद कर उत्तर या दक्षिण में पहुंचाया जाता था।

इन तीन प्रसिद्ध मार्गों के अतिरिक्त व्यापार के अन्य महत्वपूर्ण मार्ग भी बौद्धकाल में विद्यमान थे, इस में सन्देह नहीं। जातकों में विदेह से गान्धार, मगध से सौवीर और भारुकच्छ से समुद्रतट के साथ साथ सुवर्णभूमि जाने वाले व्यापारियों का वर्णन है। विदेह से गान्धार तथा मगध से सौवीर जाने वाले व्यापारी किन मार्गों का अनुसरण करते थे, यह हमें ज्ञात नहीं है। पर यह निश्चित है कि इन सुदूरवर्ती यात्राओं के कारण उस समय में व्यापारीय मार्ग बहुत उन्नत हो चुके थे।

बौद्धकाल के व्यापारी ऐसे सुदूरवर्ती प्रदेशों में भी व्यापार के लिये जाया करते थे, जहां निश्चित मार्ग नहीं थे, या जिनके मार्ग सर्वसाधारण को ज्ञात न थे। ऐसे सार्थों (काफलों) के साथ इस प्रकार के लोग रहते थे, जो मार्गों का भलीभांति परिज्ञान रखते हों। इन लोगों को 'थलनियामक' कहा जाता था। ये थलनियामक नक्षत्रों तथा ज्योतिष के अन्य तत्त्वों के अनुसार मार्ग का निश्चय करते थे। थलनियामकों से सघन जङ्गलों, विस्तीर्ण मरुस्थलों तथा अहा-

समुद्रों में मार्ग का पता लगाने में सहायता मिलती थी । जातक कथाओं में लिखा है कि विस्तीर्ण मरुस्थलों में यात्रा करना उसी प्रकार का है, जैसे महासमुद्र में यात्रा करना । अतः उनके लिये भी मार्गप्रदर्शकों की आवश्यकता अनिवार्य होती थी । उस समय में दिग्दर्शक यन्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था । इस प्रकार के यन्त्रों का उल्लेख कहीं बौद्ध साहित्य में नहीं है । इस लिये मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये नक्षत्रों से ही सहायता ली जाती थी । समुद्र में दिशा जानने के लिये एक अन्य भी उपाय बौद्ध काल में प्रयुक्त किया जाता था । उस समय के नाविक लोग अपने साथ एक विशेष प्रकार के कौवे रखते थे । जिन्हें 'दिशाकाक' कहते थे । जब नाविक लोग रास्ता भूल जाते थे और स्थल का कहीं पता न चलता था, तो इन 'दिशाकाकों' को उड़ा दिया जाता था ।[1] ये 'दिशाकाक' जिधर जमीन देखते थे, उधर की तरफ उड़ते थे और उधर ही नाविक लोग अपने जहाजों को भी ले चलते थे । महासमुद्र के बीच में तो इन दिशाकाकों का विशेष उपयोग नहीं हो सकता था, पर सामान्य समुद्र यात्राओं में इनसे बहुत सहायता मिलती थी ।

दिग्दर्शक यन्त्र के अभाव में महासमुद्र की यात्रा बहुत संकटमय होती थी । अनेक बार नाविक लोग मार्ग भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाते थे । जातक ग्रन्थों में रास्ते से भटक कर नष्ट होने वाले अनेक जहाजों की कथायें लिखी हैं । पण्डरजातक में कथा आती है, कि पांच सौ व्यापारी महासमुद्र में जहाज लेकर गये । अपनी यात्रा के सतरहवें दिन वे मार्ग भूल गये, स्थल का चिन्ह कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था, परिणाम यह हुआ कि वे सब नष्ट हो गये और मछलियों के ग्रास बन गये ।[2]

जल और स्थल के इन मार्गों से किन वस्तुओं का व्यापार किया जाता था, इस सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण निर्देश बौद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते । जातक कथाओं के लेखक इतना लिख कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं कि व्यापारियों

---

1. Fick–Social organisation, translated by S.K. Maitre p. 268-269

2. Cowell–Jatak, vol. v; p. 42

ने ५०० व १००० गाड़ियां बहुमूल्य भाण्ड (व्यापारी पदार्थ) से भरी और व्यापार के लिये चल पड़े। पर इन गाड़ियों में कौन से बहुमूल्य भाण्ड को भरा गया, यह बताने का वह कष्ट नहीं करते। जो दो चार निर्देश इस विषय में मिलते हैं, उन का जिक्र करना जरूरी है। बौद्ध काल में वस्त्र व्यवसाय के लिये बनारस और शिविदेश सब से अधिक प्रसिद्ध थे। महापरिनिब्बान सुत्तान्त में बनारस के वस्त्रों की बहुत प्रशंसा की गई है और लिखा है कि वे अत्यन्त महीन होते हैं।[1] महावग्ग में शिविदेश के वस्त्रों को बहुमूल्य बताया गया है।[2] सिन्ध के घोड़े उस समय में बहुत प्रसिद्ध थे।[3] जातकों के अनुसार प्राच्य देश के राजा लोग उत्तर या पश्चिम के घोड़ों को पसन्द करते थे और उन्हीं को अपने पास रखते थे। अनेक स्थानों पर घोड़ों के सौदागरों का वर्णन है, जो उत्तरापथ से आकर बनारस में घोड़े बेचते थे।[4]

मुद्रापद्धति तथा वस्तुओं के मूल्य

बौद्धकाल की मुद्रापद्धति के सम्बन्ध में बौद्धग्रन्थों से अनेक उपयोगी बातें ज्ञात होती हैं। उस समय का प्रधान सिक्का 'काहापन' या 'कार्षापण' होता था।[5] जातक कथाओं में बार बार इसका उल्लेख आता है। परन्तु इसके अतिरिक्त निष्क,[6] सुवर्ण,[7] और धरण नाम के सिक्कों का प्रचलन भी इस काल में विद्यमान था।

निष्क या निक्ख सोने का सिक्का होता था, जिसका भार ४०० रत्ती होता था। 'सुवर्ण' भी सोने का सिक्का होता था, जो भार में ८० रत्ती होता

---

१. Mahaparinibban Sutta v, 26

२. Mahavagga viii, 1, 29

३. Cowell-Jatak vol. i, p. 61, 63; vol. ii, p. 116, 233; vol. iii p. 5 etc.

४. Ibid vol. i, p. 22

५. Cowell-Jatak vol, i, p, 191, 299; vol, ii, p, 166

६. Ibid vol. iv, p 140; vol, vi, p, 237, 239, 282

७. Ibid vol, iv, p 38, 98

था। बौद्ध साहित्य में सामान्य सोने के लिये हिरण्य शब्द आता है, और सोने के सिक्के के लिये 'सुवर्ण' या 'सुवर्ण मापक'। उदय जातक में कथा आती है कि उदयभद्दा को 'सुवर्णमाषक' देकर प्रलुब्ध करने का प्रयत्न किया गया।[1] इसी प्रकार अन्यत्र भी 'सुवर्णमाषक' का उल्लेख आता है।[2]

बौद्धकाल का प्रधान सिक्का कार्षापण होता था। यद्यपि मुख्यतया कार्षापण तांबे के होते थे, पर इस प्रकार के निर्देश मिलते हैं, जिनसे यह सूचित होता है कि कार्षापण सोने और चांदी के भी बने होते थे। डाक्टर भाण्डारकर ने भारतीय मुद्रापद्धति विषयक अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इन निर्देशों का विशदरूप से विवेचन किया है।[3]

इन विविध सिक्कों का भार कितना होता था और वर्तमान सिक्कों में उनका मूल्य कितना होता था, इस सम्बन्ध में विचार कर श्रीमती रीज़डेविड्स निम्न लिखित परिणाम पर पहुचीं हैं—

सोने के १४६ ग्रेन=१६ सोने के माषक=१ सुवर्ण
चांदी के १४६ ग्रेन=१६ चांदी के माषक=१ धरण
ताम्बे के १४६ ग्रेन=१६ तांबे के माषक =१ कार्षापण

इसके अनुसार

१ सुवर्ण = १ पौ० ५ शि०
१ धरण = ८ पेंस
१ कार्षापण = १ पेंस

विनिमय की सुगमता के लिये बौद्धकाल में वर्तमान अठन्नी, चवन्नी, इकन्नी आदि की तरह अर्धकार्षापण, पादकार्षापण आदि अनेक सिक्के होते थे।[4]

---

१. Cowell-Jatak vol, iv, p 66
२. Ibid vol, v, p 86
३. D. R. Bhandarkar-Carmichael Lectures on Indian Numismatics Lec. III
४. Cowell-Jatak, vol, i, p 191

बहुत छोटी कीमतों के लिये माषक[1] और काकणिका[2] का प्रयोग किया जाता था।

विविध वस्तुओं की कीमतों के सम्बन्ध में भी कुछ मनोरंजक निर्देश बौद्धसाहित्य में मिलते हैं। उनका उल्लेख करना भी यहां उपयोगी होगा।[3] विनय पिटक के अनुसार एक मनुष्य के एक बार के आहार के लिये उपयुक्त भोजन सामग्री एक कार्षापण द्वारा प्राप्त की जा सकती थी। बौद्ध भिक्षुओं के लिये उपयुक्त चीवर भी एक कार्षापण द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। परन्तु भिक्षुणी के लिये उपयुक्त वस्त्र १६ कार्षापणों में बनता था। बहुमूल्य वस्त्रों की कीमत बहुत अधिक भी होती थी। बौद्धग्रन्थों में एक हजार तथा एक लाख कार्षापणों में बिकने वाले वस्त्रों का भी उल्लेख है।

पशुओं की कीमतें भिन्न भिन्न होती थीं। महाउम्मग्ग जातक के अनुसार गधे की कीमत ८ कार्षापण होती थी। गामणिचण्ड जातक और कन्ह-जातक के अनुसार बैलों की एक जोड़ी २४ कार्षापणों में खरीदी जासकती थी। दास और दासियों की कीमत उनके गुणों के अनुसार कम अधिक होती थी। वेस्सन्तर जातक में एक दासी का वर्णन है, जिसकी कीमत १०० निष्क से भी अधिक थी। दुर्जनजातक और नन्द जातक में ऐसे दासदासियों का उल्लेख है, जो केवल १०० कार्षापणों से ही प्राप्त किये जासकते थे।

घोड़े उस समय में बहुत महंगे थे। जातकों में घोड़ों की कीमत १००० कार्षापण से लेकर ६००० कार्षापण तक लिखी गई है। मेमने की कीमत एक स्थान पर १०० कार्षापण लिखी गई है, गधे और बैल के मुकाबले में मेमने का इतना मंहगा होना समझ में नहीं आता है।

---

१. Cowell-Jatak, vol, ii, p, 234

२. Ibid vol, i, p, 14

३. N. C. Vaudyopadhyaya-Economic Life and Progress in Ancient India, p. 257-259

उस समय में वेतन तथा भृति किस दर से दी जाती थी, इस विषय में भी कुछ निर्देश मिलते हैं। राजकीय सेवक की न्यूनतम भृति १ कार्षापण दैनिक होती थी। नाई को बाल काटने के बदले में ८ कार्षापण तक दिये जाते थे। गणिका की फीस ५० से १०० कार्षापण तक होती थी। अत्यन्त कुशल धनुर्धारी को १००० कार्षापण तक मिलता था। रथ किराये पर लेने के लिये ८ कार्षापण प्रति घण्टा दिया जाता था। एक मछली की कीमत ७ मापक तथा शराब के एक गिलास की कीमत १ मापक लिखी गई है।

तक्षशिला में अध्ययन के लिये जाने वाले विद्यार्थी अपने आचार्य को १००० कार्षापण दक्षिणा के रूप में प्रदान करते थे। इन थोड़े से निर्देशों से हम बौद्ध काल की कीमतों के संबन्ध में कुछ अनुमान कर सकते हैं।

तीसरा अध्याय

विवाह तथा स्त्रियों की स्थिति

विवाह और गृहस्थजीवन

बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के विवाहों का उल्लेख है—प्राजापत्य, स्वयम्वर और गान्धर्व। सामान्यतया विवाह प्राजापत्य पद्धति से होता था। परम्परागत प्रथा के अनुसार समान जाति और स्थिति के कुलों में माता पिता की इच्छानुसार वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। परन्तु स्वयम्वर तथा गान्धर्व विवाहों के भी अनेक उदाहरण बौद्ध साहित्य में मिलते हैं, और इन्हें भी धर्मानुकूल समझा जाता था। कुणाल जातक में कुमारी कराहा के स्वयम्वर का उल्लेख है, जिसने कि अपनी इच्छा के अनुसार पांच कुमारों के साथ विवाह किया था।[1] नच्च जातक में एक कुमारी का वर्णन है, जिसने अपने पिता से यह वर मांगा था कि उसे अपनी इच्छानुसार पति वरण करने का अवसर दिया जावे। पिताने उसकी यह इच्छा पूर्ण कर दी और उस के अनुसार स्वयंवर सभा बुलाई गई, जिस में दूर दूर से कुमार एकत्रित हुवे।[2] धम्मपद टीका में भी एक असुरराजा वेपचित्ति की कन्या के स्वयम्वर विवाह का वर्णन है।[3] गान्धर्व विवाह के भी अनेक दृष्टान्त बौद्ध ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। कट्ठहारि जातक में बनारस के राजा ब्रह्मदत्त की कथा आती है, जो एक वार जङ्गल में भ्रमण कर रहा था। उसने देखा कि कोई अनिन्द्य सुन्दरी बालिका बड़ी सुरीली तान में गा रही है। राजा ब्रह्मदत्त उसे देखते ही मुग्ध हो गया और उन दोनों ने वहीं वैवाहिक संबन्ध स्थापित कर

1, Cowell-The Jatak vol, v, p, 226-228

2, Ibid vol, i, p,84

3, Dhammapada Commentary, vol. i, p, 278-279

लिया ।[1] इसी प्रकार अवन्ती के राजा चण्ड प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता (वासुलदत्ता) का उदयन के साथ विवाह भी गान्धर्व विवाह का प्रसिद्ध उदाहरण है । यह कथा हम, बौद्ध काल का राजनीतिक इतिहास लिखते हुवे विस्तार के साथ दे चुके हैं । धम्मपदटीका में कुमारी पाटचरा का वर्णन आता है, जिसने अपने माता पिता द्वारा निश्चित सम्बन्ध को ठुकरा कर अपनी इच्छा से विवाह किया था ।[2] इसी प्रकार के उदाहरण अन्यत्र भी मिलते हैं । इन से स्पष्ट है कि बौद्ध काल में सामान्य प्राजापत्य विवाह के अतिरिक्त अन्य प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध भी प्रचलित थे और उन्हें धर्मानुकूल माना जाता था ।

सामान्यतया विवाह समान जाति और कुल में होते थे । पर बौद्ध ग्रन्थों में इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है, जब कि विवाह करते हुवे निश्चित जाति व कुल का ध्यान नहीं रखा गया । कोशल राज्य के प्रसिद्ध राजा पसेनदी (अग्निदत्त प्रसेनजित) ने श्रावस्ती के अन्यतम मालाकार की कन्या मल्लिका के साथ विवाह किया था । इस कथा का उल्लेख भी हम पहिले कर चुके हैं । वङ्कहार देश के शिकारियों के सरदार की कन्या चापा का विवाह उपक नामक के एक वैरागी के साथ कर दिया गया था ।[3] दिव्यावदान में एक ब्राह्मण कुमारी का उल्लेख आता है, जिसने शार्दूलकर्ण नाम के शूद्र कुमार के साथ विवाह किया था ।[4] इसी प्रकार धम्मपदटीका में कुण्डलकेशी नामक एक कुलीन महिला की कथा आती है, जिसने एक डाकू के साथ विवाह करने में कोई संकोच नहीं किया था ।[5] इन उदाहरणों से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है कि जाति का बन्धन बौद्ध काल में भी बहुत दृढ़ नहीं हो गया था । जाति के बाहर विवाह भी उस समय में प्रचलित थे ।

१, Cowell-The Jatak vol, i, p, 28

२, Dhammapada Commentary, vol, ii, p, 260

३, Therigatha commentary, p, 220

४, Cowell-Divyavadan p, 620

५, Dhammapada Commentary, vol ii, p 217

कन्याओं का विवाह सामान्यतया सोलह वर्ष की आयु में किया जाता था। बालविवाह की प्रथा उस समय प्रचलित नहीं थी। धम्मपद टीका में राजगृह के श्रेष्ठी की कन्या कुण्डलकेशी का उल्लेख आता है, जो सोलह वर्ष की आयु तक अविवाहित रही थी। उसमें यह भी लिखा है, कि यही आयु है, जिसमें कि स्त्रियां विवाह के लिये इच्छुक होती हैं।[1]

बौद्धकाल में विवाहों में दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी। धम्मपद टीका में श्रावस्ती के श्रेष्ठी मिगार की कथा आती है, जिसने अपनी कन्या विशाखा के विवाह में निम्नलिखित वस्तुयें दहेज में दी थीं—धन से पूर्ण पांच सौ गाड़ियां, सुवर्ण पात्रों से पूर्ण पांच सौ गाड़ियां, रजत के पात्रों से पूर्ण पांच सौ गाड़ियां, तांबे के पात्रों से पूर्ण पांच सौ गाड़ियां, विविध प्रकार के रेशमी वस्त्रों से पूर्ण पांच सौ गाड़ियां और इसी प्रकार घी, चावल तथा खेती के उपकरणों से पूर्ण पांच पांच सौ गाड़ियां, साठ हजार वृषभ तथा साठ हजार गौवें।[2] नहानचुन्नमूल्य के रूप में कुछ सम्पत्ति प्रदान करने की बात तो स्थान स्थान पर बौद्ध साहित्य में मिलती है। कोशल के राजा महाकोशल ने मगधराज बिंबिसार के साथ अपनी कन्या कोशलदेवी का विवाह करते हुवे काशी का एक ग्राम, जिसकी आमदनी एक लाख वार्षिक थी, नहानचुन्नमूल्य के रूप में प्रदान किया था।[3] यही ग्राम फिर कुमारी वजिरा के विवाह के अवसर पर अजातशत्रु को प्रदान किया गया था। इसी प्रकार श्रावस्ती के धनकुबेर श्रेष्ठी मिगार ने ५४ कोटि धनराशि अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर नहानचुन्नमूल्य के रूप में दी थी।[4]

१, Dhammapada Commentary vol, ii, p, 217

२, Ibid vol, i

३, Cowell-Jatak vol, ii, p. 275

४, Dhammapada Commentary, vol iii, p 266

बौद्धकाल में पारिवारिक जीवन का क्या आदर्श था, इसका बड़ा सुन्दर परिचय उन शिक्षाओं से मिलता है, जो उस समय की वधुओं को दी जाती थीं। वे शिक्षायें निम्नलिखित हैं—[1]

(१) अन्दर की अग्नि को बाहर न लेजाओ।

(२) बाहर की अग्नि को अन्दर न लाओ।

(३) जो दे, उसी को प्रदान करो।

(४) जो नहीं देता, उसको प्रदान न करो।

(५) जो देता है, और जो नहीं देता है, उन दोनों को प्रदान करो।

(६) सुख के साथ बैठो।

(७) सुख के साथ भोग करो।

(८) सुख के साथ शयन करो।

(९) अग्नि की परिचर्या करो।

(१०) कुल देवता का सम्मान करो।

सूत्र रूप से उपदिष्ट की गई इन शिक्षाओं का क्या अभिप्राय है, इसका विवेचन भी बौद्ध साहित्य में किया है। हम उसे संक्षेप के साथ यहां उपस्थित करते हैं—

(१) अपने घर की अन्दरूनी बात चीत को बाहर न कहो। घर में जो बातें होती हैं, जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं, उनका जिक्र दूसरों से, यहां तक कि घर के नौकरों से भी न करो।

(२) बाहर के झगड़ों को घर में प्रविष्ट न होने दो।

(३) घर की वस्तु उसी को उधार दो, जो उसे वापिस कर दे।

(४) घर की वस्तु उसे कभी उधार न दो, जो उसे वापिस न लौटावे।

(५) जो भिखमंगे तथा कंगाल भिखारी लोग हैं, उन्हें इस बात की अपेक्षा किये बिना कि वे वापिस देते हैं या नहीं, दान करो।

---

१. Dhammapada Commentary vol, i, p 397-398

(६) जिस के सम्मुख बैठे रहना मुनासिब है, उसके सम्मुख बैठी रहो। जिस के आने पर खड़ा रहना आवश्यक है, उस के सम्मुख मत बैठो। सब के साथ यथायोग्य व्यवहार करो।

(७) पति के खाने से पूर्व भोजन न करो। इसी प्रकार अपनी सास तथा श्वसुर को भलीभांति भोजन कराने के अनन्तर स्वयं भोजन करो।

(८) अपने पति से पूर्व सोओ नहीं। परिवार के विविध सदस्यों के प्रति अपने सम्पूर्ण कर्तव्यों को कर चुकने के अनन्तर फिर शयन करो, पूर्व नहीं।

(९) अपने पति, श्वसुर तथा सास को अग्नि के समान समझ उनकी पूजा करनी चाहिए।

(१०) जब कोई भिक्षु भिक्षा के लिये घर के द्वार पर आवे, तब उसे भोजन कराके स्वयं खाना चाहिये।

पर सब स्त्रियां इन शिक्षाओं के अनुसार आदर्श गृहस्थ जीवन व्यतीत करती हों, यह बात बौद्धकाल में नहीं थी। उस काल में स्त्रियां अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की होती थीं। बौद्ध साहित्य में सात प्रकार की पत्नियों का वर्णन किया गया है।[1] उस समय के वास्तविक गृहस्थ जीवन पर प्रकाश डालने के लिये इनका उल्लेख विशेष रूप से सहायक हो सकेगा—

(१) एक प्रकार की पत्नियां क्रोधी तथा गरम मिजाज की होती हैं। वे सदा क्रोध करती रहती हैं। अपने पति से उनकी नहीं बनती। पति से विद्वेष कर वे दूसरों के साथ प्रेम करती हैं। अपने पति की सम्पत्ति को नष्ट करने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता।

(२) दूसरी प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो अपने पति की कमाई को ईमानदारी के साथ व्यय नहीं करतीं। वे उसमें से चोरी करने में संकोच नहीं करतीं।

(३) तीसरे प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो अपने पति पर हुकूमत करने की कोशिश करती हैं। वे स्वयं आलसी, कामचोर और गरम तबियत की

---

1. Cowell—The Jatak vol. ii, p. 239—240.

होती हैं, घर में अपने कर्तव्यों की उपेक्षा कर वे आराम के साथ जीवन व्यतीत करना चाहती हैं और पति तथा घर के अन्य सदस्यों को अपने शासन में रखने का प्रयत्न करती हैं।

(४) चौथे प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो घर में माता की तरह रहती हैं। घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति की वे संभाल करती हैं और पति तथा घर के अन्य सदस्यों की उसी प्रकार से परवाह करती हैं, जैसे माता अपने बच्चों की करती है।

(५) पांचवें प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो अपने पति की आज्ञा में रहती है। जिस प्रकार छोटी बहन अपनी बड़ी बहन या अन्य बड़े सम्बन्धियों के साथ मृदुता का व्यवहार करती है, अपने से बड़ों का सम्मान करती है, उसी प्रकार यह पांचवें प्रकार की पत्नी अपने पति के साथ व्यवहार करती है।

(६) छटे प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो अपने पति के साथ मित्र के समान व्यवहार करती है। जिस तरह कोई व्यक्ति अपने मित्र से बहुत समय पश्चात् मिल कर खुश होता है, और उसे देख कर आल्हादित होता है, उसी प्रकार ये सदा अपने पति को देखकर प्रसन्न होती हैं। ये अपने पति को सम्मान की दृष्टि से देखती हैं और उसकी उपेक्षा नहीं करतीं।

(७) सातवें प्रकार की पत्नियां वे होती हैं, जो दासी के समान अपने पति की आज्ञा में रहती हैं। उन्हें चाहे कितना ही धमकाया व पीटा जाय, पर उन्हें जरा भी बुरा नहीं मालूम होता। वे चुपचाप पति की उचित व अनुचित सब प्रकार की आज्ञाओं को मानती जाती हैं।

अंगुत्तर निकाय के अनुसार प्रत्येक सफल पत्नी में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है[1]—

(१) उसे पति की आज्ञा में रहना चाहिये।

(२) उसे पति के प्रति सदा मधुरता के साथ बोलना चाहिये।

---

1. Anguttara Nikaya iv, p. 268-266

(३) उसे पति की इच्छानुसार कार्य करना चाहिये।

(४) उसे अपने पति के गुरुजनों का सम्मान करना चाहिये।

(५) उसे अतिथियों की सेवा में जरा भी प्रमाद न करना चाहिये।

(६) उसे कातने और बुनने में प्रवीण होना चाहिये।

(७) गृहस्थ को सम्भालने के लिये, घर के सब कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिये योग्यता होनी चाहिये।

(८) घर के नौकरों के आराम का खयाल रखना चाहिये। जब वे बीमार पड़े, तब उनकी चिकित्सा का भी प्रबन्ध करना चाहिये।

(९) पति की कमाई को भलीभांति सम्भालना चाहिये।

(१०) शराब, नशा आदि व्यसनों में धन के विनाश को रोकना चाहिये।

(११) उस में उदारता होनी चाहिये, कंजूसी नहीं।

अंगुत्तर निकाय में ही एक अन्य स्थान पर प्रत्येक स्त्री के लिये चार गुणों का प्रतिपादन किया है। वे गुण निम्नलिखित हैं।[1]

(१) गृहकार्य में प्रवीणता—स्त्री को गृहकार्य में जरा भी प्रमाद न करना चाहिये।

(२) घर के विविध सदस्यों की परवाह करना—घर के जितने भी सदस्य हैं, उनकी क्या क्या आवश्यकतायें हैं, इस बात की चिन्ता सदा स्त्री को रहनी चाहिये। नौकर अपना कार्य ठीक प्रकार करते हैं या नहीं, इसका भी उसे ध्यान रखना चाहिये।

(३) पति की इच्छानुसार कार्य करना।

(४) मितव्ययिता।

अंगुत्तर निकाय का कहना है कि जो स्त्री इन गुणों से युक्त होकर साथ ही बुद्ध, धर्म और संघ— इन तीन रत्नों पर श्रद्धा रखती है, वह इस लोक और परलोक—दोनों में सुख प्राप्त करती है।

1, Anguttar nikaya iv, p. 279

बौद्धकाल में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। न केवल बड़े बड़े राजघरानों में, अपितु सामान्य घरों में भी लोग एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करते थे। राजा लोग तो सैकड़ों की संख्या में स्त्रियां रखते थे। मगध राज बिंबिसार की पांच सौ रानियां थीं।[1] जातक कथाओं में अनेक राजाओं की सोलह हजार रानियों का उल्लेख है।[2] बहु विवाह के बहुत से दृष्टान्त बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं। मगध के एक सामान्य गृहपति मघ की चार स्त्रियां थीं—नन्दा, चित्ता, सुधम्मा और सुजाता।[3] राजा ओक्काक की पांच स्त्रियां थीं।[4] महावंश के अनुसार शुद्धोदन का विवाह माया और महामाया नामक दो बहनों से हुआ था।[5] तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार भी इसी बात की पुष्टि होती है।[6] सौतों की आपस की लड़ाईयों का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर जातक कथाओं में आता है। सम्बुला जातक में राजा सोट्ठिसेन की पटरानी सम्बुला और अन्य रानियों के पारस्परिक झगड़ों का मनोरञ्जक वर्णन किया गया है।[7] धम्मपद टीका में कथा आती है, कि सावट्ठी (श्रावस्ती) के एक गृहपति की स्त्री बांझ थी, उन्होंने बहुत देर तक सन्तान के लिये प्रतीक्षा की, पर उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। आखिर, स्त्री ने निराश होकर स्वयं अपने पति से अनुरोध किया कि वह सन्तान के लिये दूसरा विवाह कर ले। परन्तु शीघ्र ही उसकी अपनी सौत से लड़ाई हो गई, और वे आपस में लड़ने झगड़ने लगीं। इनके झगड़ने का वृत्तान्त धम्मपद टीका में विस्तार से उपलब्ध होता है।[8] सन्तान के

1, Mahavagga viii, 1, 15
2, Chaddanta Jatak (Cowell vol, v) और Muga-Pakhha-Jatak (Cowell, vol. vi)
3, Dhammapada Commentary, i, p. 264
4, Sumangulavilasini, p. 258
5, Mahavansa (Geiger) p. 14
6, Rockhill–Life of Buddha p. 15
7, Cowell–Jatak vol. v, p. 48-53
8, Dhammapada Commentary, i. p. 45

अभाव में दूसरा विवाह करने के अन्य भी अनेक दृष्टान्त मिलते हैं ।[1] पहली स्त्री की मृत्यु के पश्चात् दूसरा विवाह करना तो उस समय में एक सामान्य बात थी । यदि कोई स्त्री देर तक अपने पिता के घर से वापिस न लौटे, तो भी दूसरा विवाह कर लिया जाता था । बब्बू जातक में कथा आती है । सावट्ठी में एक स्त्री रहती थी, जिसका नाम था काणा । उसका विवाह किसी अन्य ग्राम में हुआ था । एक बार वह किसी कार्यवश अपनी माता के पास सावट्ठी में आई । उसे अपने पति के पास वापिस आने में कुछ देर होगई । पति ने एक के बाद एक करके तीन आदमी उसे बुलाने के लिये सावट्ठी भेजे, पर वह कार्यवश वापिस न आ सकी । आखिर, उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया और काणा की दुर्दशा होगई ।[2]

बहु पत्नी विवाह के समान बहुपति विवाह का भी एक दृष्टान्त बौद्ध साहित्य में मिलता है । यह कुमारी कन्हा के सम्बन्ध में है, जो कोशल देश के राजा की कन्या थी । जब यह बड़ी हुई, तो इसके विवाह के लिये स्वयंवर की व्यवस्था की गई । स्वयम्वर सभा में बहुत से राजा और राजकुमार एकत्रित हुवे । इनमें पाण्डुदेश के राजा के पांच पुत्र अर्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिट्ठिल, और सहदेव (इसी क्रम से इनके नाम कुणाल जातक में लिखे हैं) भी थे । ये तक्ष-शिला के एक संसार प्रसिद्ध आचार्य से शिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर विविध स्थानों के रीति रिवाज आदि का अध्ययन करते हुवे बनारस आये हुवे थे । जब इन्हें कन्हा की स्वयम्वर सभा का पता लगा, तो ये भी वहां पहुंच गये और मूर्ति के समान खड़े होगये । कुमारी कन्हा ने इन पांचों के गले में जयमाल डालदी और इन पांचों को अपने पति के रूप में स्वीकृत किया ।[3] कुणाल जातक की यह कथा प्राचीन महाभारत की अनुश्रुति पर आश्रित मालूम होती है । इसके अतिरिक्त बहुपतिविवाह का अन्य कोई उदाहरण प्राचीन बौद्ध साहित्य में उपलब्ध नहीं होता है ।

१, Vimanavatthu Commentary p. 149-156
२, Cowell–Jatak vol. i, p. 295-296
३, Ibid vol. v, p. 226-227

क्या बौद्ध काल में स्त्रियां भी एक से अधिक विवाह कर सकती थीं? इस विषय पर बौद्ध साहित्य से अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। पर इस बात को स्पष्ट करने के लिये जो एक दो निर्देश मिलते हैं, उनका उल्लेख करना यहां आवश्यक है। उच्छङ्ग जातक में कथा आती है, कि कोशलदेश में तीन आदमी डाके के अपराध में गिरेफ्तार कर राजा के सम्मुख लाये गये। जब वे अभी हवालात में ही थे, कि एक स्त्री विलाप करती हुई राजा के सामने उपस्थित हुई और जोर जोर से रोने लगी। बात चीत के अनन्तर राजा को ज्ञात हुआ कि ये तीनों गिरफतार व्यक्ति इस स्त्री के सम्बन्धी हैं और इनमें से एक इसका पति, एक भाई और एक लड़का है। राजा ने उस स्त्री को कहा—तुम इन में से किसी एक को, जिसे तुम चाहो, जेल से मुक्त करा सकती हो। इस पर उस स्त्री ने उत्तर दिया—'राजन्, यदि मेरी जिन्दगी रहे, तो मुझे अन्य पति और अन्य पुत्र भी प्राप्त हो सकते हैं, पर क्योंकि मेरे पिता का स्वर्गवास हो चुका है, अतः अन्य भाई का प्राप्त हो सकना असम्भव है; अतः मेरे भाई को ही जेल से मुक्त करदो। इस से स्पष्ट है, कि स्त्री का पुनर्विवाह हो सकना उस समय में असम्भव बात नहीं समझी जाती थी। इसी प्रकार महावंश के अनुसार राजा खल्लाटनाग को उसके सेनापति कम्महारट्टक ने कैद कर लिया था, पर कुछ समय के बाद खल्लाटनाग के भाई वट्टगामणी ने उस सेनापति को मारकर स्वयं राज्य प्राप्त कर लिया और खल्लाट नाग की विधवा पत्नी को (खल्लाट नाग की उस समय तक मृत्यु हो चुकी थी) अपनी रानी बना लिया। इस उदाहरण से भी विधवा स्त्री का पुनर्विवाह स्पष्ट हो जाता है।

विवाह के लिये मुहूर्त देखने की पद्धति बौद्धकाल में भी प्रचलित थी। नक्खत्त जातक में राजा ब्रह्मदत्त द्वारा विवाह के लिये उपयुक्त मुहूर्त के संबन्ध में कुल पुरोहित से पूछने का वर्णन आता है।[3] इसी की पुष्टि दीघ निकाय से भी होती है।[4]

१, Cowell-Jatak vol. i, p. 165

२ Mahavanso (Geiger) p. 269 270

३ Cowell-Jatak vol. i, p. 125

४; Digha Nikaya, vol. i, p. 11.

स्त्री शिक्षा[1]

बौद्धकाल में स्त्रियों की शिक्षा के लिये क्या व्यवस्था थी, इस सम्बन्ध में कोई निर्देश बौद्ध साहित्य में उपलब्ध नहीं होते । परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि उस समय में स्त्री शिक्षा का अच्छा प्रचार था और अनेक विदुषी तथा सुशिक्षित महिलाओं का परिचय हमें बौद्ध साहित्य के अध्ययन से मिलता है । हम इस प्रकरण में यह तो नहीं बता सकेंगे कि उस काल में स्त्रियों की शिक्षा के लिये जो विद्यालय थे उनका क्या रूप था या अन्य किस प्रकार से स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रबन्ध था, पर अनेक सुशिक्षित महिलाओं का परिचय देकर इस बात पर अवश्य प्रकाश डाल सकेंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों ने कितनी उन्नति की हुई थी ।

संयुक्त निकाय में एक महिला का उल्लेख है, जो वाग्मिता में अत्यन्त प्रवीण थी । इसका नाम था, सुक्का । यह एक भिक्षुणी थी और इसकी वक्तृता शक्ति अपने समय में अद्वितीय मानी जाती थी । जिस समय यह राजगृह में व्याख्यान देने के लिये गई, तो एक यक्ष ने सम्पूर्ण नगर निवासियों को इन शब्दों में उसके व्याख्यान की सूचना दी—'सुक्का अमृतवर्षा कर रही है, जो लोग बुद्धिमान हैं वे जावें और अमृतरस का पान करें ।'

भिक्खुनी खेमा 'विनय' में पारंगत थी । वह अत्यन्त विदुषी, बुद्धिमती, वाग्मी, सुशिक्षिता और प्रतिभा से युक्त थी, उसकी कीर्ति इतनी विस्तृत थी कि कोशल देश का राजा पसेनदी (अग्निदत्त प्रसेनजित्) उसकी सेवा में गया और उसने अनेक दार्शनिक विषयों पर विचार किया । उसने खेमा से पूछा—'क्या मृत्यु के पश्चात् मनुष्य फिर जन्म लेता है ?' खेमा ने उत्तर दिया— 'भगवान् बुद्ध ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है ।' राजा पसेनदी ने पूछा—'बुद्ध ने इस सम्बन्ध में क्यों ज्ञान नहीं दिया ।' भिक्खुनी खेमा ने कहा— 'क्या कोई ऐसा मनुष्य संसार में है, जो गंगा की रेती के कणों की या समुद्र के जलबिन्दुओं की

---

1. B. C. Law-Women in Buddhist Literature, Chapter v.

गिनती कर सके ?' राजा ने उत्तर दिया—'नहीं'। इस पर खेमा ने कहा—'जो व्यक्ति पांचों स्कन्धों से ऊपर उठ जाता है, वह समुद्र के समान अथाह तथा अनन्त बन जाता है, इस प्रकार के व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म कल्पनानीत बात है।' राजा खेमा के इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुआ। उसे अपनी शंका का दार्शनिक तथा सन्तोषप्रदायक उत्तर प्राप्त होगया। यह खेमा एक अत्यन्त उच्च कुल की महिला थी। इसका जन्म सागल के राजकुल में हुआ था। इसका विवाह मगध के प्रसिद्ध सम्राट् बिम्बिसार के साथ हुआ था, परन्तु महात्मा बुद्ध के संसर्ग में आकर इसने भिक्खु जीवन स्वीकृत कर लिया था और राजप्रासाद के सम्पूर्ण सुखों को ठुकरा कर भिक्खुनी बन गई थी।

भद्दा कुण्डल केशा राजगृह के एक अत्यन्त समृद्धिशाली श्रेष्ठी की कन्या थी। पर इस ने भी सामान्य गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा भिक्खुनी बनना स्वीकृत किया। वह निग्गन्थ सम्प्रदाय में सम्मिलित होगई थी। निग्गन्थ सम्प्रदाय की सम्पूर्ण शिक्षाओं में यह पूर्णरूप से पारंगत थी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिभ्रमण करती हुई उनका प्रचार करती थी। वादविवाद में इसका मुकाबला कर सकना सुगम कार्य न था। बड़े बड़े विद्वान पण्डितों को इसने शास्त्रार्थ में परास्त किया था। पर अन्त में महात्मा बुद्ध के शिष्य सारिपुत से यह परास्त होगई और इसने निग्गन्थ सम्प्रदाय का परित्याग कर बौद्ध धर्म को स्वीकृत कर लिया।

धम्मदिन्ना राजगृह की रहने वाली थी और उसका विवाह विशाखा नामक एक समृद्ध श्रेष्ठी के साथ हुआ था। महात्मा बुद्ध के उपदेश सुनकर उस के जीवन में भारी परिवर्तन आगया और उस ने 'धम्म' का अनुशीलन करना प्रारम्भ किया। शीघ्र ही वह 'धम्म' में पारंगत हो गई और महात्मा बुद्ध उससे बहुत प्रसन्न हुवे। उसे उन भिक्खुनियों में सर्वप्रधान माना जाता था, जो महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिये उपयुक्त क्षमता रखती थीं उसने अपने जीवन के बड़े भाग को इसी महत्वपूर्ण कार्य में व्यतीत किया था।

संघमित्ता तीनों विद्याओं में पारंगत थी। वह तन्त्रविद्या में भी प्रवीण मानी जाती थी। 'विनय पिटक' का अध्ययन उसने इतनी गम्भीरता के साथ

किया था कि वह उसका अध्यापन भी बड़ी योग्यता के साथ कर सकती थीं। उसने अनुराधपुर में विनयपिटक का अध्यापन किया भी था। इसी प्रकार अञ्जली भी विविध विद्याओं की प्रसिद्ध विदुषी थी। वह भी सङ्घमित्ता के समान विनयपिटक में इतना पाण्डित्य प्राप्त कर चुकी थी कि दूसरों को इस की शिक्षा दे सकती थी। अन्य भी अनेक महिलायें बौद्ध धर्म ग्रन्थों की पारंगत पण्डितायें थीं। उत्तरा, काली, सुपत्ता, चन्ना, उपाली और रेवती आदि अनेक महिलाओं के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थों में यह बात उल्लिखित है कि वे विनय पिटक में पारंगत थीं और उसका अध्यापन सफलता के साथ कर सकती थीं।

नन्दुत्तरा विद्या और शिल्प में प्रवीण थी। पाटाचारा उन सब स्त्रियों में शिरोमणि मानी जाती थी, जिन्होंने विनय पिटक का अवगाहन किया था। इसी प्रकार अन्य भी अनेक महिलाओं के नाम यहां उल्लिखित किये जासकते हैं, पर उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जब हम बौद्ध साहित्य का अनुशीलन करते हैं, तो हमें इन सब तथा अन्य अनेक विदुषी महिलाओं के सम्बन्ध में बहुतसी बातें ज्ञात होती हैं। उस काल में स्त्रियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें प्राप्त थीं, उन की शिक्षा को एक असम्भव तथा व्यर्थ की बात नहीं माना जाता था। अन्यथा, इतनी सुशिक्षित महिलाओं का बौद्ध धर्म में पारंगत होना तथा उसके प्रचार के लिये प्रयत्न करना अद्भुत प्रतीत होता है। उस समय की स्त्रियां अपने को समाज का एक महत्व पूर्ण अंग समझती थीं, समाज में उन की स्थिति सम्मानास्पद थी। यही कारण है कि राजगृह जैसे प्रसिद्ध नगर में उन के खुले रूप में व्याख्यान हो सकते थे और पसेनदी जैसे राजा अपनी शंकाओं का निवारण करने के लिये उन की सेवा में उपस्थित हो सकते थे। उस समय की स्त्रियों ने ही महात्मा बुद्ध को इस बात के लिये विवश किया था कि वे स्त्रियों के लिये पृथक् संघ की व्यवस्था करें।

बौद्ध काल में स्त्रियां बाकायदा शिक्षा पाती थीं, इस का परिचय इस बात से मिलता है कि दिव्यावदान में स्त्री विद्यार्थिनियों का उल्लेख किया गया है।

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'थेरीगाथा' में उन कविताओं का संग्रह है, जिनका निर्माण बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा हुआ था। यह ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है कि बौद्ध काल में जिस नवीन साहित्य का विकास हो रहा था, उस में स्त्रियां भी अपना हाथ बटा रहीं थीं और उन्होंने भी बौद्ध साहित्य की प्रगति में महत्त्व पूर्ण कार्य किया था। काम के देवता 'मार' ने इन भिक्खुनियों को पथभ्रष्ट करने के लिये किस प्रकार प्रयत्न किये और किस प्रकार उन भिक्खुनियों ने 'मार' का मुकाबला किया, इस का वर्णन बौद्ध साहित्य में अत्यन्त सुन्दर तथा मनोरंजक है।

भिक्खुणी संघ

बौद्ध धर्म के इतिहास में भिक्खुणी संघ का बड़ा महत्व है। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर बहुत से पुरुषों ने सांसारिक जीवन का त्याग कर मनुष्य जाति की सेवा करने के लिये भिक्षुव्रत स्वीकृत किया था, इसी प्रकार उस समय की बहुत सी स्त्रियों ने भी सांसारिक सुखों को लात मार कर विश्व सेवा का कठोर व्रत धारण किया था। बौद्ध धर्म के प्रचार में इन भिक्खुणियों का बहुत महत्व पूर्ण स्थान है। देश विदेश में महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं को प्रसारित करने में इन शिक्षिता तपस्विनी महिलाओं ने बड़ा काम किया। भिक्खुणी संघ का इतिहास जहां बौद्ध धर्म के प्रसार की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है, वहां साथ ही उस समय की स्त्रियों की स्थिति पर भी बहुत प्रकाश डालता है। उस समय स्त्रियों का काम केवल घर को संभालना और गृहस्थरूपी रथ का सञ्चालन करना ही न माना जाता था, अपितु वे भी अपने जीवनों को अधिक विस्तृत क्षेत्र में लगा सकती थीं, यह इससे भली भांति स्पष्ट हो जाता है। इस भिक्खुणी संघ की स्थापना किस प्रकार हुई और इसमें तथा सामान्य भिक्षुसंघ में क्या भेद था, इस बात पर हम यहां प्रकाश डालेंगे।

भिक्खुणीसंघ की स्थापना का मुख्य श्रेय महाप्रजापती गोतमी नामक कुलीन शाक्य महिला को प्राप्त है। सब से पूर्व उसी ने सांसारिक जीवन का त्याग कर भिक्षु व्रत ग्रहण करने की आकांक्षा महात्मा बुद्ध के सम्मुख प्रगट की। बौद्धसाहित्य में इसका वृत्तान्त निम्नलिखित रूप में उपलब्ध होता है—

"उस समय भगवान् बुद्ध शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में ठहरे हुवे थे। जिस स्थान पर भगवान् बुद्ध ठहरे हुवे थे, महाप्रजापति गोतमी वहां उनकी सेवा में उपस्थित हुई और प्रणाम करके एक तरफ खड़ी होगई। इसके पश्चात् उसने भगवान् से यह निवेदन किया—भगवान्, यदि स्त्रियों को भी अपने गृहों का परित्याग कर तथागत की शिक्षाओं के अनुसार भिक्षुव्रत ग्रहण करने की अनुमति दी जावे, तो बहुत उत्तम हो।' इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया—'हे गोतमी ! इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, कि स्त्रियों को भी घर का परित्याग कर भिक्षुव्रत ग्रहण करने की अनुमति दी जावे।' पर महाप्रजापति गोतमी को सन्तोष नहीं हुआ। उसने दो वार फिर अपनी प्रार्थना को दोहराया और महात्मा बुद्ध से वही उत्तर प्राप्त किया। इस पर महाप्रजापति गोतमी को बहुत दुःख हुआ। महात्मा बुद्ध स्त्रियों को गृहों का परित्याग कर भिक्षु बनने की अनुमति नहीं देते हैं, इस बात से अत्यन्त शोकातुर हो वह आंसू बहाती और रोती हुई महात्मा बुद्ध को प्रणाम करके चली गई।

"कुछ समय तक कपिलवस्तु में निवास कर महात्मा बुद्ध ने वैशाली की तरफ प्रस्थान किया और यात्रा करते हुवे वैशाली पहुंच गये। वहां उन्होंने महावन में कूटागार नामक स्थान पर अपना डेरा जमाया।

"उधर महाप्रजापति गोतमी ने अपने बाल कटा लिये और काषाय रंग के वस्त्रों को धारण कर शाक्यकुल की बहुत सी महिलाओं के साथ वैशाली की ओर प्रस्थान किया और जहां महावन में कूटागार में महात्मा बुद्ध ठहरे हुवे थे, वहां जा पहुंची। उस यात्रा से महाप्रजापति गोतमी के पैर फूल गये थे, वह धूल से भरी हुई थी, रोती और आंसू बहाती हुई वह महात्मा बुद्ध के निवास स्थान के द्वार पर आकरे खड़ी होगई।

"जब आनन्द ने देखा कि महाप्रजापति गोतमी इस प्रकार खड़ी हुई है, वह उसके पास आया और बोला—'तुम यहां द्वार पर इस प्रकार क्यों खड़ी हो ? तुम्हारे पैर फूल गये हैं, तुम धूल में सनी हुई हो और तुम क्यों इस प्रकार आंसू बहा कर रो रही हो ?

"महाप्रजापति गोतमी ने उत्तर दिया— 'हे आनन्द, भगवान् स्त्रियों को घरों का परित्याग कर भिक्षुव्रत ग्रहण करने की अनुमति नहीं देते हैं ।'

"यह सुन कर आनन्द उस स्थान पर गये, जहां महात्मा बुद्ध विराजमान थे । उन्हें प्रणाम कर आनन्द एक तरफ बैठ गये और इस प्रकार निवेदन किया—'भगवन् ! देखिये, महाप्रजापति गोतमी बाहर द्वार पर खड़ी हुई है । उसके पैर सूजे हुवे हैं, वह धूल से सनी हुई है और रो रो कर आंसू बहा रही है । इसका कारण यह है कि भगवान् स्त्रियों को घरों का परित्याग कर भिक्षुव्रत ग्रहण करने की अनुमति प्रदान नहीं करते हैं । क्या अच्छा हो यदि भगवान् स्त्रियों को भी भिक्षु जीवन स्वीकृत करने की अनुमति प्रदान करदें ।'

"पर महात्मा बुद्ध इसके लिये अनुमति देने को तैयार नहीं हुवे । तीन बार आयुष्मान् आनन्द ने वही निवेदन किया, पर भगवान् बुद्ध ने इसके लिये अनुमति नहीं दी ।

"आयुष्मान आनन्द ने सोचा—भगवान बुद्ध स्त्रियों को प्रव्रज्या लेने की अनुमति प्रदान नहीं करते हैं । क्यों न मैं भगवान के सन्मुख यह प्रश्न अन्य प्रकार से उपस्थित करूं ।

"यह विचार कर आयुष्मान आनन्द ने भगवान से कहा—'भगवन् ! क्या स्त्रियां भी भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म का अनुसरण कर गृहों का परित्याग कर, प्रव्रजित हो कर स्रोत-आपत्ति फल, सकृदगामि फल, अनागामिफल और अर्हत्त्व फल को साक्षात् कर सकती हैं ?'

"भगवान् ने उत्तर दिया—'हां कर सकती हैं ।'

"आनन्द ने कहा 'यदि कर सकती हैं, तो भगवन् ! यह महाप्रजापति गौतमी बहुत उपकार करने वाली है । जननी के मरने पर उसने भगवान् को दूध पिलाया था । वह आपकी अभिभाविका, पोषिका और क्षीरदायिका है । क्या अच्छा हो, यदि भगवान् स्त्रियों को भी घरों का परित्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति दें ।'

"इस पर भगवान् ने उत्तर दिया—'आनन्द, यदि महाप्रजापति गौतमी आठ गुरुधर्मों (मुख्य शर्तों) को स्वीकार करे, तो उसे उपसम्पदा दी जा सकती है। वे आठ शर्तें निम्न लिखित हैं—

(१) सौ वर्ष की उपसम्पन्न (उपसम्पदा प्राप्त) भिक्षुणी को भी उसी दिन के उपसम्पन्न भिक्षु के लिये अभिवादन, प्रत्युत्थान, अंजलि जोड़ना और सामीची कर्म करना चाहिये। यह धर्म सत्कार पूर्वक, गौरव पूर्वक मान कर जीवन भर अतिक्रमण न करना चाहिये।

(२) भिक्षुणी को धर्म श्रवणार्थ आगमन करना चाहिये।

(३) प्रति आधे मास भिक्षुणी को भिक्षु संघ से पर्येषण करना चाहिये।

(४) वर्षावास कर चुकने पर भिक्षुणी को दोनों संघों में देखे, सुने, जाने—तीनों स्थानों से प्रवारणा करनी चाहिये।

(५) गुरु धर्म स्वीकार करने वाली भिक्षुणी को दोनों संघों में पक्षमानता करनी चाहिये।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षु को गाली आदि न दे।

(७) कोई भिक्षुणी किसी भिक्षु से बात न कर सके।

(८) भिक्षु भिक्षुणी को शिक्षा आदि दे सके।

तब आयुष्मान आनन्द भगवान से इन आठ गुरुधर्मों को भली भांति समझ कर महाप्रजापति गौतमी के पास गये और उसे भगवान की आठ शर्तें सुना दीं।"

महाप्रजापति गौतमी ने भगवान बुद्ध द्वारा पेश की गई इन आठों शर्तों को स्वीकार कर लिया और अन्य ५०० शाक्य महिलाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। इसके बाद अन्य भी बहुतसी स्त्रियों ने अपने गृहों का परित्याग कर भिक्षुणी बनना स्वीकार किया और धीरे धीरे भिक्षु संघ के समान भिक्षुणी संघ भी निरन्तर उन्नति करता गया।